हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पुस्तकालय
इलाहाबाद

वर्ग संख्या ....

पुस्तक संख्या ....

क्रम संख्या ....

घर और बाहर

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर.

अनुवादक

रघुकुल तिलक एम० ए०.

प्रकाश पुस्तकालय,

कानपुर

प्रकाश-पुस्तक-माला की २५वीं पुस्तक

घर और बाहर

लेखक
कवि-सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक
श्रीयुत रघुकुल तिलक एम० ए०

प्रकाशक
शिवनारायण मिश्र
प्रकाश पुस्तकालय, कानपुर

मू० ३)

प्रकाशक—
शिवनारायण मिश्र वैद्य,
प्रकाश-पुस्तकालय, कानपुर।

प्रथम संस्करण—अगस्त, १९२३
* * *
द्वितीय संस्करण—मार्च, १९२५

मुद्रक
[illegible]
कानपुर

भूमिका

'घरे-बाहिरे' पहिली बार १९१६ में प्रकाशित हुआ था और जहाँतक मुझे मालूम है रवीन्द्रनाथ ठाकुर का अन्तिम उपन्यास है। उस समय रवि बाबू की उम्र ५५ वर्ष की थी; ३ वर्ष पहले उन्हें 'नोबिल प्राइज़' मिल चुका था और उनकी साहित्यिक रचनाओं से पूर्व और पश्चिम दोनों भली भाँति परिचित हो चुके थे।

यह उपन्यास जिस ढंग से लिखा गया है उसका अबतक बंगला या हिन्दी में प्रचार नहीं है। साधारणतः लेखक ही अपनी ओर से उपन्यास लिखता है और उस के सर्वज्ञ होने के कारण किसी के मन में यह प्रश्न नहीं उठता कि उसे पात्रों के वस्त्र, आकार, विचार और परिस्थिति के सम्बन्ध में ज़रा ज़रा सी बातें कैसे मालूम हो गयीं। दूसरा ढंग यह है कि सारी कहानी एक प्रधान पात्र के मुँह से कहलाई जाय। ऐसे उपन्यासों में केवल वही घटनाएँ सुभीते से आ सकती हैं जिनमें इस प्रधान पात्र ने स्वयं भाग लिया हो। क्योंकि लेखक के समान और किसी का सर्वज्ञ बनना पाठक क्षमा नहीं करते। तीसरा ढंग यह है कि वही कहानी कई पात्रों के मुँह से कहलाई जाय। अङ्गरेज़ी के कई प्रसिद्ध लेखकों ने इस ढंग का प्रयोग किया है। ब्राउनिङ्ग की "दि रिंग एण्ड दि बुक" और विलकी कालिंस की "दि वोमेन इन व्हाइट"

इस ढंग पर लिखी गई हैं और इसी प्रणाली का प्रयोग रवि बाबू ने अपने "घरे-बाहिरे" में किया है। इसमें तीन प्रधान पात्र हैं और तीनों अपनी आत्म-कथाएँ कहते हैं। इन्हीं आत्म-कथाओं के संग्रह से उपन्यास तैयार हुआ है। यह प्रणाली पहिले ढंग से अधिक स्वाभाविक है, क्योंकि इसमें लेखक को सर्वज्ञ बनने की आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरे ढंग में जो घटनाक्रम के संकीर्ण हो जाने की सम्भावना होती है वह भी इसमें नहीं रहती। "घरे-बाहरे" जैसे उपन्यास के लिए जिसमें मानसिक भावों की गहरी आलोचना की गई है यह ढंग विशेषतः उपयुक्त है।

"घरे-बाहरे" का घटनाक्रम (Plot) बहुत सरल और संक्षिप्त है। "विमला का विवाह एक राजघराने में हुआ है और वह अपने सुचरित्र और सुशिक्षित पति निखिलेश के साथ बड़े सुख से रहती है। कुछ वर्ष बीतने पर बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन आरम्भ होता है। इसी समय निखिलेश का मित्र सन्दीप स्वदेशी का प्रचार करता हुआ उसके यहाँ आता है और विमला उसका ज़ोरदार व्याख्यान सुन कर उसकी भक्त बन जाती है। कुछ परिचय होते ही सन्दीप की तीव्र प्रतिभा विमला को पूर्णरूप से अभिभूत कर लेती है। निखिलेश की ओर विमला की उदासीनता दिन पर दिन बढ़ती जाती है। सन्दीप की ओर विमला का ठीक क्या भाव है यह वह स्वयं नहीं जानती। उसे रह रह कर विपत्ति की झलक दिखाई पड़ती है पर सन्दीप के स्तुति-गान ने उसे ऐसा बेसुध कर दिया है कि उसका कुछ बस नहीं चलता।

अकस्मात सन्दीप को देश-कार्य के लिए रुपये की ज़रूरत होती है। विमला उसकी ज़रूरत पूरी करने के लिए ६०००) अपने स्वामी के सन्दूक़ में से चुरा लेती है। इसी समय से हवा का रुख़ बदलता है और सन्दीप विमला की दृष्टि में एक साधारण पुरुष रह जाता है। इधर स्वदेशी आन्दोलन का ज़ोर बराबर बढ़ रहा है। और सन्दीप के विरुद्ध मुसलमानों की दलबन्दी आरम्भ हो गयी है। इसी कारण निखिलेश सन्दीप से अपने साथ कलकत्ते जाने को कहता है पर सन्दीप अन्तिम बार विमला को अपनी वाक्य शक्ति से उत्तेजित कर के उसी दम वहाँ से चला जाता है। इधर स्वदेशी आन्दोलन के अनुयायी और विरोधियों में मारपीट हो जाती है। निखिलेश उसमें भाग लेता है और वहाँ से विषम घाव खाकर वापस आता है।"

इस सब का उद्देश्य क्या है? यह प्रश्न जैसा स्वाभाविक है वैसा ही कठिन भी है क्योंकि अनेक सज्जन जिन में स्वयं रवि बाबू भी हैं यह मानते ही नहीं कि उपन्यास का कुछ उद्देश्य होना आवश्यक भी है। जब रवि बाबू से पूछा गया कि यह उपन्यास आपने किस उद्देश्य से लिखा है तो उन्होंने उत्तर दिया कि "उपन्यास लिखने का वास्तविक उद्देश्य उपन्यास लिखना ही है। मुझे उपन्यास लिखने की इच्छा होती है इसीलिए मैं उपन्यास लिखता हूँ।"[1] अवनीन्द्रनाथ ठाकुर से उनके चित्रों के विषय में प्रश्न किया जाय तो शायद वह भी ऐसा ही उत्तर देंगे। कोई गवैया अपने गीत का उद्देश्य भी न बता सकेगा।

[1] माडर्न रिव्यू--सितम्बर, १६६०।

पर लेखक का कोई उद्देश्य हो या न हो पाठकगण उद्देश्य आकृष्ट किये बिना नहीं रहते। जैसा कि रवि बाबू ने कहा है, "हरिण की खाल पर जो चिह्न होते हैं उनके उद्देश्य को स्वयं हरिण नहीं जानता पर जो लोग जीवाद्-शास्त्र (Zoology) का अध्ययन करते हैं उनकी सम्मति है कि उन चिह्नों का उद्देश्य हरिण के शत्रुओं से उसकी रक्षा करना है।" हर एक अच्छा उपन्यास मानव-जीवन-सौन्दर्य का शब्दचित्र होता है इसीलिये उसका और कोई उद्देश्य हो या न हो उससे आन्तरिक प्रवृत्तियों के संचालन का परिचय अवश्य मिलता है और इससे जो आनन्द प्राप्त होता है उसे प्रत्येक साहित्य-प्रेमी भली भांति जानता है। विमला का कोमल हृदय सन्दीप की प्रबल प्रकृति और राजनीतिक आन्दोलन के आघात से ऐसा उत्तेजित हो उठता है कि उसे मृत्यु भी मधुर दिखाई पड़ती है। सन्दीप का चरित्र भयंकर होने पर भी रोचक है। उसकी प्रबल वाक्य-शक्ति और अप्राकृतिक सिद्धान्तों का जादू कैसा आश्चर्य-जनक है! उसकी उन्मत्त प्रकृति के मुकाबिले में निखिलेश के चरित्र का सौन्दर्य कैसा उज्ज्वल हो उठता है! उसके हृदय में समुद्र-मथन होता है पर अन्त में उसकी शान्तिमय उदारता सब बाधाओं पर विजय पाती है। यह सब क्या यथेष्ट उद्देश्य नहीं है?

कोई स्पष्ट उद्देश्य न रहने पर भी लेखक के सिद्धान्त और विश्वास की झलक उसकी रचना में अवश्य आजाती है। समकालीन घटनाएँ अपना वास्तविक सन्देश लेखक के द्वारा प्रकट किया करती हैं। जैसा कि रवि बाबू ने स्वयं कहा है, "जब मैं कोई उपन्यास लिखता हूँ तो मेरे चारों ओर

का जीवन ताना-बाना बनकर उसकी बनावट में आजाता है और मेरी निजी रुचि-अरुचि भी उसके साथ मिश्रित होजाती है।" अतएव रवि बाबू के सिद्धान्त जिस प्रकार उनकी अन्य रचनाओं से मालूम होते हैं उसी प्रकार उनके उपन्यासों से भी आकृष्ट किये जा सकते हैं। स्थान परिमित होने के कारण यहाँ दो-चार ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

रवि बाबू का विश्वास है कि हर प्रकार की सम्पूर्णता प्राप्त करने के लिये बाधक शक्तियों के साथ युद्ध करना आवश्यक है। इसीलिये मानुषिक प्रेम भी बिना कठिन परीक्षा के पूर्ण नहीं होता। विमलाने साधारणतः अपने स्वामी के प्रेम का मूल्य नहीं समझा, पर जब उसके हृदय में अशुद्ध प्रवृत्तियों का संक्षोभ भड़का और भड़क कर शान्त भी हो गया तो उसकी आँखें खुल गयीं। "अब मैं अग्नि के अन्दर होकर निकली हूँ। जो कुछ जलने योग्य था वह जलकर छाई होगया। अब जो बाकी है वह सदा बना रहेगा।" "चोखेर बाली" में कुंजविहारी के साथ माया के अशुद्ध प्रेम का यही फल होता है। अन्त में दोनों के हृदयकी कुवासनाएं जलकर क्षय होजाती हैं और उज्ज्वल स्वर्ण बाकी रह जाता है। "नौका डूबी" में कमला की कठिन परीक्षा का परिणाम भी यही होता है कि वह एक बार अपने स्वामी नलिनाक्ष से बिछुड़ कर फिर हज़ारगुने अधिक प्रेम के साथ उसे प्राप्त करती है।

इसी सिद्धान्त का दूसरा रूप यह है कि असत्य की कभी जय नहीं होती। अस्वाभाविक प्रकृति को अन्त में हार मानना पड़ती है। इसका कारण यह है कि दूषित प्रवृत्ति का आन्तरिक आत्मा के साथ जोड़ नहीं

मिलता । कुछ समय दोनों का सुर मिलना संभव है पर अन्त में राग अवश्य बेसुरा होजायगा । सन्दीप का चरित्र इस बात का प्रत्यक्ष दृष्टान्त है। सम्भव है कुछ पाठक रवि बाबू के इस पात्र की तुलना शेक्सपीयर के यागो (Iago) से करें । पर मेरी सम्मति में इन दोनों में बहुत ही कम समानता है। सन्दीप का चरित्र यागो से कहीं अधिक प्रबल और स्वाभाविक है। सन्दीप ने बी० ए० पास करने के बाद प्रण किया था कि " अपने जीवन को नितान्त वास्तव के आधार पर उठाऊंगा । " पर इस वास्तव की बुनावट में अनेक छेद बाक़ी रहगये, अर्थात् वह अपने प्रण पर स्थिर न रह सका। अपनी आत्मा और मानुषिक प्रकृति के साथ जो उसने युद्ध करने की ठानी थी उसमें उसे हार माननी पड़ी। उसका कथन था कि "जिस वस्तु की कामना हो उसे सामने पर कभी न छोड़े—यही स्पष्ट बात और सच्चित मार्ग है।" पर वह अन्त तक इस मार्ग पर न चलसका। उस का कठोर हृदय भी विमला के लिये कभी कभी दुखित हो उठता था। वह सारे संसार की सम्पत्ति पर अपना पूर्ण अधिकार समझता था पर अन्त में विमला का रुपया और गहना वह अपने पास न रख सका। उसे स्वीकार करना पड़ा कि "तुम्हारे पास से मैं निर्धन भिखारी हो कर ही जासकता हूँ।" पर सन्दीप के पतन का वास्तविक कारण रुपये की आवश्यकता थी। वह जानता था कि विमला के साथ जिन उच्च और गहरे विषयों पर आलोचना हो रही है उन के बीच में रुपये की मांग बड़ी बेसुरी मालूम होगी। पर वह मांग हो बैठा। केवल यही नहीं, उसने लोभवश होकर विमला का अपमान भी किया। इसी समय से विमला

का मन उसकी ओर से फिर गया। उसकी आँखें खुलगयीं। जिसे वह देवता समझती थी वह एक साधारण लोभी मनुष्य दिखाई पड़ने लगा। उसकी "स्थूल प्रकृति" "तीक्ष्ण बुद्धि" के परदे में अधिक छिपी न रह सकी। सन्दीप अपने मार्ग से हट गया यही उसका अपराध था, इसीलिये उस का पतन हुआ। किन्तु ऐसा अपराध और पतन दोनों प्राकृतिक नियम के अनुसार हैं और यही बात मानवजाति के लिये बड़ी आशाजनक है।

एक बात इस उपन्यास से यह भी निष्कृष्ट हो सकती है कि रवि बाबू परदे के माननेवाले हैं और स्त्रियों का घरसे बाहर निकलना पसन्द नहीं करते। यह कहा जा सकता है कि यदि विमला परदे से बाहर न आती तो कुछ भी दुर्घटना न होती। इसी युक्ति को ज़रा और बढ़ाया जाय तो हम यह भी कह सकते हैं कि स्त्रियों का शिक्षित होना भी ठीक नहीं है। विमला की शिक्षा ही द्वारा सन्दीप उस पर आघात कर सका अन्यथा देश-भक्ति के प्रचार का उस पर कुछ भी असर न होता। यही उपदेश खींच-तानकर रवि बाबू के लगभग सारे उपन्यासों से निकल सकता है। पर ज़रा ध्यान देकर देखने से मालूम हो जायगा कि यह युक्ति किसी तरह ठीक नहीं है। रवि बाबू स्त्री और पुरुष के कार्यक्षेत्र को भले ही विभिन्न मानते हों पर साथ ही उनका यह भी विश्वास है कि बिना स्त्री की सहायता के जीवन का कोई विभाग सम्पूर्ण नहीं होता। इसके अतिरिक्त रवि बाबू ब्राह्म समाज के बड़े उत्साही नेता रहे हैं और ब्राह्मसमाज का परदे के विषय में जो विचार है वह सब जानते ही हैं।

इसलिये "घरे-बाहिरे" में जो दुर्घटना उपस्थित हुई है उसका कारण परदे का हटना नहीं बल्कि परदे का पूर्ण रूप से न हटना ही है। जब मास्टर चन्द्रनाथ बाबू ने विमला और सन्दीप का सम्बन्ध सीमा से बढ़ते हुए देखा तो उन्होंने निखिलेश से कहा, "देखो मैं एक बात कहता हूँ। विमला को कलकत्ते ले जाओ। यहाँ उसने संसार को बहुत संकीर्ण रूप में देखा है, सब मनुष्यों और सब वस्तुओं का ठीक परिमाण नहीं समझ सकती। उसे तुम दुनियाँ की ज़रा सैर कराओ—मनुष्य को और मनुष्य के कर्म-क्षेत्र को उसे अच्छी तरह देखलेने दो।" यदि पहिले ही से चन्द्रनाथ बाबू की राय पर काम किया जाता तो कुछ भी दुर्घटना उपस्थित न होती। सन्दीप का भी लगभग ऐसा ही विचार है। वह विमला और निखिलेश के विषय में कहता है, "नौ बरस से दोनों समझते रहे हैं कि घर और बाहर दोनों मानों एक ही वस्तु हैं पर अब समझ में आने लगा कि जो चीज़ें इतने दिन अलग रहीं हैं वे अकस्मात् कैसे एक हो सकती हैं? जो मनुष्य बहुत समय तक अंधेरे में रहा हो उसे यदि एकदम तेज़ रोशनी में लाकर खड़ा कर दिया जाय तो उसकी आँखों में अवश्य चकाचौंध हो जायगा पर उससे यह प्रमाणित नहीं होता कि प्रकाश में जाना ही बुरी बात है। निखिलेश अपनी स्वाभाविक उदारता के अनुसार स्वयं अपने ही को सारी दुर्घटना का उत्तरदाता समझता है। उसका विचार है कि "मैंने विमला की व्यक्तिगत प्रकृति का स्वतन्त्र रूप से विकास नहीं होने दिया। इसलिए आपत्ति का सामना हुआ। मेरे दबाव के कारण विमला का स्वतन्त्र

विकास ऊपर की ओर को न होसका और उसको अवरुद्ध जीवनधारा ने नीचे की ओर नीचे अपना बाँध काट डाला। यह छः हज़ार रुपया आज उसे चोरी करके लेना पड़ा—मेरे साथ वह स्पष्ट व्यवहार न कर सको क्योंकि वह जानती है कि कुछ बातों में मैं उसका दृढ़ता से विरोध करता हूँ।" यह ऊँचा और उदार विचार ठीक हो या न हो अब भी निखिलेश परदा सिस्टम के विरुद्ध है। इस सबसे यही नतीजा निकलता है कि रवि बाबू परदा 'सिस्टम' को अस्वाभाविक समझते हैं, वह स्त्रियों को जीवन के किसी विभाग से वंचित रखना नहीं चाहते और न उनके स्वतन्त्र विकास को किसी प्रकार रोकना चाहते हैं। ज़्यादा से ज़्यादा जो कहा जा सकता है वह यह है कि स्त्रियों की प्रकृति कोमल, स्नेहमयी और सूक्ष्म विचारों से परिपूर्ण होने के कारण वह समझते हैं कि राजनीतिक आन्दोलन की उत्तेजना में पड़कर उनके स्वभाव में अवश्य कुछ विकार उत्पन्न हो जायगा।

इसी प्रसंग में निखिलेश के चरित्र पर एक दृष्टि डालना अत्यावश्यक है क्योंकि उसकी आत्मकथाओं से स्वयं रवि बाबू के राजनीतिक और धार्मिक विचारों के विषय में बहुत कुछ मालूम हो सकता है। हर उपन्यास में लेखक को अपने पात्रों के चरित्र का बहुत कुछ अंश वास्तविक जीवन से लेना पड़ता है। निखिलेश के चरित्र में स्वयं रवि बाबू के चरित्र की झलक दिखाई पड़ती है। प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रेम, सर्वव्यापी उदारता और गम्भीर शान्ति निखिलेश के स्वभाव के प्रधान अंश हैं। विमला और सन्दीप की प्रीति बढ़ती देखकर उसका मन दुखी होता है पर उसको स्वतन्त्रता में बाधा डालने का उसे ध्यान तक नहीं आता। वह कहता

है, "हाँ! मानों शब्द हां से अधिकार और सत्य दोनों निश्चित हो गये! एक शब्द के भीतर क्या मनुष्य की समस्त आत्मा को हाथ पाँव बाँध कर क़ैद कर सकते हैं? ...... यदि विमला कहे कि मैं तुम्हारी नहीं हूँ तो फिर मेरी सामाजिक स्त्री होकर चाहे जहाँ रहे, मुझसे कुछ वास्ता नहीं।" यह बात एक साधारण व्यक्ति में दुर्बलता की निशानी समझी जाती। सन्दीप भी हैरान है कि यह क्या बात है। "निखिल बड़ा विचित्र मनुष्य है, बिलकुल ही दुनिया से निराला है। ...... वह खूब समझता है कि एक घोर विपत्ति का सामना है। फिर क्यों मुझे घर से निकाल बाहर नहीं करता?" अधिकार, शक्ति और अवसर रहने पर भी निखिलेश ने बल का प्रयोग नहीं किया। इसे हम दुर्बलता कैसे कह सकते हैं? यह यान असाधारण मानसिक बल के बिना सम्भव नहीं है। जैसा कि कालिदास ने रघुओं के गुण बखानते हुए कहा है "ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ।"

रवि बाबू की सम्मति में मनुष्य का परम उद्देश्य अपने जीवन में अनन्त को प्रत्यक्ष देखना है। ससीम को त्याग कर ही हम असीम को प्राप्त कर सकते हैं। यदि मानुषिक प्रकृति सांसारिक घटनाओं में ऐसी जकड़ जाय कि असीम को अपनी पहुँच से खो बैठे तो वास्तव में मनुष्य की स्थिति बड़ी शोचनीय है। निखिलेश का सिद्धान्त भी यही है। सांसारिक सम्बन्ध से दुखित होकर उसका मन असीम और अनन्त की ओर खिंचता है।

"तू कैसा हतभाग्य है जो एक बार जगत् के राजमार्ग पर खड़ा होकर अपने आप को सबके साथ मिलाकर नहीं

देखता! यहां युगयुगान्तरों के महामेले में लाखों करोड़ों आदमियों की भीड़ में बिमला तेरा कौन है?"

"एक स्त्री के संयोगवियोग का सुखदुख छोड़कर इस पृथ्वी पर और भी अनेक वस्तुएं हैं। मनुष्य का जीवन बहुत विस्तृत है। उसके बीच में खड़े होकर ही हम अपने दुख-सुख का ठीक अन्दाज़ा करसकते हैं।"

"मैं सोचता हूं कि हमारी आत्मा का विश्व के साथ सुर मिलने से जो संगीत उठता है, वह कैसा उदार है, कैसा गम्भीर है, कैसा अनिर्वचनीय सुन्दर है!"

रवि बाबू के राजनीतिक विचार भी "घरे-बाहिरे" से भली भांति मालूम हो सकते हैं। १९०५ में बंगविच्छेद के विरुद्ध जो आन्दोलन आरम्भ हुआ था उससे रविबाबू को पूर्ण सहानुभूति थी। उनके व्याख्यान, लेख और कविताओं ने बंगाल के नवयुवकों को उत्तेजित करने में बड़ी सहायता की थी। पर "घरे-बाहिरे" लिखने के समय तक उनके विचारों में बहुत परिवर्तन हो चुका था। यह परिवर्तन जिस प्रकार उनकी अंगरेज़ी पुस्तक "राष्ट्रीयता" से मालूम होता है उसी प्रकार "घरे-बाहिरे" से भी स्पष्ट है। असहयोग आन्दोलन के प्रति भी रवि बाबू के विचार "घरे-बाहिरे" पढ़ने से मालूम हो जायंगे क्योंकि असहयोग और बंगविच्छेद आन्दोलन में बहुत सी समानता पायी जाती है।

रवि बाबू ने यौरोप की स्वार्थपूर्ण और हिंसात्मक राष्ट्रीयता पर जो आक्षेप किया है उससे यह न समझना चाहिए कि वह वास्तविक राष्ट्रीय स्वतंत्रता के भी विरुद्ध हैं। उन्हें अपने देश से गहरा प्रेम है पर वह अन्य देशों से द्वेष रखना नहीं चाहते। उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता

का वास्तविक फल यही होना चाहिये कि भारतवर्ष अपनी राष्ट्रीय आत्मा को पहचाने और समस्त संसार को अपना आध्यात्मिक सन्देश उच्च स्वर से सुना दे। यह बात केवल कष्ट-सहन और त्याग द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। अन्य कोई उपाय नहीं है। केवल कपड़े फूँकने और वन्देमातरम् पुकारने से काम न चलेगा। जैसा कि निखिलेश ने कहा है, "जो लोग देश को साधारण और सत्य भाव से देश समझ कर ... ... सेवा और भक्ति के लिए उत्साहित नहीं होते, जो लोग गुल मचा कर, माँ कह कर, देवी कह कर, मन्त्र पढ़ कर केवल उत्तेजना की खोज में रहते हैं उन लोगों के मन में देश-भक्ति का नहीं नशेबाज़ी का ध्यान रहता है।" दबाव और ज़बरदस्ती के रवि बाबू उतने विरुद्ध हैं जितने महात्मा गांधी। निखिलेश सन्दीप के सब अपराध क्षमा करता है पर जब सन्दीप उसकी रैयत के साथ दबाव और ज़बरदस्ती से काम लेने लगा तो उसने निःसङ्कोच कह दिया कि अब तुम मेरे इलाक़े में न रह सकोगे। हमारे राजनीतिक आन्दोलन में जो हिंसा और उत्तेजना का अंश आगया है इसे रवि बाबू पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव समझते हैं। चन्द्रनाथ बाबू कहते हैं, "न जाने यह पाप की महामारी कहाँ से हमारे देश में आ घुसी है!"

जिस सरलता, निष्पक्षता और साहित्यिक निपुणता से रवि बाबू ने इन सिद्धान्तों को विवेचना की है उस का अन्दाज़ा पाठक सारी पुस्तक पढ़ कर ही कर सकते हैं। यहाँ इस विषय में कुछ अधिक न लिख कर अन्य दो चार बातों की आलोचना आवश्यक है।

"घरे-बाहिरे"* पर एक यह आक्षेप किया गया है कि इसका घटनाक्रम स्वाभाविक नहीं है। किसी हिन्दू घराने में ऐसी घटनाओं का उपस्थित होना असम्भव है। स्वयं रवि बाबू इस बात का उत्तर यह देते हैं, कि उपन्यास और वास्तविक जीवन में कुछ भेद अवश्य होता है। जो घटनाएं वास्तव में उपस्थित होती हैं केवल उन्हीं के आधार पर उपन्यास लिखना कठिन है। मानव प्रकृति में जो सम्भावनाएं विलुप्त हैं उन्हीं के आधार पर समस्त उत्तम नाटक और उपन्यास रचे गये हैं। घटनाएं विभिन्न स्थानों में विभिन्न प्रकार से उपस्थित होती हैं पर मनुष्य का स्वभाव हर स्थान में और हर समय एक सा रहता है। इसी स्वभाव पर लेखक की दृष्टि जमी रहती है। वैदिक समय से अब तक मानुषिक प्रकृति और सामाजिक नियमों में युद्ध होता आया है। ऐसा कोई हिन्दू समाज नहीं है जहाँ प्रकृति और धार्मिक नियम का संघर्षण बिलकुल असम्भव हो। जहाँ पाप की सम्भावना नहीं होती वहाँ पुण्य को भी स्थान नहीं मिलता। यदि किसी कट्टर हिन्दू वंश के लोगों के लिए धर्म के विरुद्ध काम करना बिलकुल असम्भव है तो वह लोग न अच्छे हैं न बुरे। वह केवल कठपुतली के समान हैं और प्राचीन शास्त्र उन्हें चाहे जिस प्रकार नचा सकते हैं।*

पर यह उत्तर स्वीकार करने पर भी उपन्यास में कुछ अस्वाभाविकता बाकी रहती है। अमूल्य का डाका

---

*माडर्न रिव्यू—सितम्बर, १६१८।

डाल कर छः हज़ार रुपया उड़ा लेने का वृत्तान्त विश्वसनीय मालूम नहीं होता। श्रमूल्य का साहस और खज़ानची की कातरता दोनों असाधारण और अस्वाभाविक हैं। रविबाबू के पात्र भी प्रायः असाधारण होते हैं। निखिलेश और सन्दीप जैसे मनुष्य वास्तविक जीवन में नहीं मिलते; इस सब का कारण रविबाबू को कल्पना का उच्च उड्डयन है। उनके उपन्यासों में भी कविता का बहुत कुछ अंश आ घुसता है। पर हमें स्मरण रखना चाहिये कि यही बात रविबाबू के उपन्यासों को कहीं से कहीं पहुँचा देती है। सम्भव है कि घटनाक्रम और चरित्र-चित्रण में उनसे बढ़कर लेखक मौजूद हों पर भाव-चित्रण और कल्पना-शक्ति में इस श्रेणी का दूसरा लेखक शायद ही मिल सके।

रविबाबू के उपन्यासों के विषय में प्रायः यह भी कहा जाता है कि उनमें स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की ऐसे स्पष्ट रूप से विवेचना की जाती है कि वह हृदय में शुद्ध और धार्मिक विचारों का संचार नहीं करते बल्कि कुवासनाओं को प्रेरित करते हैं। पर ज़रा सोचने पर मालूम होजायगा कि यह आक्षेप किसी प्रकार ठीक नहीं है। विमला और सन्दीप के अशुद्ध प्रेम की स्पष्ट विवेचना से केवल यही साबित होता है कि मानुषिक प्रेम जब तक शुद्ध और वास्तविक न हो उससे आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। मानुषिक प्रेम यदि शुद्ध और वास्तविक हो तो उससे बढ़ कर कोई मानसिक भाव विधाता ने नहीं रचा। मानुषिक प्रेम द्वारा ही हम दिव्य प्रेम से परिचित होते हैं। आत्म-विस्मरण आध्यात्मिक अनुभव का सबसे ऊँचा दरजा है। मानुषिक प्रेम द्वारा प्रकृति हमें इसी आत्मविस्मरण का उपदेश देती

है। इस लिये रविबाबू का विश्वास है कि प्रवृत्तियों का दमन करने से नहीं बल्कि उन्हें आध्यात्मिक रूप में परिवर्तित करने ही से वास्तविक शान्ति प्राप्त हो सकती है।

रविबाबू के उपन्यासों तथा "घरे-बाहिरे" को साहित्य में चिरस्थायी स्थान मिलेगा या नहीं इस प्रश्न का उत्तर देना अभी कठिन है। प्रत्येक वर्ष हज़ारों उपन्यास छपते हैं पर ऐसे उपन्यास शताब्दी में दोचार ही निकलते हैं जो समय का आघात सहकर सौ दोसौ वर्ष तक जीवित रहें। पर रवि बाबू के उपन्यासों में भी रचनात्मक कल्पना साहित्यिक आकार और लेख-शैली के वह समस्त गुण मौजूद हैं जिनके कारण उनकी अन्य रचनाएँ जाति और स्थान की सीमा से मुक्त हो गई हैं। यदि शरत बाबू का यह कहना ठीक है कि कालिदास के बाद रवि बाबू से बड़ा लेखक बंगाल में नहीं जन्मा* तो "घर और बाहर" के लिए सुदीर्घ वयस की आशा अनुचित न होगी।

— रघुकुल तिलक।

---

*प्रभा—मई १९२३, पृष्ठ ३६६।

कृतज्ञता-ज्ञापन।

'घरे बाहिरे' जैसे उच्च कोटि के उपन्यास के अनुवाद की आज्ञा देने के लिए हम श्रद्धेय रवि बाबू के साथ साथ महात्मना पादरी एंड्रूज़ साहब के भी हृदय से कृतज्ञ हैं जिनकी कृपा के कारण ही हम इसे हिन्दी-संसार के सामने रख सके।

— प्रकाशक.

घर और बाहर

विमला की आत्म-कथा।

(१)

मेरा विवाह एक ऐसे राजघराने में हुआ जिस का आदर-सम्मान बादशाहों के समय से चला आता था। यहाँ जैसे अनेक विधिविधान मनु-पराशर के माने जाते थे वैसे ही बहुत से कायदे-कानून मुग़ल-पठानों के भी प्रचलित थे। पर मेरे स्वामी बिलकुल नई चाल के थे। इस घर में उन्हीं ने सब से पहिले ढंग से लिखना पढ़ना सीखा और एम० ए० पास किया। उनके दोनों बड़े भाई शराब पी-पी कर थोड़ी उम्र में ही मर चुके थे। वे कोई बाल-बच्चा भी नहीं छोड़ गये थे।

मेरे स्वामी शराब नहीं पीते थे। उनके चरित्र में चंचलता नहीं थी — यह बात इस घर में ऐसी नई थी कि लोग इसे पसन्द नहीं करते थे। उनकी धारणा थी कि जिनके घर में लक्ष्मी नहीं है, उन हो को अत्यन्त निर्मल होना शोभा देता है; कलंक का स्थान तारों में नहीं, चांद में ही होना है।

मेरे ससुर और सास की मृत्यु बहुत पहिले ही चुकी थी। घर को देख-भाल दादिस करती थीं। मेरे स्वामी उनके गले के हार और आंखों के तारे थे। इसलिए उन्हें साधारण नियमों के उल्लंघन करने का साहस पड़ जाता था। जब उन्होंने मिस गिलबी को मेरी संगनी और शिक्षक नियुक्त किया, तब घर-बाहर, जितने मुंह थे, सभी ज़हर उगलने लगे; पर तो भी मेरे स्वामी को ज़िद बनी रही।

इसी समय उन्होंने बी० ए० पास करके एम० ए० की पढ़ाई शुरू की थी। कालेज में पढ़ने के लिए उन्हें कलकत्ते रहना पड़ता था। वे प्रायः रोज़ ही मुझे चिट्ठी भेजते थे। उनकी बातें थोड़ी और भाषा सरल होती थी। बड़े बड़े गोल अक्षर मानों स्निग्ध नेत्रों से मेरे मुंह की ओर देखते थे। मैं उनकी चिट्ठियां एक चंदन के बक्स में रखती थी और रोज़ बाग से फूल लाकर उनको ढक दिया करती थी।

मेरे स्वामी कहा करते थे कि स्त्री पुरुष को एक दूसरे पर समान अधिकार है क्योंकि उनके प्रेम का सम्बन्ध बराबर है। इस बात पर मैंने उनके साथ कभी तर्क नहीं किया। पर मेरा मन कहता था कि स्त्री का प्रेम पूजा कर के ही पूजित होता है, नहीं तो उसे तुच्छ समझना चाहिए।

हमारे प्रेम का प्रदीप जिस समय जलता है उस समय उस की शिखा ऊपर ही को उठती है।

आज मुझे याद आता है कि मेरे सौभाग्य के दिनों में कितने हृदयों में ईर्षा की आग धक-धक जल रही थी। ईर्षा की बात भी थी — मुझे जो कुछ मिला था, मानों मैंने धोखा देकर लिया था। पर धोखा तो सदा चलता नहीं, दाम देने ही पड़ते हैं, नहीं तो विधाता से सहा नहीं जाता। बहुत समय तक प्रतिदिन सौभाग्य का ऋण चुकाना पड़ता है, तभी अधिकार स्थिर होता है। भगवान हमें दे सकते हैं पर लेना अपने ही गुणों से होता है। पाई हुई चीज़ भी हमें प्रायः नहीं मिलती, हमारा ऐसा फूटा भाग है।

मेरे दादस, सास—सभी के असमान्य रूप की चर्चा होती थी। मेरी दोनों विधवा जिठानियों के समान सुन्दरी भी बहुत कम दिखाई पड़ती थी। बारी बारी जब उन दोनों का सौभाग्य लुट गया तो मेरी दादस ने प्रण कर लिया कि अपने पोते के लिए रूपवती बहू को खोज न करेंगी। मैं केवल सुलक्षण के बल इस घर में प्रवेश कर सकी। अन्यथा मेरा और कोई अधिकार नहीं था।

हमारे इस सुख-विलास से परिपूर्ण घर में स्त्री का स्त्री समझ कर बहुत कम आदर सम्मान होता था। यद्यपि शराब के झाग और वेश्याओं के घुंघरुओं की झङ्कार में हमारे घर की स्त्रियों के जीवन का सब रोना धोना डूब चुका था तथापि वे बड़े घर की बहू होने के अभिमान के सहारे अपना सिर उठाये हुए थीं। मेरे स्वामी शराब नहीं पीते थे। उन्होंने नारी मांस के लोभ में पाप की पशुशाला के द्वार पर

मनुष्यत्व की पूंजी नहीं लुटाई। क्या यह सब मेरे ही गुण से था? पुरुष के उद्भ्रान्त, उन्मत्त मन को वश में करने का कौन सा मन्त्र विधाता ने मुझे दिया था? केवल भाग्य, और कुछ नहीं! और उनके—जिठानियों के—समय का विधाता को होश नहीं था जो उनकी किस्मत का लिखा सभी कुछ टेढ़ा-तिरछा हो गया! सन्ध्या होते ही सुख का उत्सव उजड़ गया—सभा सूनी होगई, केवल रूप-यौवन की बत्ती सारी रात व्यर्थ जलती रह गई!

मेरे स्वामी के पौरुष की ओर उनकी दोनों भौजाइयां बड़ी अवज्ञा दिखाती थीं। बातों ही बातों में मैंने उनके अनेक आघात सहे। मैंने अपने स्वामी का सुहाग मानों चोरी करके लिया था। वे कहा करतीं, केवल छल ही छल है, इसकी हर बात में बनावट है; यही आजकल की सी विधियाना निर्लज्जता! "मेरे स्वामी मुझे आज कल के फ़ैशन के कपड़े पहनाया करते थे—रङ्ग बिरङ्गी जाकटें, साड़ी, शेमीज़, पेटिकोट इत्यादि। इन्हें देखकर जिठानियां कहा करतीं, "रूप तो है नहीं, ठाठ किए मरी जाती है! देह को मानों दुकान की तरह सजाये रहती है। लाज भी नहीं लगती।"

मेरे स्वामी सब जानते थे। पर स्त्रियों के प्रति उनका हृदय करुणा से भरा था। वे मुझसे बार बार कहते थे, "गुस्सा मत करो।" मुझे याद है, मैंने उन से एक बार कहा था, "स्त्रियों का मन बहुत छोटा और संकुचित होता है।" उन्होंने उत्तर दिया था, "वैसे ही जैसे चीन देश की स्त्रियों के पांव छोटे और संकुचित होते हैं। समस्त समाज ने हमारी स्त्रियों का मन चारों ओर से दवा दवा कर मानों

छोटा और संकुचित कर डाला है। भाग्य इनके जीवन को लेकर जुआ खेलता है, दांव पड़ने पर सब कुछ निर्भर है, स्वयं उनका कुछ अधिकार नहीं।"

मेरी जिठानियां जो कुछ मांगतीं वह उन्हें तुरन्त मिल जाता। उनकी मांग ठीक है या नहीं, वे इसका विचार तक न करते। पर जब मैं देखती कि वे इसके लिए ज़रा भी कृतज्ञ नहीं हैं तो मेरा मन भीतर से जल उठता। मेरी बड़ी जिठानी—जो जप-तप, व्रत, उपवास में लगी रहतीं, जिन के जप-तप का मुंह पर इतना खर्च रहता कि मन के लिए कुछ भी शेष न बचता—बहुधा मुझे सुना सुना कर कहतीं, "मुझ से मेरे वकील भाई कहते हैं, यदि हम अदालत में नालिश करें तो हम ... ...।" पर इस सब बकवास के दुहराने से लाभ ही क्या? मैंने अपने स्वामी से वादा कर लिया था कि किसी दिन भी उनकी बात का उत्तर न दूंगी। इसी से उस जलन का सहना और भी कठिन था। मैं सोचती थी, भलेपन की भी हद है, हरदम सहना पौरुष की कमी दिखाता है। सच बात कहूं? अनेक बार मैंने मन में सोचा कि मेरे स्वामी का मन ज़रा कड़ा होता तो बहुत अच्छा होता।

मेरी छोटी जिठानी का ढंग और तरह का था। उन की उम्र कम थी, उन्हें सात्त्विकता का दावा भी नहीं था। उनकी बात चीत और हँसी ठठोलों में रस का मेल पाया जाता था। उन सब युवती दासियों की चाल ढाल ठीक न थी, जो उन्होंने अपने पास रख छोड़ी थीं। पर इस पर कोई आपत्ति करनेवाला नहीं था; क्योंकि इस घर का यही

दूसरा था। मैं सोचती थी, मेरे स्वामी कलंकरहित हैं—मेरा यही विशेष सौभाग्य उनके लिए असह्य है। मेरे स्वामी की इनके दुःख ही पर दृष्टि थी, दोष पर नहीं। मैं कहती, "अच्छा, सब दोष समाज ही का सही, पर इतनी अधिक दया करने की क्या ज़रूरत ? क्या हुआ यदि आदमी ने ज़रा सा कष्ट ही सह लिया।" पर उनसे कौन जीतता ? वे केवल हंस देते।

मेरे स्वामी की बड़ी इच्छा थी कि मुझे घर से बाहर ले जायं। एक दिन मैंने उनसे कहा, "बाहर से मुझे लेना ही क्या है ?"

वे बोले, "संभव है, बाहर को तुमसे कुछ लेना हो।" मैंने कहा, "मेरे बिना जब इतने दिन बाहर का काम चलता रहा, आज भी चले जायगा। वह फांसी लगा कर मर नहीं जायगा।"

"मरे तो मरने दो, मैं इस लिए नहीं सोचता। मैं तो अपने ही लिए सोचता हूं।"

"हां, सच कहना, तुम्हें अपने लिए क्या चिन्ता है ?"

मेरे स्वामी ज़रा हँसकर चुप हो गये। मैं उनकी बातें जानती हूं। इसी लिए, मैंने कहा, "ना, इस तरह चुप हो कर टालने से काम नहीं चलेगा। इस बातको तुम्हें ख़तम करके जाना होगा।"

उन्होंने कहा, "बात क्या मुंह की बात से ही ख़तम होती है। जीवन में अनेक बातें ऐसी हैं जो कभी ख़तम नहीं होतीं।"

"ना, इस समय पहेलियां रहने दो, बात बताओ।

" मैं चाहता हूँ कि बाहर जाकर तुम मुझे प्राप्त करो और मैं तुम्हें। अभी हमारी पारस्परिक प्राप्ति नहीं हुई ?"

" क्यों यहां की प्राप्ति में क्या कसर रह गई ?"

" यहां तुम मुझमें मिल रही हो—तुम नहीं जानतीं कि तुम किसे चाहती हो। तुम यह भी नहीं समझतीं कि तुमने प्राप्त किसे किया है ?"

" देखो, तुम्हारी ये बातें मुझसे न सही जायेंगी !"

" इसीलिए तो मैं कहना नहीं चाहता।"

" तुम्हारा चुप रह जाना और भी नहीं सहा जाता।"

ये सब बातें मुझे बिलकुल पसन्द नहीं थीं। पर उस समय बाहर न निकलने का यह कारण नहीं था। मेरी दासी उस समय जीवित थीं। उनके मत के विरुद्ध मेरे स्वामी ने प्रायः बीस आना घर बीसवीं शताब्दी से (आधुनिक फैशन की चीज़ों से) भर दिया था। उन्होंने भी अपने मन को समझा लिया था। राजघराने की वहू यदि घूंघट उठा कर बाहर निकली तो भी वे कुछ न कहतीं। वे जानती थीं कि यह भी एक दिन हो कर रहेगा। पर मैं सोचती थी कि यह ऐसी कौन सी ज़रूरी बात है जिसके लिए उन्हें कष्ट दिया जाय। मैंने किताब में पढ़ा था कि स्त्रियां पिंजड़े की चिड़ियां होती हैं। और की बात तो नहीं कहती पर मुझे तो इसी पिंजड़े में इतना कुछ मिला कि सारी दुनियां में उसको समाना कठिन है। उस समय मेरा यही विचार था।

मेरी दासी को मुझसे बड़ा प्रेम था। इसका कारण यही था कि उनके विश्वास से मैं जो अपने स्वामी का

मन आकृष्ट करने में सफल हुई यह मानों मेरा ही गुण था। वे समझती थीं यह मेरे ग्रह-नक्षत्र का प्रभाव है। पुरुषों का धर्म ही है रसातल में धँसते जाना। उनके किसी और पोते को उनकी पोत-बहुएँ अपने सारे रूप-यौवन के ज़ोर से भी घर की ओर न खींच सकतीं, वे पाप की आग में जल-भुन कर छार हो गये, तौभी उन्हें कोई न बचा सका। दादस ने समझा था कि उनके घर में पुरुषों की अकाल-मृत्यु की आग मैंने ही बुझाई है। इसी कारण वे मुझे सदा मानों हृदय में रखती थीं। मुझे ज़रा भी कुछ हो जाय तो वे डर से कांप जाती थीं। मेरे स्वामी अँगरेज़ी दुकानों से पोशाक लाकर मुझे सजाते थे। यह बात उन्हें बिलकुल पसन्द नहीं थी; पर सोचती थीं, "पुरुषों के ऐसे अनेक शौक़ रहा ही करते हैं, जो बिलकुल व्यर्थ होते हैं और जिन से नुकसान ही नुकसान होता है। उनको रोकने से भी काम नहीं चलता। वे अपना बिलकुल ही सत्यानाश न कर लें, इसी में रक्षा समझनी चाहिये। मेरा निखिलेश बहू को न सजाता तो किसी और को सजाने जाता।" इसीलिए जब कभी मेरे लिए नये कपड़े लाते तो वे मेरे स्वामी को बुला कर ख़ूब हँसी मज़ाक़ किया करतीं। होते होते आख़िर में उनकी पसन्द का रंग भी बदल गया था। कलियुग के कल्याण से अन्त में उनकी ऐसी दशा हो गयी थी कि पोतबहू अंगरेज़ी पुस्तक से उन्हें गल्प न सुनाती तो उनकी सन्ध्या ही न कटती।

दादी की मृत्यु के बाद मेरे स्वामी की इच्छा हुई कि मैं कलकत्ते जाकर रहूं। किन्तु मेरा मन किसी तरह न

माना। मैं बार बार सोचती थी कि यह जो मेरे ससुर का घर है, उसे दादस ने कितना दुख, कितना विच्छेद सह सह कर कितने यत्न के साथ इतने दिन तक चलाया! यदि मैं इस सारे भार को छोड़ छाड़ कर कलकत्ते चली जाऊं तो मुझे ज़रूर शाप लगेगा। दादस का खाली आसन मेरे मुँह की ओर बड़े अर्थपूर्ण भाव से देख रहा था! वह साध्वी आठ बरस की उम्र में इस घर में आई थीं और उनासी बरस की उम्र में मरीं। उन्हें जीवन में सुख नहीं मिला। भाग्य ने उनकी छाती में एक एक करके अनेक बाण मारे, पर हर एक चोट पर उनके जीवन से अमृत ही उछल कर निकला। यह सारा घर उसी नेत्र-जल के पुरय की धारा से पवित्र है। मैं इसे छोड़ कर कलकत्ते के जंजाल में घुस कर क्या करूँगी?

मेरे स्वामी ने सोचा था कि इस सु-योग पर मेरी दोनों जिठानियों को घर का समस्त कर्त्तव्य सौंप जायेंगे तो उनके मन को भी सान्त्वना होगी और हमारे जीवन को भी कलकत्ते में डालपात फैलाने को जगह मिलेगी।

मुझे यह बात असह्य जान पड़ी। जिठानियों ने मुझे कितना जलाया है। वे मेरे स्वामी का कभी भला नहीं देख सकीं। आज क्या उन्हें इसी का पुरस्कार मिलेगा?

इसके अतिरिक्त जब किसी दिन यहां लौट कर आयेंगे तो मेरा योग्य स्थान क्या मुझे फिर भी मिल सकेगा? मेरे स्वामी कहते "तुम्हें उस स्थान से लेना ही क्या है? इसे छोड़कर जीवन में और भी तो अनेक बहुमूल्य वस्तु हैं"।

मैंने मन ही मन कहा, "पुरुष ये सब बातें अच्छी तरह

नहीं समझते। उन्हें तो अपनी बाहर की बैठक से मतलब रहता है। वे घर-गृहस्थी का वास्तविक अर्थ क्या जानें? इस जगह उन्हें स्त्रियों की मति के अनुसार चलना ही उचित है।"

सच से बड़ी बात यह थी कि मैं अपना तेज बनाये रखना चाहती थी। जो सदा से शत्रुता करते आये हैं उनके हाथमें सब कुछ छोड़ छाड़ कर चले जाना बिलकुल हार मानना है।

(२)

बंगाल में एक समय स्वदेशी का बड़ा ज़ोर हुआ था। उस समय मेरी दृष्टि, मेरी आशा और इच्छा इस उन्मत्त नये युग के अबीर से लाल हो उठी थी। इतने दिन मन जिस जगत को एकान्त समझता था और जीवन के धर्म-कर्म, आकांक्षा, साधना को जिस सीमा के अन्दर संभाल कर रखने में लगा हुआ था, उसी में यद्यपि उस समय भी लगा रहा और उसकी बाढ़ न टूटी, पर उसी बाड़ के ऊपर खड़े होकर मैंने अकस्मात दूरदिगन्तव्यापी एक आवाज़ सुनी। अर्थ तो मैं स्पष्ट न समझ सकी पर उसके स्पर्श से भीतर ही भीतर मेरा आत्मा विह्वल हो उठा।

मेरे स्वामी जब कालेज में पढ़ते थे, तभी से उन्हों ने देश के प्रयोजन की चीज़ें देश ही में उत्पन्न करने के लिए बहुत चेष्टा की थी। एक बार उन्हों ने सोचा कि हमारे देश में जो बड़े बड़े कारबार नहीं चलते उसका प्रधान कारण बैंकों का अभाव है। उसी समय उन्हों ने मुझे पोलिटिकल इकानमी पढ़ानी शुरू की। उन्हों ने सोचा कि सब से पहले जनसाधारण के मन में बैंक में रुपया जमा करने की इच्छा

और अभ्यास पैदा करने की आवश्यकता है। एक छोटा सा बैंक खोला गया। सूद का दर चढ़ा होने के कारण बैंक में रुपया जमा करने का उत्साह गाँव के लोगों में खूब जागृत हो उठा। इसी मांदे सूद के छेद द्वारा बैंक डूब भी गया। यह सब देख कर रियासत के पुराने नौकर चाकर बहुत घबरा गये। बैरियों ने हँसी ठट्ठा करना शुरू किया। मेरी बड़ी जिठानी एक दिन मुझे सुनाकर कहने लगीं, मेरे वकील भैया कहते थे कि जज के सामने मामला पेश किया जाय तो अब भी इस पुराने घराने के आदर सम्मान और धन दौलत की इस पागल के हाथ से रक्षा हो सकती है।"

सारे घर में केवल मेरी दादस के मन में विकार नहीं था। वे कहा करती थीं, "तुम सब की सब मिलकर उसे क्यों तंग करती हो ! धन-दौलत की बात सोचती हो ? अपनी उम्र में मैंने तीन बार इस जायदाद को रिसीवर के हाथ में जाते देखा है। पुरुष क्या स्त्रियों के समान होते हैं ? वे तो उड़ाऊ होते हैं और केवल उड़ाना ही जानते हैं। पतिवह्न, तेरी तकदीर अच्छी है जो वह साथ साथ आप भी नहीं उड़ाता। तूने दुख नहीं उठाया, इसी से यह बात भूल जाती है !"

मेरे स्वामी के दान की मात्रा भी कम न थी। कपड़ा बुनने की कल, धान कूटने का यन्त्र या ऐसी ही और कोई वस्तु जिस किसी ने तैयार करने की चेष्टा की, उन्होंने उस को अन्तिम निष्फलता तक सहायता दी। विलायती कम्पनी के मुकाबले में पुरी यात्रा के जहाज़ चलाने के लिए एक स्वदेशी कम्पनी स्थापित हुई; उसका एक भी जहाज़ न डूबा पर

मेरे स्वामी के अनेक हिस्से डूब गये।

सब से बुरी बात मुझे यह लगती थी कि सन्दीप बाबू देश-उपकार के बहाने उनसे रुपया ऐंठा करते थे। कभी वह समाचार पत्र निकालते थे, कभी स्वदेशी का प्रचार करते जाते थे और कभी डाक्टर की राय से शान्त होकर उटकमंद में जा बैठते थे। मेरे स्वामी उनका सारा ख़र्च उठाते थे। इसके अतिरिक्त घर के ख़र्च के लिए उनका मासिक वेतन भी बंधा था। फिर यह बात भी नहीं थी कि मेरे स्वामी के और उनके विचारों में समानता ही हो।

जैसे ही यह स्वदेशी का तूफ़ान मेरी रगों में समाया मैंने स्वामी से कहा कि विलायती चीज़ों से तैयार किये हुए मेरे जितने कपड़े हैं सब को जला डालूंगी। स्वामी ने कहा, "जलाती क्यों हो? जितने दिन मन न चाहे मत पहिनो, यही काफ़ी है।"

"जितने दिन मन न चाहे क्या? मैं इस जीवन में कभी ... ...।"

"अच्छा तो इस जीवन में मत पहनो। फूंक-फांक का स्वांग रचने की क्या ज़रूरत है?"

"तुम्हारा इससे क्या बिगड़ता है?"

"मैं कहता हूं बनाने संवारने के काम में प्रयत्न करो। अनावश्यक तोड़ने फोड़ने की उत्तेजना में एक कौड़ी भी न खोनी चाहिये।"

"इसी उत्तेजना से बनाने संवारने में सहायता मिलती है।"

"यही कहती हो तो यह भी कहना पड़ेगा कि आग

लगाने से ही घर में उजाला हो सकता है।"

एक और भी गड़बड़ी थी। मिस गिलबी जब हमारे घर में आई तो कुछ दिन तक इसी बात पर बहुत गुल मचा। इस के बाद होते होते बात दब गई थी पर अब फिर वही झगड़ा उठ खड़ा हुआ। मिस गिलबी अंग्रेज़ है या हिन्दुस्तानी—इस बात का ध्यान भी पहले मुझे नहीं आया था—पर अब आने लगा। मैंने स्वामी से कहा कि मिस गिलबी को विदा करना पड़ेगा। वे चुप हो गये।

मिस गिलबी नहीं गई। एक दिन मैंने सुना कि गिरजा जाते समय हमारे कुटम्ब के एक लड़के ने उसका अपमान किया। मेरे स्वामी ने इस लड़के को अपने घर रखकर पाला था। उन्होंने इस बात पर उसे घर से निकाल दिया। इससे बड़ी गड़बड़ मची।

उन दिनों उन का यह व्यवहार कोई माफ नहीं कर सकता था। मैंने भी माफ़ नहीं किया। इस बार मिस गिलबी आप ही चली गई। जाते समय उस की आँखों से आँसू बहने लगे— पर मुझ पर कुछ असर नहीं हुआ। देखो तो भूठ मूठ लड़के का सर्वनाश कर गई—और फिर ऐसा लड़का! स्वदेशी के उत्साह में उसका खाना पीना तक छूट गया था। मेरे स्वामी ने मिस गिलबी को स्टेशन ले जाकर खुद रेल में सवार करा दिया। यह मुझे बहुत बुरा लगा। जब इस बात को राई का फावड़ा बन गया और मामला समाचार-पत्रों तक पहुँचा तो मैंने सोचा उन्हें अपने किये का फल मिल गया।

इस से पहले मुझे स्वामी की बातों पर अनेक बार चिन्ता

अवश्य हुई थी पर मैं उनके लिए लज्जित नहीं थी। इस बार मुझे लज्जा हुई। मैं यह नहीं जानती कि नरेन ने मिस गिलबी के प्रति कुछ अन्याय किया था या नहीं पर उन दिनों इस बात पर निष्पक्ष रूप से विचार करना ही लज्जा की बात थी। जिस भाव से नरेन को अंग्रेज़ स्त्री का सामना करने का साहस हुआ था, मैं उसे किसी तरह भी दबाना नहीं चाहती थी। मैं इसे अपने स्वामी की दुर्बलता समझती थी कि वह इस बात को किसी तरह न समझ सके। इसी से मुझे लज्जा होती थी।

इससे यह न समझना चाहिए कि मेरे स्वामी को स्वदेशी से कुछ वास्ता ही न था। वास्ता था, पर वह "वन्देमातरम्" मन्त्र को पूर्णरूप से ग्रहण न कर सके थे। वह कहा करते थे, "देश की सेवा करने को तैयार हूँ, पर देश की वन्दना करना देश का सत्यानाश करना है।"

(३)

इसी समय सन्दीपबाबू अपना दल बल लिये स्वदेशी का प्रचार करते हमारे यहाँ आ उपस्थित हुए। संध्या-समय सभा होने को थी। हम सब स्त्रियां दालान की एक ओर चिक डाले बैठी थीं। वन्देमातरम् का सिंहनाद धीरे धीरे निकट आरहा था। दिल की धड़कन बढ़ती जाती थी। अकस्मात्, सिर पर पगड़ी बाँधे, गेरुवे कपड़े पहने, नंगे पाँव वाले बालक और युवकों का दल सूखी नदी में प्रथम वर्षा की गेरुवी बाढ़ की धारा के समान हड़बड़ाता हुआ हमारे प्रकाण्ड आँगन में घुस पड़ा। सारा आँगन

भर गया। उसी भीड़ में दस बारह आदमी सन्दीप बाबू को एक बड़ी चौकी पर बिठाये हुए कंधे पर उठा कर ले आये। वन्देमातरम्! वन्देमातरम्!! वन्देमातरम्!!! ऐसा मालूम पड़ता था कि आकाश फटकर टुकड़े टुकड़े हो जायगा।

सन्दीप बाबू का फ़ोटू पहले ही देख चुकी थी। यह मैं नहीं कह सकती कि वह मुझे उस समय अच्छा लगा था। देखने में बुरा नहीं था, नहीं, बल्कि अच्छा ही था, तोभी न जाने क्यों ऐसा जान पड़ता था कि उज्ज्वलता तो अवश्य है पर चेहरा मानों बहुत मिलाव के साथ गढ़ागया है — आँखों और ओठों में खरी धातु की झलक दिखाई न पड़ी। इसीलिए जब मेरे स्वामी बिना आगा पीछा सोचे उनकी सब फरमायशें पूरी करते थे, तो मुझे अच्छा नहीं लगता था। अपव्यय तो मैं सह भी लेती, पर मैं केवल यही सोचती थी कि मित्र होकर सन्दीपबाबू मेरे स्वामी को ठगते हैं। और फिर उनकी चाल ढाल भी साधुओं या ग़रीबों की सी नहीं थी, अच्छे ख़ासे छैला दिखाई पड़ते थे; और मन में भोग विलास की इच्छा भी मौजूद थी। इसी प्रकार के नाना विचार मेरे मन में उठते थे। आज फिर वही सब बातें याद आगईं।

उस दिन सन्दीप बाबू जब व्याख्यान देने लगे और उस वृहत् सभा का हृदय हिलकर फटने लगा तो सन्दीप बाबू एक आश्चर्य मूर्त्ति दिखलाई पड़े। विशेषतः जब एक बार अस्त होते हुए सूरज की किरण अकस्मात् उनके मुँह पर आ पड़ी तो जान पड़ा मानों देवताओं ने सब नर नारियों के सामने

यह बात प्रकाशित करदी कि वह वास्तव में अमरलोक के निवासी हैं। वक्तृता के आरंभ के अन्त तक हर बात मानों एक प्रबल हवा का झोंका थी। साहस का अन्त नहीं था। मुझे आँखों के सामने अब चिक का पड़ा रहना असह्य हो उठा। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैं ने किस समय बेखबरी में चिक सामने से हटाकर बाहर मुँह करके उनके मुँह की ओर देखा था। सारी सभा में एक भी आदमी ऐसा नहीं था जिसे मेरी ओर दृष्टि डालने का अवकाश मिलता। केवल एक बार मैंने देखा कि काल-पुरुष के नक्षत्र के समान सन्दीप बाबू के दोनों उज्ज्वल नेत्र मेरे मुख पर आपड़े। पर मुझे होश ही नहीं था। मैं क्या उस समय राज-घराने की बहू थी? मैं बंगाल की सब स्त्रियों की एक मात्र प्रतिनिधि थी—और वे बंगाल के वीर थे। जिस प्रकार आकाश से सूर्यालोक उनके माथे पर आकर पड़ा था उसी प्रकार नारीचित्त द्वारा उनका अभिषेक भी होना चाहिये था अन्यथा उनकी रण-यात्रा का मांगल्य कैसे पूरा होता?

उस दिन मैं एक अपूर्व आनन्द और अहंकार की दीप्ति साथ ले कर घर आई। अन्दर ही अन्दर एक प्रबल आग का तूफ़ान मुझे एक केन्द्र से खींचकर दूसरे केन्द्र में ले गया। मुझे इच्छा होने लगी कि ग्रीस की वीराङ्गनाओं के समान उस वीर के धनुष की डोरी बनाने के लिए अपने ये आजानुलम्बित केश काट डालूँ। यदि भीतर के चित्त का बाहर के गहने से संयोग होता तो मेरा कंठा, मेरा गले का हार, मेरा बाजूबन्द — एक एक करके सब उस सभा में बरस पड़ते। स्वयं अपने को कुछ हानि पहुँचा सकती तभी मानों उस आनन्द के उत्साह-वेग को सह सकती।

संध्या समय जब मेरे स्वामी घर में आये तब मुझे डर होने लगा कि कहीं वक्तृता के सम्बन्ध में कोई बेसुरी बात न कह बैठें। कहीं ऐसा न हो कि उनकी सत्यप्रियता को ठेस लगी हो और वह असम्मति प्रकट करने लगें। यदि ऐसा होता तो मुझसे उनकी अवज्ञा किए बिना न रहा जाता।

पर वे कुछ भी न बोले। मुझे यह भी अच्छा नहीं लगा। उन्हें कहना चाहिए था, "आज सन्दीप बाबू की बातें सुनकर आँखें खुल गईं। इस विषय में इतने दिन से जिस भूल में पड़ा था, आज वह सब दूर होगई।" मुझे जान पड़ा कि वह केवल अपनी ज़िद रखने को चुप हैं और जान बूझ कर अपना उत्साह प्रकट नहीं करते।

मैंने पूछा, "सन्दीप बाबू और कितने दिन यहाँ रहेंगे ?"

स्वामी ने कहा, "वह कल प्रातः ही रँगपुर जायँगे।"

"कल प्रातः ही ?"

"हाँ, वहाँ उनकी वक्तृता का समय निश्चित होगया है।"

मैं थोड़ी देर चुप रही, फिर बोली, "किसी तरह कल यहाँ रहकर जाने से उनका काम नहीं चलेगा ?"

"यह तो सम्भव नहीं है, पर कहो बात क्या है ?"

"मेरी इच्छा है कि मैं स्वयं सामने जाकर उन्हें भोजन कराऊँ।"

यह सुन कर मेरे स्वामी को बड़ा आश्चर्य हुआ। इससे पहले कई बार उन्होंने अपने मित्रों के सामने बाहर जाने के लिए मुझ से अनुरोध किया था। मैं कभी राज़ी न हुई थी।

मेरे स्वामी ने मेरी ओर स्थिर-भाव से देखा—मैं उनके

मन को बात ठीक नहीं समझी। मन ही मन एकदम बड़ी लज्जा मालूम होने लगी। बोली, "ना, ना, रहने दो कुछ ज़रूरत नहीं।"

उन्होंने कहा, "ज़रूरत क्यों नहीं है? मैं सन्दीप से कहूँगा—यदि सम्भव हुआ तो वह कल ठहर कर चला जायगा।"

मैंने सुना कि ठहरना सम्भव हो गया।

सत्य कहूँ? उस दिन मैं यही सोचती थी कि ईश्वर ने क्यों मुझे अपूर्व सुन्दरी नहीं बनाया। किसी का मन हरने के लिए नहीं—पर इसलिए कि रूप एक प्रकार का गौरव होता है। आज इस महा अवसर पर देश के पुरुष, देशकी स्त्रियों के द्वारा, एक बार जगद्धात्री को देख लें! बाहरी रूप न होने से उनके नेत्र देवीको नहीं पहचानते। सन्दीपबाबू क्या मुझ में देश की उस जाग्रत शक्ति को देख सकेंगे? नहीं वह मुझे एक साधारण स्त्री समझेंगे—अपने मित्र की गृहणीमात्र।

उस दिन प्रातः ही मैंने अपने बालों को खूब धो-धाकर एक लाल रेशम के फीते से बाँध लिया। दोपहर के लिये खाने का निमन्त्रण था, इसीलिये बाल सुखा कर चोटी गूंथने का अवकाश नहीं था। मैंने उसी दिन ज़री के किनारे की एक सफ़ेद मद्रासी साड़ी पहनी। मेरी आधी आस्तीनों की जाकट में भी पतली सी ज़री की गोट लगी थी।

मेरा विचार था कि इन कपड़ों में संयम और सादगी दोनों बातें हैं—इससे अधिक सादापन और क्या होगा? इसी समय बड़ी जिठानी आकर मुझे सिर से पैर तक बड़े ग़ौर से देखने लगीं। इसके बाद वह दोनों होंट खूब चिचका कर ज़रा ज़रा हँसने लगीं। मैंने पूछा, "बीबी क्यों हँस रही हो?"

वह बोलीं, "तेरा साज देख रही हूं।"

मैं मन ही मन रुष्ट हो कर बोली, "इसमें हँसी की ऐसी क्या बात है?"

वह फिर ज़रा एक बार टेढ़ा मुँह करके हँसीं और बोलीं "बात बुरी नहीं, छोटी रानी, खूब सजती है! केवल यही सोचती हूं कि अपनी वह विलायती दुकान वाली छाती खुली जाकट पहन लेतीं तो साज बिलकुल ही ठीक हो जाता।"

यह कह कर वह केवल मुँह से या आँख से नहीं बल्कि सिर से पाँव तक सारे शरीर से व्यंगपूर्ण हँसी हँस कर कमरे से चली गईं। मुझे बड़ा गुस्सा आया, मैंने सोचा कि सब फेंक फांक के रोज़ के पहिरने की एक मोटी सी साड़ी पहन लूँ। पर मैं ऐसा क्यों न कर सकी नहीं जानती। मन ही मन कहने लगी यदि मैं भलेमानसों के से अच्छे कपड़े पहन कर सन्दीप बाबू के सामने न जाऊंगी तो स्वामी ज़रूर नाराज़ होंगे—स्त्रियाँ ही तो समाज की श्री हैं।

मैंने सोचा था कि सन्दीप बाबू जब भोजन के लिए बैठेंगे उसी समय उनके सामने आऊंगी। खिलाने पिलाने के काम की ओट में पहली बार का संकोच बहुत कुछ दूर हो जायगा। पर भोजन तय्यार होने में आज देर हो रही है—प्रायः एक बज चुका है। इसीलिए स्वामी ने परिचय कराने के लिए मुझे बुला भेजा है। कमरे में घुसते ही पहली बार सन्दीप बाबू की ओर देखने में बड़ी लज्जा मालूम हुई। किसी प्रकार उसे दबाकर साहस करके कह बैठी, "आज खाने में आपको बड़ी देर हो गई।"

वे बिना संकोच मेरे पास की कुरसी पर बैठकर बोले,

"देखिए, अन्न तो रोज़ ही किसी प्रकार मिल जाता है पर अन्न-पूर्णा परदे ही में रहती हैं। आज अन्नपूर्णा आई हैं, अन्न परदे ही में रह जाय तो क्या है?"

जैसा ज़ोर उनकी वक्तृता में था वैसा ही व्यवहार में भी था। सब जगह बिना विलम्ब अपना यथोचित आसन प्राप्त करलेने का मानों उन्हें अभ्यास था। कोई मन में कुछ सोच सकता है इस बात से उन्हें मतलब ही नहीं था। निकट आ कर बैठने का मानों उन्हें स्वाभाविक अधिकार है, और यदि इसमें कोई दोष दे तो दोष उसी का है।

मुझे लज्जा होने लगी, सन्दीप बाबू मन में यह न सोचें कि यह तो बिलकुल प्राचीन समय की जड़पदार्थ मात्र मालूम पड़ती है। मुंह से बातों की झड़ी लगजाय, कहीं भी बाधा न पड़े, एक एक उत्तर सुनकर वह अचम्भे में रह जायं, यह सब कुछ मुझसे किसी प्रकार भी न बन पड़ा, मुझे भीतर ही भीतर बड़ा कष्ट होने लगा—अपने आपको हज़ार बार भर्त्सना करके सोचने लगी, " मैं क्यों ऐसे एकदम उनके सामने आगयी?"

जब खाना पीना किसी न किसी तरह समाप्त हो गया तो मैं जल्दी से जाने लगी। वह फिर उसी प्रकार बिना संकोच दरवाज़े के पास आ मेरा रास्ता रोककर कहने लगे, "आप मुझे पेटू न समझें, मैं यहाँ खाने के लोभ से नहीं आया। मेरा लोभ तो केवल यही है कि आपने बुलाया था, यदि आप खाना पीना खतम होतेही भाग जाँयगी तो यह अतिथि के साथ बड़ा अन्याय होगा।"

यही बात दृढ़ता और आत्म-विश्वास के साथ न कही जाती तो बड़ी बेसुरी सुनाई पड़ती। और फिर वह मेरे स्वामी के ऐसे

बड़े मित्र थे कि मैं उनकी भाभी के समान थी। मैं जब लज्जा के साथ घोर लड़ाई करके सन्दीप बाबू की प्रबल आत्मीयता के क्षेत्र में पहुँचने की चेष्टा कर रही थी उस समय स्वामी मेरी कठिनाई देखकर मुझसे कहने लगे, "अच्छा तो तुम खाने पीने से निपट कर आजाना।"

सन्दीप बाबू ने कहा, "पर वादा करती जाइये। धोका न दीजियेगा।"

मैं ज़रा हँस कर बोली, "मैं अभी आती हूँ।"

उन्होंने कहा, "मैं आपका क्यों विश्वास नहीं करता, बताऊँ? आज निखिलेश का ब्याह हुए नौ बरस होगये। आप बराबर नौ बरस से मुझे चाल देती आयी हैं! अबके यदि फिर नौ बरस करने का इरादा हो तो बस आपके दर्शन होचुके।"

मैंने आत्मीयता दिखाते हुए मृदु कंठ से कहा, "क्यों, ऐसा क्यों होगा?"

वह बोले, "मेरी जन्मपत्री में लिखा है कि मैं थोड़ी ही उम्र में मरूंगा। मेरे बाप दादाओं में कोई भी तीस बरस से आगे नहीं बढ़ा। मेरा यह सत्ताईसवाँ बरस है।"

उन्होंने समझ लिया था कि यह बात मेरे दिल पर लगेगी। इस बार मेरे मृदु कंठ में जान पड़ता है करुण-रस का भी एक छींटा था। मैंने कहा, "सारे देश के आशीर्वाद से आपका संकट अवश्य कट जायगा।"

वह बोले, देश का आशीर्वाद देश-लक्ष्मियों के ही मुंह से लूंगा। इसी कारण तो आप को इस व्याकुलता से आने के लिए कह रहा हूं। फिर मेरा स्वस्त्ययन आज ही से आरंभ होजायगा।"

सन्दीप बाबू की सभी बातों में ऐसा ज़ोर था कि जो बात और किसी के मुंह से बिलकुल असह्य होती उनके मुँह से उचित ही जान पड़ती थी। हँसते हँसते कहने लगे, "देखिये अपने इन स्वामी को ज़ामिन बनाते जाइये। आप न आयेंगी तो ये भी न जासकेंगे।"

मैं जब जाने लगी तो उन्होंने फिर कहा, "मुझे ज़रा सी और ज़रूरत है।"

मैं रुक कर खड़ी होगयी। वे बोले, "डरिये मत, एक ग्लास जल चाहिये। आपने देखा होगा मैंने खाते समय जल नहीं पिया—खाने से ज़रा पीछे पीता हूं।"

इस पर मुझे उत्कण्ठित होकर पूछना ही पड़ा, "क्यों आप ऐसा क्यों करते हैं?"

किसी समय जो उन्हें अजीर्ण रोग हुआ था उसका इतिहास चला। फिर यह भी सुना कि प्रायः सात मास तक उन्हें कैसा असह्य कष्ट उठाना पड़ा था। ऐलोपैथ होमियोपैथ सब प्रकार के इलाजों से कुछ न होकर अन्त में कविराजी इलाज से उन्हें कैसा आश्चर्यजनक लाभ हुआ था। यह सब सुनाकर वह हँसते हँसते कहने लगे, "भगवान ने मेरी बीमारियों को भी ऐसा बनाया है कि तुरन्त स्वदेशी दवा न मिलने से वे विदा ही होना नहीं चाहतीं।"

मेरे स्वामी इतनी देर बाद बोले, "और विदेशी दवाओं की शीशियाँ भी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ना चाहतीं। तुम्हारे कमरे में जो एक दम तीन अलमारी ... ...।"

वह सब क्या है, जानते हो? प्युनिटिव* पुलिस के समान

* दंडदात्री।

हैं। वे केवल इसलिए नहीं हैं कि उनका कुछ प्रयोजन है—आधुनिक शासन में ये योंही सिर पड़ जाते हैं—केवल दंड ही देना नहीं पड़ता, डंडे भी खाने पड़ते हैं।"

कमरे से बाहर आकर देखा कि छोटी जिठानी खिड़की की झिलमिली ज़रासी खोले हुए बरामदे में खड़ी हैं। मैंने पूछा, "तुम यहाँ कैसे खड़ी हो?" उन्होंने फुसफुसा कर उत्तर दिया, "ज़रा बातें सुन रही हूँ।"

जब लौट कर आयी तो सन्दीप बाबू ने करुण स्वर से कहा, "आज जान पड़ता है आपने कुछ भी नहीं खाया।"

सुनकर मुझे बड़ी लज्जा हुई। मैं बहुत ही जल्दी लौट कर आगयी। बड़े घर के लोगों को खाने में जितना समय लगाना चाहिये उतना नहीं लगा। उस दिन मेरे खाने में न-खाने का ही अंश अधिक था—समय का हिसाब लगाने से यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता। पर यह हिसाब वास्तव में कोई लगा बैठा है इसका मुझे बिलकुल ध्यान नहीं था।

जान पड़ता है सन्दीप बाबू पर भी मेरी लज्जा प्रगट हो गयी इसीलिए मुझे और भी लज्जा हुई। वह कहने लगे, "आप तो वन की हिरनों के समान भागने ही पर उतारू थीं, तो भी आपने इतना कष्ट सहकर जो अपनी बात रक्खी यह मेरा कुछ कम पुरस्कार नहीं है।"

मैं भली भाँति उत्तर न दे सकी; मेरा मुँह लाल हो गया और मैं पसीने पसीने होकर एक कोच के कोने पर बैठ गयी। मैंने देश की नारीशक्ति की मूर्ति धारण करके जिस प्रकार निःसंकोच और सगौरव सन्दीप बाबू के सामने आकर केवल-मात्र दर्शनदान द्वारा ही उनके ललाट पर जय-अभिषेक

करने की कल्पना की थी वह अभी तक ज़रा भी पूरी नहीं हुई।

सन्दीप बाबू ने जान बूझ कर मेरे स्वामी से तर्क छेड़ दिया। वह जानते थे कि तर्क करते समय उनके तीक्ष्ण धार वाले मस्तिष्क की समस्त उज्ज्वलता जगमगा उठी है, इसके बाद भी मैंने बराबर देखा है कि मेरे सामने रहते हुए वह तर्क का ज़रा सा अवसर भी हाथ से न जाने देते थे।

बन्देमातरम मन्त्र के विषय में वह मेरे स्वामी का मत जानते थे। उसी का उल्लेख करके उन्होंने कहा, "देश-कार्य में मनुष्य की कल्पनावृत्ति का जो एक स्थान है उसे क्या तुम बिलकुल ही नहीं मानते निखिल?"

"एक स्थान है यह मैं मानता हूँ। पर सब जगह उसी का स्थान है यह मैं नहीं मानता। देश क्या वस्तु है यह मैं अपने मन में खूब समझ लेना चाहता हूँ, और दूसरों को भी समझाना चाहता हूँ—ऐसी बड़ी वस्तु के विषय में किसी माया-मन्त्र का प्रयोग करते हुए मुझे लज्जा होती है और डर भी लगता है।"

"तुम जिसे माया-मन्त्र कहते हो मैं उसी को सत्य समझता हूँ। मैं देश को वास्तव में देवता मानता हूँ। मैं नर-नारायण का उपासक हूँ—जिस प्रकार मनुष्य द्वारा भगवान के सत्य का प्रकाश होता है उसी प्रकार देश द्वारा भी होता है।"

"इसी बात पर यदि पूर्ण विश्वास है तो तुम्हारे मत में एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में और एक देश से दूसरे देश में कुछ भी अंतर नहीं रहा।"

"यह बात सच है पर हमारी शक्ति थोड़ी है, इसी कारण हम अपने देश की पूजा द्वारा ही देश-नारायण की

पूजा करते हैं।"

"पूजा करने को मैं मना नहीं करता। पर अन्य देशों में जो नारायण हैं उनके प्रति विद्वेष रखते हुए यह पूजा किस प्रकार पूर्ण हो सकती है?"

"विद्वेष भी पूजा का अंग है। किरात-वेशी महादेव के साथ युद्ध करके ही अर्जुन ने वरदान लिया था। हम यदि भगवान से लड़ें तो भी वह एक दिन हमसे प्रसन्न होंगे।"

"यदि ऐसा है तो जो लोग देश की शत्रुता करते हैं और जो देश की सेवा करते हैं दोनों ही भगवान के उपासक हुए। फिर देश-भक्ति-प्रचार करने की क्या ज़रूरत है?"

"अपने देश की बात दूसरी है — उसके प्रति हृदय में विशेष भक्ति-भाव की आवश्यकता है।"

"पर केवल अपने देश के प्रति क्यों? उसको अपेक्षा स्वयं अपने ही सम्बन्ध में अधिक भक्ति-भाव की आवश्यकता है। अपने हृदय में जो नर-नारायण हैं उनकी पूजा का मन्त्र ही तो देश देशान्तरों में गूंजा करता है।"

"निखिल, तुम्हारा यह सब तर्क केवल बुद्धि की सूखी विवेचना है। हृदय भी कोई वस्तु है, यह क्या तुम बिलकुल ही नहीं मानते?"

"मैं तुमसे सच कहता हूँ, सन्दीप, देश को जब तुम देवता कहकर देश के लोगों की बुद्धि को भ्रान्ति में डालते हो, उस समय मेरा हृदय बड़ा व्याकुल होता है। देश का कल्याण करने के बहाने में देश के लोगों का अकल्याण नहीं कर सकता।"

भीतर ही भीतर मुझे बड़ा गुस्सा आ रहा था। मुझसे

और नहीं रहा गया। मैं बोल ही उठी, "इंगलेंड, फ्रांस, जर्मनी, रूस ऐसा कौन सा सभ्य देश है जिसका इतिहास अपने देश के लिए चोरी करने का इतिहास नहीं है ?"

"उस चोरी की जवाबदेही उन्हें करनी पड़ेगी, इस समय भी करनी पड़ रही है। इतिहास अभी खत्म नहीं हुआ।"

सन्दीप बाबू ने कहा, "अच्छा तो हमभी वही करेंगे। चोरी के माल से पहले घर को खूब भरलें फिर धीरे धीरे दीर्घकाल तक हम भी जवाबदेही करेंगे। पर मैं पूछता हूँ तुमने जो कहा कि वे इस समय जवाबदेही कर रहे हैं—यह कैसे ?"

"रोम ने जिस समय अपने पाप की जवाबदेही की थी उस समय उसे किसी ने नहीं देखा। उस समय उसके ऐश्वर्य्य की सीमा नहीं थी। इसी प्रकार जब बड़ी बड़ी लुटेरी सभ्यताओं की जवाबदेही का दिन आता है तो बाहरसे मालूम नहीं पड़ता। पर एक बात क्या तुम देखते नहीं ?— उनकी राजनीति की भूठ भरी पोट, धोकेबाज़ी, विश्वासघातकता, गुप्तचरवृत्ति, आत्मगौरव (प्रेस्टिज) की रक्षा के लिए न्याय और सत्य का बलिदान, इस सब पाप का बोझ जो सिर पर है यह क्या कम है ? देश से पहले जो धर्म को नहीं मानते, मैं कहता हूँ वे देश को भी नहीं मानते।"

अकस्मात् सन्दीप बाबू मेरी ओर देख कर बोले, "आप क्या कहती हैं ?"

मैंने कहा, "मैं बाल की खाल निकालना नहीं चाहती। मैं तो मोटी बात ही कहूँगी। मैं मनुष्य हूँ, मुझे लोभ है, मैं देशके लिए लोभ करूँगी—मुझे क्रोध है, मैं देश के लिए क्रोध करूँगी — इतने दिन के अपमान का बदला लूँगी; मुझे मोह है

मैं देश के लिए मोह करूँगी। मैं देश को ऐसे प्रत्यक्ष रूप में देखना चाहती हूँ जिसको माँ कह सकूँ, देवी कह सकूँ, दुर्गा कह सकूँ, जिसके सामने बलिदान के पशु को बलि देकर रक्तारक्त करदूँ! मैं मनुष्य हूँ, मैं देवता नहीं हूँ।"

सन्दीप बाबू कुरसी से उठे और सीधा हाथ आकाश की ओर उठा कर एकदम पुकार उठे, "हुर्रे हुर्रे!" फिर तुरन्त ही संशोधन करके बोले, "वन्देमातरम्, वन्देमातरम्!"

फिर सन्दीप बाबू ने कहा, "देखो निखिल, सत्य स्त्रियों के प्राण के साथ मिलकर बिलकुल एक होगया है। हमारे सत्य में रंग नहीं, रस नहीं, आत्मा नहीं, केवल युक्ति शेष है। इसलिए स्त्रियाँ ही भली भाँति निष्ठुर होना जानती हैं, पुरुष नहीं जानते, क्योंकि धर्म-बुद्धि पुरुषों को दुर्बल कर देती है। स्त्रियाँ बिना संकोच सर्वनाश कर सकती हैं, इसीलिए उनका अन्याय अत्यन्त सुन्दर होता है। पुरुषों का अन्याय भी भौंडा होता है क्योंकि उनके मन में न्याय-बुद्धि की द्विधा लगी रहती है। इस लिए मैं तुमसे कहे देता हूँ आज के दिन हमारी स्त्रियाँ ही हमारे देश को बचायेंगी। आज धर्म-कर्म, विचार-विवेक का दिन नहीं है, आज हमें निर्विकार, निर्विकार होकर निष्ठुर होना पड़ेगा, अन्याय करना पड़ेगा, आज अपने देश की स्त्रियों के हाथ से रक्त-चन्दन लगवाकर पाप को सुशोभित करना पड़ेगा। हमारे कवि क्या कहते हैं, याद नहीं है?—

एस पाप, एस सुन्दरी!
तब चुम्बन अग्नि-मदिरा रक्ते फिरुक संचरी!
अकल्याणेर बाजुक शंख,
ललाटे लेपिया दाअो कलंक,

निर्लज्ज काली कलुष पंक,
थुके दाओ, प्रलयंकरी !

(आओ पाप आओ सुन्दरी ! अपने चुम्बन की अग्नि-मदिरा का मेरे रक्त में संचार करदो ! अकल्याणका शंख बजने दो, माथे पर कलंक लगादो, और हे प्रलयंकरी, निर्लज्ज कलुषता की कीचड़ मेरी छाती पर मल दो ।)

आज धिक्कार है उस धर्म को जो प्रसन्न चित्त होकर सर्वनाश करना नहीं जानता । "

यह कहकर उन्होंने धरती पर दो बार ज़ोर से पैर मारा —क़ालीन के ऊपर से बहुत सी निद्रित धूल घबराकर उठ खड़ी हुई । उनके मुख की ओर देखकर मेरे सारे शरीर में रोमांच हो उठा ।

वह फिर अकस्मात् गरज कर बोले, " जो आग घर को फूँकती है, जो संसार को जलाती है, मैं स्पष्ट देख रहा हूँ तुम उसी आग की सुन्दरी देवी हो, आज हम सब को नष्ट हो जाने का दुर्जय तेज प्रदान करो, हमारे उन्माद को सुन्दर बनादो । "

ये आख़िरी बातें उन्होंने किससे कहीं मैं न समझ सकी। वे बन्देमातरम् कहकर जिसकी बन्दना करते हैं या तो उससे कहीं या फिर उससे जो देश की स्त्रियों के प्रतिनिधि के रूप में उनके सामने मौजूद थी ।

जान पड़ता था और भी कुछ कहेंगे पर इसी समय मेरे स्वामी उठे और उनके शरीर पर हाथ रख कर बोले, "सन्दीप, चन्द्रनाथ बाबू आये हैं । "

मैं एकदम चौंक पड़ी और फिर कर देखा कि सौम्य-

मूर्ति बूढ़े मास्टर दरवाज़े के पास खड़े सोच रहे हैं कि अन्दर घुसें या नहीं। मुझसे मेरे स्वामी ने आकर कहा, "यहाँ मेरे मास्टर साहब हैं, इनका परिचय मैं तुम्हें अनेक बार दे चुका हूँ, इन्हें प्रणाम करो।"

मैंने उनके चरणों की धूल लेकर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया, "भगवान तुम्हारी सदा रक्षा करें।"

उस समय मुझे इसी आशीर्वाद की आवश्यकता थी।

निखिलेश की आत्म-कथा।

एक दिन मैंने विमला से कहा था, "तुम्हें बाहर निकलना चाहिये।"

उस समय एक बात मैंने नहीं सोची थी। किसी को उसके पूर्ण मुक्तरूप में देखने की इच्छा करने पर उसके ऊपर अधिकार रखने की आशा छोड़ देनी पड़ती है। यह बात मुझे क्यों नहीं सूझी? स्त्री के ऊपर जो स्वामी का निश्चित अधिकार होता है क्या उसी के अहंकार के कारण?

मुझे अहंकार था कि सत्य के सम्पूर्ण अनावृत रूप को देख सकने की शक्ति मुझे प्राप्त है। आज उसी की परीक्षा हो रही है।

मेरे विषय में एक बात विमला आज तक नहीं समझ सकी। ज़बरदस्ती को मैंने सदा दुर्बलता समझा है पर विमला

पुरुष के वेष में अन्यायकारी को देखना पसन्द करती है। उत्कट और साधारण ही पर उसके मन की प्रीति है।

पर मेरा दृढ़ प्रण यही है कि उत्तेजना की कड़ी शराब पीकर पागलों के समान कभी देशकार्य में न लगूँगा।

आज समस्त देश के मैरवीचक्र में शराब का पात्र लेकर जो मैं बैठना नहीं चाहता इससे मुझे सभी का बुरा बनना पड़ा है। देश के लोग सोचते हैं कि मैं ख़िताब चाहता हूँ या पुलीस से डरता हूँ; पुलीस सोचती है कि मेरा अवश्य कुछ गुप्त प्रयोजन है इसलिए मैं ऐसा भलामानस बना हुआ हूँ। फिर भी मैं इसी अविश्वास और अपमान के मार्ग पर चल रहा हूँ।

मेरा विश्वास है कि जो लोग देश को साधारण और सत्य भाव से देश समझ कर, मनुष्य पर मनुष्यवत् श्रद्धा रख कर सेवा और भक्ति का उत्साह नहीं पाते, जो गुल मचा कर, माँ कह कर, देवी कह कर, मन्त्र पढ़ कर केवल उत्तेजना की ही खोज में रहते हैं, उनके मन में देश-भक्ति का नहीं बल्कि नशेबाज़ी का ध्यान रहता है।

मेरा बहुत दिन से विचार है कि सन्दीप की प्रकृति में कुछ लालसा का समावेश है। सुख-विलास की आसक्ति धर्म-सम्बन्ध में उसे भूल में डाल देती है और देश के काम में कुकर्म की राह चलाती है। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण उसकी प्रवृत्ति एक मान्य वस्तु दिखाई पड़ती है। उसे विलास की तृप्ति भी चाहिये और विद्वेष का नशा भी। रुपये का भी सन्दीप को कुछ लोभ है—यह बात विमला ने मुझसे पहले ही कही थी। यह बात मैं स्वयं भी जानता था पर रुपये के सम्बन्ध में सन्दीप के साथ मैं कभी कंजूसी न कर पाया। पर आज विमला

को यह बात समझाना कठिन होगा कि देश के सम्बन्ध में भी सन्दीप का भाव उसी स्थूल लोलुपता का एक रूपान्तर है। सन्दीप की विमला मन ही मन पूजा करती है, इसी से सन्दीप के विषय में उससे कुछ कहने को मेरा मन नहीं होता। सम्भव है मेरे मन में कुछ ईर्षा हो उठे या कुछ अत्युक्ति कर बैठूँ। सन्दीप का जो चित्र मेरे मन में अंकित हो उठा है शायद उसकी रेखाएँ मेरी वेदना के तीव्र ताप से टेढ़ी मेढ़ी होगयी हों। तो भी मनमें रखने से कहडालना ही अच्छा है।

अपने मास्टर साहब चन्द्रनाथ बाबू को मैं प्रायः तीस बरस से जानता हूँ। वह न निन्दा से डरते हैं, न विपत्ति से, और न मृत्यु से। मैंने जिस घर में जन्म लिया इसमें मेरी रक्षा का कोई उपाय नहीं था। पर इन्हीं सज्जन पुरुष ने अपनी शान्ति, अपने सत्य तथा अपनी पवित्र मूर्ति को मेरे जीवन में संचार कर दिया। इसी कारण मैंने कल्याण को इस प्रकार सत्य और प्रत्यक्ष रूप से पाया है।

यही चन्द्रनाथ बाबू उस दिन मेरे पास आकर बोले, "क्या सन्दीप का यहां और अधिक ठहरना ज़रूरी है?"

कहीं अमंगल की ज़रा भी हवा चले तो उनके हृदय पर जाकर लगती थी। वह तुरन्त समझ जाते थे। उनका मन सहज में विचलित नहीं होता। पर उस दिन उन्हें एक भयंकर विपत्ति की छाया दिखाई पड़ी थी। उन्हें मुझ से कितना स्नेह है यह मैं ही जानता हूँ।

चाय पीते समय मैंने सन्दीप से कहा, "तुम रंगपुर नहीं जाओगे? वे लोग समझ रहे हैं कि मैं ने ही तुम्हें ज़बरदस्ती रोक रक्खा है।"

बिमला चायदानी से प्याले में चाय डाल रही थी। एकदम उस का मुंह फीका पड़गया। उसने सन्दीप के मुंह की ओर एक बार तिरछी नज़र डाल कर देखा।

सन्दीप ने कहा, "हम जो घूम-घाम कर स्वदेशी प्रचार करते फिरते हैं मेरा विचार है कि इसमें आवश्यकता से अधिक शक्ति खर्च होती है। मैं सोचता हूँ कि एक एक जगह को केन्द्र बनाकर काम किया जाय तो बहुत लाभ हो सकता है।"

यह कह कर उसने बिमला की ओर देखकर कहा, "आप का भी क्या यही विचार नहीं है?"

बिमला पहले तो कुछ उत्तर न देसकी फिर कुछ सोच कर बोली, "देश का काम दोनों तरह हो सकता है। चारों ओर फिर कर काम करना या एक जगह बैठ कर काम करना —इनमें से जिस ढँग से काम करने को आप का मन चाहे वही ढँग आप के लिए उचित है।"

सन्दीप ने कहा, "तो फिर सच बात कहूँ? मेरे हृदय को सब समय पूर्ण रखसके ऐसा शक्ति का स्रोत मुझे आज तक कहीं नहीं मिला। इसी कारण केवल देश विदेश घूम कर नये नये लोगों के मन को उत्तेजित करके उसी उत्तेजना से मुझे जीवन का तेज इकट्ठा करना पड़ता है। आज आपही मेरे लिए देश की वाणी हैं। यह अग्नि तो मैं ने किसी पुरुष में नहीं देखी। नहीं, लज्जा न कीजिये— आप का स्थान मिथ्या लज्जा और संकोच से बहुत ऊपर है। आप ही हमारे छत्ते की मक्खी रानी हैं—हम आप ही को चारों ओर से घेर कर काम करेंगे —उस काम की शक्ति आप ही की होगी—उस काम को केन्द्र आप ही होंगी।"

लज्जा और गौरव से विमला का मुँह लाल हो उठा और चाय के प्याले में चाय डालते हुए उसका हाथ काँपने लगा।

चन्द्रनाथ बाबू और एक दिन आकर कहने लगे, "तुम दोनों कुछ दिन के लिए दारजिलिङ्ग की सैर कर आओ। तुम्हारा मुँह देखने से मालूम होता है कि तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। शायद अच्छी तरह नींद नहीं आती?"

संध्या समय मैंने विमला से पूछा, "विमला दारजिलिङ्ग की सैर करने चलोगी?"

मैं जानता हूँ दारजिलिङ्ग जाकर हिमालय पर्वत को देखने की विमला को बड़ी इच्छा थी। पर उस दिन उसने कहा, "ना, अभी रहने दो।"

देश की क्षति होने की आशङ्का थी।

सन्दीप की आत्म-कथा।

जिनका मन कामना से परिपूर्ण है, जो अपनी सम्पूर्ण शक्ति से समस्त प्राण देकर सुख भोगना जानते हैं और जिन को हिचा तथा संकोच नहीं है, वही प्रकृति के वर पुत्र हैं। उन्हीं के लिए प्रकृति ने सब सुन्दर और बहुमूल्य वस्तुएँ सजाकर रक्खी हैं। वहां तैर कर नदियाँ पार कर जायँगे, कूदकर दीवारें फाँद जायँगे और लात मार कर दरवाज़े तोड़ डालेंगे। लेने योग्य वस्तुएँ छीन लेंगे। इसीमें यथार्थ आनन्द और इसी में बहुमूल्य वस्तुओं का मूल्य है। प्रकृति आत्म-समर्पण करती है—पर

ऐसे ही डाकुओं के लिए। प्रकृति को यह ज़बरदस्ती की छीना-झपटी अच्छी लगती है—इसी कारण वह अधमरे तपस्वी के गले में बसन्त के फूलों को स्वयं बरमाला पहनाना नहीं चाहती। नौबतखाने में शहनाई बज रही है, शुभ मुहूर्त निकला जारहा है, मन उदास हो गया। वर कौन है? मैं ही वर हूँ—मशाल जलाकर जो धावा कर सकता है, वर का आसन उसी का है। प्रकृति का वर सदा बिन बुलाया आता है।

लज्जा? नहीं, मैं लज्जा नहीं करता। मुझे जो चाहिए मैं माँगकर लेलेता हूँ। बिना माँगे भी लेलेता हूँ। लज्जा के कारण जिन्होंने लेने योग्य वस्तु नहीं ली, वे उसी न लेने के दुख को दबा रखने के लिए लज्जा को बड़ी अच्छी वस्तु समझने लगते हैं। जिस पृथ्वी पर हमने जन्म लिया है वह वास्तविकता की पृथ्वी है। बड़ी बड़ी बातें बना बना कर स्वयं अपने आप को धोखा देकर जो मनुष्य इन वास्तविक वस्तुओं के हाट से ख़ाली हाथ और ख़ाली पेट चला गया उसने उस कड़ी मिट्टी की पृथ्वी पर जन्म ही क्यों लिया था? मैं जो कुछ चाहता हूँ ख़ब ही चाहता हूँ। मैं अपने इष्ट-अर्थ को दोनों हाथों से मलूंगा, दोनों पैरों से दलूंगा, सारे शरीर में रगड़ूंगा, खूब पेट भरकर खाऊँगा। चाहने में मुझे लज्जा नहीं होती, न लेने में संकोच होता है। जो नियमित उपवास करते करते सूख सूख कर बहुत समय की ख़ाली पड़ी हुई खाट के खटमलों के समान सफ़ेद पड़ गये हैं उनके रुद्ध कंठ की भर्त्सना मेरे कानों तक न पहुँच सकेगी।

मैं दुबकाचोरी करना नहीं चाहता, इससे कापुरुषता प्रगट होती है, पर यदि आवश्यकता होने पर धोखा न देसकूँ तो इस में भी कापुरुषता है। तुम जिस चीज़ को चाहते हो दीवार बना

कर रखना चाहते हो, मैं जिस चीज़ को चाहता हूँ सेंध लगा कर लेना चाहता हूँ। तुम्हें लौभहै, तुम दीवार बनाओ, मुझे लोभ है, मैं सेंध लगाऊंगा। तुम चाल चलोगे मैं उसका काट करूँगा। यही प्रकृति की वास्तविक बात है। इसी के आधार पर पृथ्वी के राज्य-साम्राज्य और बड़े बड़े कारखाने स्थिर हैं। यह सब देवता जो स्वर्ग से आ-आ कर वहां की बोली में बातें कहा करते हैं यह बातें वास्तविक नहीं हैं। इसी कारण उनके उपदेश इतनी चीख़-पुकार पर भी केवल दुर्बलों के घर के कोनों में स्थान पाते हैं, जो सबल होकर पृथ्वी का शासन करते हैं उनके लिए ये सब बातें नहीं हैं। वे जो यदि इन बातों को सत्य मान लें तो अपना सारा बल खो बैठें, क्योंकि ये बातें सत्यसे बहुत दूर हैं। जो यह बात समझने में झिझा नहीं करते, मानने में लज्जा नहीं करते, वही कृतकार्य होते हैं, और जो अभागा एक ओर,प्रकृति को और एक ओर इन देवताओं को मानकर वास्तव-अवास्तव दोनों में टांग अड़ाता है वह न आगे बढ़ सकता है और न पीछे हट सकता है।

जान पड़ता है कुछ लोग मरने की प्रतिज्ञा करके ही पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। सूर्यास्त समय के आकाश के समान मुमूर्षता में भी एक प्रकार का सौन्दर्य है, वे लोग उसी को देख कर मुग्ध हैं। हमारा निखिलेश भी इसी मत का अनुयायी है—उसे निर्जीव मानना ही पड़ेगा। चार बरस हुए उसके साथ इसी बात पर मेरी बड़ी बहस हुई थी। उसने मुझसे कहा था,"बल से ही हमारे काम बनते हैं यह मैं मानता हूँ, पर तुम बल किसे कहते हो? वास्तविक बल तो त्याग हां से मिलता है। पूंजी के व्यय ही में व्यवसाय का बल है।"

मैंने कहा, "इससे तो जान पड़ता है कि तुम सदा घण्टे के ही नशे में मस्त रहते हो।"

निखिलेश ने कहा, "हाँ, जिस प्रकार अण्डे के भीतर का पक्षी अंडे के खोल को तोड़ने की चिन्ता में मस्त हो उठता है। खोल एक वास्तव चीज़ है और उसके बदले में उसे केवल हवा और उजाला ही मिलता है—फिर तुम्हारे मत के अनुसार तो वह घाटे ही में रहा।"

जब निखिलेश इस प्रकार रूपक का प्रयोग करने लगता है तो उसे समझाना कठिन है कि उसकी बातें वास्तविकता से कितनी दूर हैं। पर यदि वह उपमा और रूपक ही में प्रसन्न है तो हुआ करे—हम पृथ्वी के मांसभक्षी जीव हैं, हमारे दांत हैं, नाखून हैं, हम दौड़ सकते हैं, पकड़ सकते हैं, चीर-फाड़ सकते हैं—हम घास खाकर सवेरे से संध्या तक उसी की जुगाली कर कर के दिन नहीं बिता सकते। इस पृथ्वी पर हमारे खाने की जो व्यवस्था है उसमें रूपकवालों को हम कभी बाधा न डालने देंगे—चाहे चोरी करें, चाहे डाका डालें; नहीं तो हमारे प्राण बचना कठिन है। हम तो मृत्यु के प्रेम में मुग्ध होकर पद्म के पत्ते पर शयन किये हुये दशम दशा में प्राण त्याग करने को राज़ी नहीं हैं—इसमें चाहे हमारे वैष्णव बाबाजी कितने ही दुखी क्यों न हों।

मेरी ये बातें सुन कर सब कहेंगे कि तुम्हारा तो मत ही अलग है, पर सच तो यह है कि पृथ्वी पर सब इसी नियम पर चलते हैं, हां बातें और ही प्रकार की करते हैं। मैं जानता हूँ कि मेरी ये बातें सम्मति-मात्र नहीं हैं—

मेरे जीवन में इनकी परीक्षा हो चुकी है। मैं जो चाल चलता हूँ उससे स्त्रियों का हृदय जीतने में ज़रा भी देर नहीं लगती। वे वास्तविक पृथ्वी की जीव हैं, वे पुरुषों के समान कल्पना के खोखले बैलून में चढ़ कर बादलों में घूमती नहीं फिरतीं। वे मेरी आँखों में, मुँह में, देह में, मन में, बातों में और भाव में एक प्रबल इच्छा का प्रकाश देखती हैं। वह इच्छा किसी तपस्या द्वारा नष्ट नहीं हो सकती, न किसी तर्क द्वारा उससे पीठ फिरा कर भागा जा सकता है। वह एकदम भरपूर इच्छा है और अग्नि-मय बाण के समान गरजती हुई चलती है। स्त्रियाँ अपने मन में जानती हैं कि यह दुर्गम इच्छा ही जगत का आत्मा है। यह आत्मा अपने अतिरिक्त और किसी को नहीं मानता। इसी कारण चारों ओर विजयी होता है। मैंने अनेक बार देखा है कि मेरी इसी इच्छा की बाढ़ में स्त्रियाँ अपने को बहा देती हैं—वे मरेंगी या बचेंगी इस बात का उन्हें ध्यान ही नहीं रहता। जिस शक्ति से स्त्रियों पर विजय हो वही वीरों की शक्ति है, वही वास्तविक जगत के पाने की शक्ति है। जो लोग और किसी जगत की प्राप्ति की इच्छा करते हैं, वे अपनी इच्छा की धारा पृथ्वी की ओर से हटाकर आकाश की ओर ले जायें। मैं भी देखूं उनका यह फुआरा कहाँ तक उठता है और कितने दिन चलता है! इन कल्पना-विहारी सूक्ष्म प्राणियों के लिए स्त्रियों की सृष्टि नहीं हुई!

विमला की आत्म-कथा।

मैं सोचती हूँ, न जाने मेरी लज्जा कहाँ चली गई थी। स्वयं अपने ऊपर नज़र डालने के लिए मुझे समय नहीं मिलता था—दिन और रात मानो मुझे एक भँवर में डालकर घुमा रहे थे। इसी कारण लज्जा को मेरे मन में प्रवेश करने का मौक़ा ही नहीं था।

एक दिन मेरे सामने ही मेरी छोटी जिठानी ने हँसते हँसते मेरे स्वामी से कहा, "भैया तुम्हारे इस घर में अब तक तो स्त्रियाँ ही रोती रही हैं, पर अब पुरुषों की बारी आई है, अब से हम ही तुम्हें रुलायेंगी, तुम क्या कहती हो, छोटी रानी? रणवेश तो पहन चुकी हो, अब पुरुषों की छाती में खींच खींच कर बाण लगाओ।"

यह कह कर उन्होंने सिर से पैर तक मुझे बड़े ग़ौर से देखा। मेरे साज-सिंगार में, मेरी चाल-ढाल में, मानो एक विचित्र रंग की किरण झलक रही थी, जिसका लेशमात्र भी छोटी जिठानी की आँखों से छिपा नहीं था। आज मुझे यह बात लिखते हुए लज्जा होती है, पर उस दिन मुझे ज़रा भी लज्जा नहीं थी, क्योंकि उस समय मेरी प्रकृति अपने आप ही काम कर रही थी, मैं जान बूझ कर कुछ भी न करती थी।

मैं जानती हूँ कि उस समय मैं साज-सिंगार पर विशेष ध्यान रखती थी। पर यह सब ऊपरी मन से होता

था। मेरा कौन सा जोड़ा सन्दीप बाबू को पसन्द था यह मैं स्पष्ट मालूम कर लेती थी। इस विषय में अन्दाज़े या अनुमान की कुछ आवश्यकता न थी। सन्दीप बाबू सब के सामने ही मेरे बनाव सिंगार की आलोचना किया करते। वह एक दिन मेरे सामने मेरे स्वामी से कहने लगे, "निखिल, जिस दिन मैंने अपनी मक्खीरानी को वही ज़री की गोट की धोती पहने सब से पहले देखा था तो जान पड़ता था मानो उनकी दोनों आँखें मार्ग भूले हुए तारे के समान असीम की ओर देख रही हैं—मानो किसी खोज में, किसी अपेक्षा में अथाह अन्धकार के किनारे हज़ारों बरस से इसी प्रकार देखती रही हैं—उस दिन मेरा दिल काँप उठा और मैंने सोचा कि उनके मन की अग्निशिखा मानो बाहर आकर धोती की गोट से लिपट गई है। यही अग्नि तो हमें चाहिए, यही प्रत्यक्ष अग्नि। मक्खीरानी मेरा यह एक अनुरोध मान लीजिये, मुझे एक बार और उसी अग्निशिखा में सज-कर दिखा दीजिये।"

क्या आज विधाता ने मुझे बिलकुल नया चोला देदिया? क्या उसने इतने दिन के अनादर की कमी पूरी कर दी? जो सुन्दरी नहीं थी वह सुन्दरी हो उठी। जो साधारण थी वह समस्त देश के गौरव का प्रत्यक्ष अनुभव करने लगी। सन्दीप बाबू तो केवल एक साधारण मनुष्य नहीं थे—वह मानो अकेले ही देश की लाखों चित्तधाराओं के संगम थे। इसी कारण जब उन्होंने मुझे छत्ते की मक्खीरानी कहा तो मानो समस्त देश-सेवकों की स्तव-गुंजनध्वनि द्वारा मेरा अभिषेक हो गया। इस के बाद बड़ी जिठानी की निःशब्द अवज्ञा

और छोटी जिठानी के सशब्द परिहास को मुझे ज़रा भी परवाह नहीं रही। सारे जगत के साथ मेरा सम्बन्ध एकदम बदल गया।

सन्दीप बाबू ने मेरे मन में उमा दिया था कि मानों देश का काम मेरे बिना चल ही नहीं सकता। उस समय यह बात मानने में मुझे ज़रा भी कठिनाई न पड़ी—मुझे जान पड़ा मानो मुझमें एक ऐसी दिव्य-शक्ति आगई है जिसका मुझे पहले कभी अनुभव नहीं हुआ था। मेरे मन में जो यह प्रबल आवेग एकदम आघुसा, यह क्या चीज़ थी, इसपर विचार करने का मुझे समय नहीं था:—यह आवेग मेरे मन में था तो भी मेरा नहीं था, यह मानो कहीं बाहर से आया था, मानो सारे देश का था। यह मानो बाढ़ का जल था, गाँव के पोखर में आकर भर गया था।

सन्दीप बाबू देश के सम्बन्ध में ज़रा ज़रा सी बातों में मुझ से सलाह लेते। पहले पहल मुझे बड़ा सङ्कोच हुआ पर थोड़े दिनों में सब जाता रहा। मैं जो कुछ कहती उसी से सन्दीप बाबू अचम्भे में पड़ जाते और कहते, "पुरुष तो केवल सोच ही सकते हैं, पर आप लोग समझ लेती हैं, आप को सोच विचार की ज़रूरत ही नहीं। स्त्रियों को ही विधाता ने मन से बनाया है, पुरुषों को तो हाथ में हथौड़ी ले ठोंक पीट कर गढ़ दिया है।"

धीरे धीरे मुझे पक्का विश्वास होने लगा कि देश में जो कुछ हो रहा है उसके मूल-कारण सन्दीप बाबू हैं और स्वयं उनकी मूल-कारण एक साधारण स्त्री की साधारण बुद्धि है। मेरा मन एक भारी दायित्व के गौरव से भर गया।

इन विचारों में मेरे स्वामी का कोई स्थान नहीं था। बड़ा भाई जैसे छोटे भाई को खूब प्यार करता है पर काम काज में उसकी बुद्धि पर भरोसा नहीं करता, सन्दीप बाबू भी मेरे स्वामी की ओर वैसा ही भाव प्रगट करते थे। सन्दीप बाबू मेरे स्वामी को इस विषय में बच्चा और उनकी बुद्धि-विवेचना को औंधी समझते थे; पर वह अपना यह विचार बड़े स्नेह के साथ हँसते हँसते प्रगट करते। स्वामी के अद्भुत मत और उलटी बुद्धि के कारण ही मानों सन्दीप बाबू उन्हें और भी प्यार करते थे, इसी कारण उन्हें देश-कार्य के समस्त दायित्व से मुक्त कर दिया था।

प्रकृति के औषधालय में बहुत सी दवाएँ ऐसी हैं जिन से व्यथित अङ्ग सुन्न हो जाता है और दुःख मालूम नहीं पड़ता। जिस समय किसी गहरे सम्बन्ध की नाड़ी कटने लगती है उस समय न जाने कहाँ से ऐसी एक दवा का आप ही आप उस ओर सञ्चार होने लगता है। बाद को एक दिन अकस्मात् दिखाई पड़ता है कि एक बहुत बड़ा व्यवच्छेद उपस्थित है। मेरे जीवन के सब से बड़े सम्बन्ध पर जिस समय छुरी चल रही थी उस समय मेरा मन एक तीव्र आवेग के गैस (Gas) से ऐसा बेसुध हो रहा था कि मुझे ख़बर ही नहीं थी कि कितनी बड़ी निष्ठुर घटना का सामना है।

सन्दीप की आत्म-कथा ।

जान पड़ता है कुछ गड़बड़ होनेवाली है। उस दिन इसका कुछ परिचय मिल चुका है।

जब से मैं आया हूँ निखिलेश की बैठक में मरदाना और ज़नाना दोनों आकर मिल गये हैं। बाहर मेरा अधिकार है और भीतर मक्खीरानी को कुछ आपत्ति नहीं है।

इस अधिकार का यदि हम समझ बुझ कर सावधानी से भोग करते तो शायद काम चल जाता। पर बूँद जब पहले पहल टूटता है तो जल का तोड़ बहुत होता है। बैठक में हमारी सभा ऐसे ज़ोर से चलने लगी कि और किसी बात का ध्यान ही नहीं रहा।

बैठक में जब मक्खी आती है तो मुझे अपने कमरे में बैठे ही बैठे किसी न किसी प्रकार मालूम होजाता है। ज़रा ज़रा चूड़ियों का शब्द होता है। कमरे का दरवाज़ा ज़रा अनावश्यक ज़ोर से धक्का देकर खोला जाता है। इसके अतिरिक्त किताबों की आलमारी के पास का किवाड़ ज़रा मुश्किल से खुलता है। उसे ज़रा खींचकर खोलने में यथेष्ट शब्द हो उठता है। बैठक में आकर देखता हूँ दरवाज़े की ओर पीठ किये मक्खी अपनी पसन्द की किताब देखकर निकालने में निमग्न है। इस कठिन काम में सहायता करने का प्रस्ताव सुनते ही वह चौंक पड़ती है—इसके बाद और कुछ बातें होने लगती हैं।

बृहस्पतिवार को अशुभ घड़ी में इसी प्रकार का शब्द सुनकर मैं अपने कमरे से निकलकर चला। देखा कि बरा-मदे के बीच में एक दरवान खड़ा है। उसको ओर बिना देखे ही मैं जाने लगा — पर उसने जल्दी से रास्ता रोक कर मुझसे कहा, "बाबू जी उस ओर न जाइये।"

"क्यों? जाऊँ क्यों नहीं?"

"बैठक में रानीमाँ हैं।"

"अच्छा तुम रानीमाँ को ख़बर दो कि सन्दीप बाबू मिलना चाहते हैं।"

"नहीं मैं नहीं जाऊंगा, आज्ञा नहीं है।"

मुझे बड़ा बुरा लगा और मैंने ज़रा ऊँची आवाज़ से कहा, "मैं आज्ञा देता हूँ तुम जाकर पूछ आओ।"

मेरा ग़ुस्सा देखकर दरवान चुप खड़ा रह गया। मैं फिर कमरे की ओर बढ़ा। दरवाज़े के निकट पहुँचा ही था कि वह अपना कर्त्तव्य पालन करने को आगे बढ़ा और मेरा हाथ पकड़ कर कहने लगा, "बाबूजी मत जाइये।"

"क्या! मेरे शरीर पर हाथ!" मैंने हाथ छुड़ा लिया और उसके मुंह पर ज़ोर से एक थप्पड़ मारा। तुरन्त ही मक्खी कमरे से निकल आयी और उसने देखा कि दरवान मेरा अपमान करने को तैयार है।

उसको वह मूर्त्ति मैं कभी न भूलुंगा। मक्खी सुन्दरी है यह बात पहले पहल मैंने ही मालूम की थी। हमारे देश के बहुत से लोग शायद उसकी ओर देखें भी नहीं। पर वह मानों आत्मा के फुआरे की धार है और सृष्टिकर्ता की हृदयगुहा से वेग के साथ निकल पड़ी है। उसका रंग

साँवला, असली लोहेको तलवार के समान साँवला है। क्या तेज है और क्या धार है! वही तेज उस दिन उसके सारे चेहरे और आँखों में झलक रहा था। वह चौखट पर आ खड़ी हुई और दरवान की ओर उँगली उठाकर कहने लगी, "ननकू यहाँ से चले जाओ।"

मैंने कहा, "आप रुष्ट न हों। जब आने की मनाई है तो मैं ही जारहा हूँ।"

मक्खी काँपती-हुई-आवाज़ से बोली, "नहीं आप न जाइये—अन्दर आइये।"

यह अनुरोध नहीं था, आज्ञा थी। मैं कमरे के अन्दर गया और कुरसी पर बैठ कर पंखे से हवा करने लगा। मक्खी ने कागज़ के एक टुकड़े पर कुछ लिखकर बैरा को बुला कर दिया कि महाराज (निखिल) को देआओ।

मैंने कहा, "मुझे क्षमा कीजिये, मैं आपे में न रह सका, दरवान को व्यर्थ मार बैठा।"

मक्खी ने कहा, "आपने बहुत अच्छा किया।"

"पर उस बेचारे का क्या दोष है? वह तो केवल कर्त्तव्य पालन करता था।"

इसी समय निखिल भी आगया। मैं जल्दी से कुरसी से उठा और उसकी ओर पीठ कर के खिड़की के निकट जा खड़ा हुआ।

मक्खी ने निखिल से कहा, "आज ननकू ने सन्दीप बाबू का अपमान किया है।"

निखिल ने बड़े भोलेपन से विस्मित होकर पूछा, "क्यों?" उसकी यह बात देखकर मुझसे न रहा गया। मैंने मुँह फेर

कर उसकी ओर देखा और सोचने लगा कि साधुओं के सत्य की बड़ाई स्त्री के सामने नहीं चलती, विशेषतः यदि स्त्री भी ऐसी हो।

मक्खी ने कहा, "सन्दीप बाबू बैठक में आरहे थे; वह उनका रास्ता रोककर कहने लगा, "हुक्म नहीं है।"

निखिल ने पूछा, "किसका हुक्म नहीं है ?"

मक्खी ने कहा, "यह मैं कैसे बताऊं।"

क्रोध और क्षोभ से मक्खी की आँखों में आँसू आगये।

निखिल ने दरबान को बुला भेजा। वह कहने लगा, "हुजूर मेरा तो कुछ कसूर नहीं है। मैंने तो हुक्म की तामील की थी।"

"किसका हुक्म ?"

"मंझलो रानीमा ने मुझे बुलाकर कह दिया था।"

थोड़ी देर के लिए सब के सब चुप बैठे रहगये। जब दरबान चलागया तो मक्खी ने कहा, "अब ननकू यहाँ न रहने पायगा।"

निखिल चुप होगया। मैं समझ गया उससे यह अन्याय न होगा। उसकी न्यायबुद्धि में बड़ी जल्दी ठेस लग जाती है।

पर बड़ी कड़ी समस्या थी! मक्खी सीधी सादी लड़की तो थी नहीं। ननकू को निकालकर जिठानियों से अपमान का बदला लेना था।

निखिल बराबर चुप रहा। अब तो मक्खी की आँखों से आग बरसने लगी, उसे निखिल पर बड़ा क्रोध हो रहा था।

निखिल बिना कुछ कहे उठकर कमरे से बाहर चला गया।

दूसरे दिन वह दरबान वहाँ दिखाई नहीं पड़ा। पूछने

पर मालूम हुआ कि निखिल ने उसे कहीं बाहर के काम पर नियुक्त करके भेज दिया है — दरबान जी का इसमें नुकसान ही क्या था?

इन दिनों नेपथ्य में जो तूफ़ान चल रहा था उसका आभास तो मैं भी देख सकता था। बार बार यही सोचता था कि निखिल बड़ा विचित्र मनुष्य है, बिलकुल ही दुनिया से निराला है।

इस सब का नतीजा यह हुआ कि इसके बाद कुछ दिन तक मक्खी रोज़ बैठक में आकर बैरा को भेजकर मुझे बुलाती और बातचीत किया करती—किसी काम या बहाने की भी ज़रूरत न रही।

इसी प्रकार धीरे धीरे अस्पष्ट स्पष्ट हो उठता है। मक्खी राज-घराने की बहू है, बाहर के पुरुष के निकट मानों एक दम नक्षत्रलोक की रहनेवाली है, जहाँ तक पहुँचने का कोई निर्दिष्ट मार्ग ही नहीं है। सत्य की यह कैसी आश्चर्य-जनक जययात्रा है कि संस्कार और सांसारिक नियमों के सब पर्दे एक एक करके उठते चले गये, यहाँ तक कि अन्त में केवल नग्न प्रकृति दिखाई पड़ने लगी।

सत्य नहीं तो और यह क्या है? स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध को खींच एक वास्तविक चीज़ है। धूल के कण से लेकर आकाश के तारे तक सब इसके साक्षी हैं। और मनुष्य कैसे कैसे नियम बना कर उसे परदे में छिपाना चाहता है, अपने गढ़े हुए विधिनिषेध लगाकर उसे अपने घर की चीज़ बना बैठा है! मानों सौर जगत् को गलाकर जमाई के लिए घड़ी की चेन बनवाने की तैयारी है। जिस

समय वास्तविकता वास्तव का आह्वान सुन कर जाग उठती है और मनुष्य के सब वाक्य-जालों को तोड़ ताड़ कर अपने स्थान पर आ खड़ी होती है, उस समय क्या केवल धर्म-बल या विश्वास-बल उसे रोक सकता है ? फिर चिक्कार, हाहाकार और दंड, शासन का कितना ग़ुल मचता है ? पर अन्याय के साथ लड़ाई करना क्या केवल शब्दों का काम है ? वह तो उत्तर नहीं देता, वह केवल टक्कर देना जानता है, क्योंकि वह वास्तव है ।

इसी कारण आँखों के सामने सत्य का यह प्रत्यक्ष प्रकाश देखना मुझे बड़ा अच्छा लगता है। रही लज्जा, डर और द्विधा की बात, यदि ये सब न रहें तो सत्य के रस में मज़ा ही क्या ? पाँव काँपना, रह रह कर मुँह फेरना, यह सब बड़ा मनोहर है, और यह सब छल और धोका औरों के लिये नहीं है स्वयं अपने लिए है । वास्तव को जब अवास्तव से लड़ना पड़ता है तो उसका प्रधान अस्त्र छल होता है क्योंकि वस्तु को उसके विरोधी सदा घृणित और स्थूल बनाते हैं ।

मैं सब देख रहा हूँ । यह जो परदा उड़ा जा रहा है, यही प्रलय-मार्ग की यात्रा की तैयारी हो रही है : वह जो लाल फ़ीता वालों के भीतर से ज़रा सा दिखाई पड़ता है मानों काल-वैशाखी की लोलुप जिह्वा है जो कामना की गुप्त उद्दीपना में रँगी गयी है । मैं इसका उत्ताप स्पष्ट अनुभव कर रहा हूँ । और यह सब आयोजन आप ही आप हो रहा है, स्वयं उसे भी इसका पूरा ज्ञान नहीं है ।

उसे ज्ञान क्यों नहीं है ? कारण, मनुष्य वास्तव को

छिपा छिपाकर उसे स्पष्ट जानने और मानने का उपाय स्वयं अपने हाथ से नष्ट कर देता है। वास्तव से मनुष्य लज्जा करता है। इसीलिए मनुष्य की बनाई हुई बाधाओं और रुकावटों के भीतर ही रहकर उसे अपना काम करना पड़ता है। इसी कारण वास्तव की चाल ढाल से मनुष्य बेखबर रहता है, अन्त में जब एकदम सिर पर आपड़ता है तो उसे अस्वीकार करते नहीं बनता। मनुष्य उसे शैतान कहता है, बुरे बुरे नाम धरकर उसे भगाना चाहता है, इसीलिए वह साँप का रूप धरकर चुपके चुपके स्वर्गोद्यान में प्रवेश करता है और केवल कानाफूसी द्वारा ही मानव प्रेयसी की आँखों में धूल झोंककर उसे विद्रोही बना देता है, इसके बाद फिर विश्राम का नाम नहीं, मरण ही मरण बाक़ी है।

वास्तव पर मेरी पूरी श्रद्धा है। नग्न वास्तविकता कल्पना का जेलखाना तोड़ कर खुले प्रकाश में निकल कर आरही है; उसके पग पग पर मेरा आनन्द बढ़ता जाता है। मैं जिस चीज़ को चाहता हूँ उसे अपने निकट रक्खूँगा, ख़ूब दिल भरकर विलसूँगा। किसी तरह न रुकूंगा। बीच में जो कुछ है वह चूर चूर हो जाय, धूल में मिल जाय, हवा में उड़ जाय। इसी में आनन्द है, यही वास्तव का उन्मत्त नाच है, इसके पीछे जीवन मरण, अच्छा बुरा, दुख सुख, सब तुच्छ है।

मेरी मक्खीरानी अभीतक स्वप्न में है। वह नहीं जानती किस ओर जा रही है। समय आने से पहले एकदम उस को नींद तोड़देना उचित नहीं है। उसे मेरे असली उद्देश्य का ज्ञान न होना चाहिए। उस दिन जब मैं भोजन कर

रहा था तो मक्खीरानी ने मेरी ओर एक विशेष प्रकार से देखा था। मानो बिलकुल भूल गई थीं कि उस प्रकार देखने का क्या अर्थ है। मेरी नज़र उसकी आँखों की ओर उठते ही उसका मुँह लाल हो गया और उसने नज़र दूसरी ओर फेर ली। मैंने कहा, "आप मुझे खाता देख एकदम अवाक हो गईं। मैं अनेक बातें छिपा सकता हूँ पर मेरा यह लोभ पग पग पर खुल जाता है। पर देखिये जब मैं ही निर्लज्ज हूँ तो आप मेरे लिए क्यों लज्जा करती हैं ?"

इस पर उसका चेहरा और भी लाल हो उठा। कहने लगी, "नहीं, नहीं आप ... ...।"

मैंने कहा, "मैं जानता हूँ, लोभी मनुष्य स्त्रियों को अच्छे लगते हैं। इस लोभ के कारण ही तो स्त्रियाँ उन पर विजय पाती हैं। मेरे लोभ के कारण ही स्त्रियाँ मेरा सदा आदर सत्कार करती हैं। इसी से आज मेरी यह दशा हो गई है कि लज्जा का लेशमात्र भी मुझ में नहीं रहा। अतएव आप देखती रहिये, जितनी अच्छी अच्छी चीज़ें हैं एक भी न छोड़ूंगा—मेरा यही स्वभाव है।"

मैंने कुछ दिन पहले अंगरेज़ी की एक पुस्तक देखी थी जिसमें स्त्री पुरुष की सम्भोगनीति के सम्बन्ध में स्पष्ट स्पष्ट वास्तव बातें लिखी थीं। इसी कारण मैं उसे बैठक में डाल गया था। एक दिन दोपहर को किसी काम से मैं उस कमरे में गया। देखता क्या हूँ कि मक्खीरानी उसी पुस्तक को हाथ में लिये पढ़ रही है। पाँव की आहट सुनते ही उसने झटपट एक और पुस्तक उसके ऊपर रखदी। इस पुस्तक में लांगफेलो की कविताएं थीं।

मैंने कहा, "मैं आज तक नहीं समझा कि स्त्रियाँ कविता की पुस्तकें पढ़ते हुये क्यों लज्जा करती हैं। पुरुष यदि लज्जा करें तो ठीक भी है। क्योंकि हम लोगों में कोई वकील है, कोई इंजीनियर, हम यदि कविता पढ़ें भी तो आधी रात को दरवाज़ा बन्द करके पढ़ना उचित है। पर आप का तो कविता के साथ बड़ा मेल है। जिस विधाता ने स्त्रियों की सृष्टि की है वह स्वयं कवि हैं,—जयदेव ने इन्हीं के चरणों में बैठकर यह निपुणता प्राप्त की है और गीतगोविंद की रचना की है।"

मक्खी रानी ने कुछ उत्तर न दिया। चेहरा लाल हो गया। वह हँस कर जाने के लिए तैयार थी कि मैंने कहा, "नहीं, यह न होगा, आप बैठ कर पढ़िये। मैं एक पुस्तक यहाँ भूल गया था, उसी को लेकर भागरहा हूं।"

मैंने मेज़ पर से अपनी पुस्तक उठाली और मक्खी से कहा, "अच्छा हुआ यह पुस्तक आप के हाथ में नहीं पड़ी, नहीं तो आप मुझसे बड़ी रुष्ट होजातीं।"

मक्खी ने पूछा, "क्यों?"

मैंने कहा, "यों कि यह कविता की पुस्तक नहीं है। इसमें जो कुछ है वह मनुष्यों की मोटी बात है और मोटे ढंग से लिखी हुई है, किसी प्रकार का चातुर्य नहीं है। मेरी बड़ी इच्छा थी कि इस पुस्तक को निखिल पढ़े।"

ज़रा ज़रा भवें चढ़ाकर मक्खी ने कहा, "भला बताइये तो क्यों?"

मैंने कहा, "इसलिए कि वह पुरुष है और हमारे ही दल में शामिल है। वह इस स्थूल जगत को धुंधला करके देखना

चाहता है, इसीलिए उससे मेरा झगड़ा रहता है। और इसी कारण जैसा कि आप भी देखती हैं वह हमारे स्वदेशी ब्यापार को लांगफ़ेलो की कविता समझ बैठा है—उसका मतलब है कि किसी बात से छन्द का माधुर्य न जाने पाये। हम लोग गद्य का डंडा लिए फिरते हैं और सब छन्दों को चूर चूर करने की चिन्ता में हैं।"

मक्खी ज़रा देर चुप रही, फिर गम्भीर भाव से बोली, "स्वदेशी के विषय में आपकी पुस्तक में क्या है?"

मैंने कहा, "आप पढ़कर मालूम कर लेंगी। एक स्वदेशी क्या, हर विषय में निखिल कल्पित बातों के सहारे चलना चाहता है, इसी कारण मनुष्य की जितनी स्वाभाविक बातें हैं उनसे सदा उसकी खटपट रहती है। वह यह बात किसी तरह नहीं समझता कि तर्क-वितर्क छिड़ने से बहुत पहले ही हमारा स्वभाव तैयार हो चुका है और इस शब्दाडम्बर के अन्त होने पर भी इसी प्रकार बना रहेगा।"

मक्खी ज़रा देर चुप रही, फिर गम्भीर भाव से बोली, "आपने स्वभाव का दमन करके उससे ऊँचा उठना भी क्या हमारा स्वभाव नहीं है?"

मैं मन ही मन हँसा—यह तो और ही कोई बोल रहा है, यह तुम्हारी बोली नहीं है। यह निखिलेश के पास सीख कर आई हो। तुम प्रकृति की सम्पूर्ण स्वस्थ जीव हो, स्वभाव के आवेग से बेचैन हो रही हो। जब से स्वभाव का आह्वान सुना है तुम्हारे रक्त-मांस में सनसनी पैदा हो गई है। इतने दिन तक जो इन लोगों ने तुम्हें मन्त्र दिया है वही माया-मन्त्र-जाल क्या तुम्हें अब भी रोक सकेगा?

मैंने ज़ोरसे कहा, "पृथ्वीपर दुर्बल लोगोंकी संख्या अधिक है। उन्होंने अपने प्राण बचाने के लिए इसी प्रकार के मन्त्र रात दिन जप जप कर सबल लोगों के कान भी खराब कर दिये। स्वभाव से जो लोग कातर हैं वही दूसरों के स्वभाव को भी कातर बनाने की चिन्ता में रहते हैं।"

मक्खी ने कहा, "हम स्त्रियाँ भी दुर्बल हैं, हमें भी दुर्बलों के षड्यंत्र में शामिल हो जाना चाहिए।"

मैंने हँस कर कहा, "आप दुर्बल कैसे हैं? पुरुषों ने स्त्रियों को अबला बताकर स्तुतिवाद करकरके ज़बरदस्ती दुर्बल बना दिया है। आप प्रबल हैं। पुरुषों का शोरगुल सब बाहर का है, भीतर से उनका मन बँधा पड़ा है। आज तक उन्हीं ने ही खुद अपने हाथ से शास्त्र गढ़ कर अपने आपको जकड़ा है, उन्होंने ही अपनी फूंक और आग से स्त्री जाति को गला कर अपने लिए सोने की बेड़ियाँ तैयार की हैं। अपना तैयार किया हुआ फंदा हो मनुष्य का सब से बड़ा इष्टदेव होता है, परन्तु स्त्रियों की बात ही और है। उन्हों ने ही देह देकर, मन देकर, रक्त-मांस के वास्तव की चाहना की है, वास्तव को जन्म दिया है, वास्तव को पाला है।"

मक्खी पढ़ी लिखी लड़की थी। सहज में हार मानने वाली नहीं थी। कहने लगी, "यदि यह बात सच होती तो पुरुष क्या फिर भी स्त्रियों को पसन्द करते?"

मैंने कहा, "स्त्रियाँ इस बात को समझती हैं। वे जानती हैं पुरुषों को चालबाज़ी पसन्द है, इसीलिए वे पुरुषों की बातें खोज कर उन्हीं को भूल में डालने की चेष्टा करती हैं। वे जानती हैं कि शराबी पुरुष जाति को रुचि खाद्य पदार्थ की

अपेक्षा शराब को ओर अधिक है, इसीलिए वे नये नये ढोंग, नई नई तरकीब कर के अपने आप को शराब के रूप में उपस्थित करना चाहती हैं। स्त्रियों को किसी मोह की आवश्यकता नहीं है—पुरुषों के वास्ते ही वे मोहिनी बन गई हैं।"

मक्खी ने कहा, "फिर आप यह मोह तोड़ना क्यों चाहते हैं?"

मैंने कहा, "क्योंकि मैं स्वाधीनता चाहता हूँ। देश को भी स्वाधीन करना चाहता हूँ, मानुषिक सम्बन्ध में भी स्वाधीनता चाहता हूँ।"

मेरा विचार था कि जो आदमी स्वप्न में हो उसे एक दम जगादेना ठीक नहीं है। पर मेरा स्वभाव ऐसा तीव्र है कि मेरे लिए धीरे धीरे चलना ही असम्भव है। मैं जानता हूँ कि जो बातें मैंने उस दिन कही थीं उनका स्वर बहुत साहसिक था, मैं जानता हूँ कि इस प्रकार को बातों का प्रथम आघात कुछ दुःसह होता है—पर स्त्रियों पर सदा साहसों की जय होती है क्योंकि पुरुष तो धूर्ण को पसन्द करते हैं पर स्त्रियों को सदा प्रत्यक्ष वस्तु अच्छी लगती है।

ठीक जिस समय हमारी बातें ज़रा गरम हो चली थीं, निखिल के बचपन के मास्टर चन्द्रनाथ बाबू आते हुए दिखाई पड़े। साधारणतः देखा जाय तो पृथ्वी अच्छी ख़ासी जगह है पर इन मास्टर महाशयों के उत्पात के कारण यहाँ से भाग जाने को जी चाहता है। निखिल की श्रेणी के मनुष्य इस संसार को मरते दम तक स्कूल बनाये रखना चाहते हैं। बड़े हुए तो भी स्कूल पीछे पीछे चला, संसार में प्रवेश किया वहाँ भी स्कूल आ घुसा। उचित तो यह है कि मरते समय

भी स्कूल-मास्टर को अपने साथ २ घसीट कर ले जायँ। उस दिन हमारी बात चीत के बीच में वही मूर्तिमान स्कूल आ मौजूद हुआ। हम सभी के मन में ज़रा ज़रा विद्यार्थीपन बना रहता है, यहाँतक कि उस समय मैं भी ज़रा चौंक पड़ा। और मक्खी तो एकदम क्लास की सब से अच्छी लड़की बनकर गम्भीर भाव से बैठ गई—मानों परीक्षा देने को तैयार बैठी है। कुछ मनुष्य रेल के प्वाइण्ट्समैनों (Pointsmen) के समान एक स्थान पर बैठे बैठे अपने विचार की गाड़ी को अकस्मात् एक लाइन से दूसरी लाइन पर बदल देते हैं।

चन्द्रनाथ बाबू कमरे में घसते ही संकुचित हो कर लौट जाना चाहते थे—"क्षमा कीजियेगा मैं··" पर उनकी बात ख़तम होने से पहले ही मक्खी ने उनके पाँव छू कर प्रणाम किया और कहने लगी, "मास्टर साहब आइये, थोड़ी देर बैठकर जाइयेगा।" मानों डुबाव जल में गिरपड़ी थी और मास्टर महाशय के आश्रय की ज़रूरत थी। डरपोक कहीं की!

चन्द्रनाथ बाबू स्वदेशी की बात छेड़ बैठे। मेरी इच्छा थी कि उन्हीं को बकने दूँ और कुछ उत्तर न दूँ। बूढ़े आदमी की बातें केवल सुनता जाय स्वयं कुछ न बोले। इससे वह समझ बैठता है कि संसार की कल मैं ही चला रहा हूँ। बेचारे को ख़बर नहीं होती कि संसार का काम केवल जिह्वा से नहीं चलता। पहले तो मैं ज़रा चुप रहा, पर सन्दीपचन्द्र पर धीरज का अभियोग उनके शत्रु भी नहीं लगा सकते। चन्द्रनाथ बाबू ने जब कहा, "देखिये, यदि बिना बीज बोये हम फ़सल काटने की आशा करने लगें तो..." उस

समय मुझ से नहीं रहा गया। मैंने कहा, "हमें तो फ़सल नहीं चाहिए। हम तो कहते हैं, "मा फलेषु कदा च न।"

चन्द्रनाथ बाबू को बड़ा अचम्भा हुआ। बोले, "तब आप क्या चाहते हैं?"

मैंने कहा, "हम चाहते हैं काँटे जिनके बोने में कुछ भी खर्चा नहीं होता।"

मास्टर महाशय ने उत्तर दिया, "पर काँटे तो केवल औरों ही को नहीं रोकते, वह तो अपने रास्ते में भी जञाल हो जाते हैं।"

मैंने कहा, "ये तो स्कूल में पढ़ाने की बातें हैं। हमें तो खड़िया हाथ में ले केवल बोर्ड पर लिखना नहीं है। हमारी छाती जिस बात से जली जारही है, हमारे लिए आज वही महत्वपूर्ण बात है। इस समय हम औरों के तलवों का ध्यान रख कर ही मार्ग में काँटे बिछायेंगे जब अपने पांव में चुभेंगे तो धीरे धीरे कुछ उपाय सोच लेंगे। अब मरने के दिन आयेंगे तभी ठण्डा पड़ने का समय होगा। जबतक हृदय में आग है तबतक तो भभकना ही शोभा देता है।"

चन्द्रनाथ बाबू ज़रा हँसकर बोले, "भभकना चाहें तो भभकिये पर वीरत्व या कृतित्व समझकर धोके में न पड़िये। संसार में जो जाति बढ़ी है भभककर नहीं बढ़ी परिश्रम करके बढ़ी है। जो लोग परिश्रम को भेड़िया समझकर सदा उससे दूर भागते रहे हैं उन्हीं को नींद टूटने पर बिना परिश्रम सहज और सरल रास्ते से भाग निकलने की पड़ती है।"

इस बात का बहुत कड़ा उत्तर देने का विचार था पर उसी समय निखिल आगया। चन्द्रनाथ बाबू उठे और मक्खी

की ओर देख कर बोले, " मैं अब चलता हूँ, कुछ काम है।"

उनके जाते ही मैंने वही अंगरेज़ी की पुस्तक दिखा कर निखिल से कहा, "मक्खी रानी से इसी पुस्तक की बातें कर रहा था।"

रुपये में साढ़े पन्द्रह आने आदमियों को झूठ बोल कर धोका दिया जाता है, पर इन स्कूलमास्टरों के स्थाई छात्रों को सच बोलकर ही धोका देना सहज है। निखिल को समझा बुझाकर ही फाँसना पड़ता है। उसके साथ पत्ते दिखाकर ताश खेलना चाहिये।

निखिल पुस्तक का नाम पढ़कर चुप हो गया। मैंने कहा, "मनुष्य ने कल्पित सिद्धान्त गढ़कर अपने सांसारिक जीवन को धुँधला करदिया है, इस प्रकार के लेखक झाड़न हाथ में ले ऊपर की धूल उड़ाकर भीतर की वस्तु को स्पष्ट करने में लगे हैं। इसीलिए मैंने कहा था कि यह पुस्तक तुम्हें पढ़नी चाहिये।"

निखिल ने कहा, "मैंने पढ़ी है।"

मैंने कहा, "तुम्हारी क्या राय है?"

निखिल ने कहा, "जो लोग वास्तव में सत्य असत्य का विचार करना चाहें उनके लिए यह पुस्तक बहुत अच्छी है पर जो स्वयं भूल में पड़ना चाहें उनके लिए ज़हर है।"

मैंने कहा, "मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।"

निखिल बोला, "देखो जो लोग कहते हैं कि अपनी सम्पत्ति पर किसी मनुष्य का एकान्त अधिकार नहीं है वह यदि निर्लोभ हों तभी उनके मुँह से यह बातें अच्छी लगती हैं, पर यदि वह खुद चोर हों तो ऐसा कहना साफ़ झूठ बोलना है।

जिस समय कामना प्रबल होती है उस समय ऐसी पुस्तकों का ठीक मतलब समझ में नहीं आता।"

मैंने कहा, "कामना ही तो प्रकृति का सिगनल है जिसे लक्ष्य करके हम यहाँ अपने मार्ग पर चलते हैं। कामना को जो मिथ्या बताते हैं वे मानों आँख फोड़ कर दिव्यदृष्टि की दुराशा करते हैं।"

मेरी इच्छा थी कि मक्खी भी हमारे तर्क में कुछ बोले, वह अब तक बराबर चुप बैठी थी। आज जान पड़ता है मेरी बातों से उसके मन को कुछ अधिक धक्का पहुँचा है। इसीलिए मन में दुविधा लगी है, स्कूल मास्टर के निकट जाकर पाठ पूछने की इच्छा हो रही है।

संभव है आज की मात्रा ज़रा अधिक होगई हो पर अब सचेत करदेने की ज़रूरत भी है। जो अछेद्य है वह भी छिदसकता है, यह पहले समझकर काम करना चाहिए।

मैंने निखिल से कहा, "अच्छा हुआ तुमसे बातें हो गईं। नहीं तो मैं यह पुस्तक मक्खीरानी को देनेवाला था।"

निखिल ने कहा, "इसमें क्या हर्ज है? वह पुस्तक जब मैंने पढ़ी है तो विमला क्यों न पढ़े? मैं तुम्हें केवल एक बात बताना चाहता हूँ। योरोप में मनुष्य को सब बातों को विज्ञान की दृष्टि से देखाजाता है—पर वास्तव में मनुष्य पदार्थ न केवल देहतत्व है, न जीवतत्व, न मनस्तत्व, न समाजतत्व। कृपा करके यह बात न भूलजाना।"

मैंने कहा, "निखिल, आज कल तुम इतने उत्तेजित क्यों हो रहे हो?"

उसने कहा, "मैं स्पष्ट देख रहा हूं कि तुम लोग मनुष्य को तुच्छ समझकर उसका अपमान करते हो।"

"यह तुमने कहाँ देखा ?"

"इधा में, अपने मन के दुःख में। मनुष्यों में जो उत्तम हैं, तपस्वी हैं, सुन्दर हैं उनको तुम गला घोट कर मारे डालते हो।"

यह कहकर वह कमरे से बाहर चलागया। मैं उसकी बातों पर अवाक् होकर विचार कररहा था कि एक पुस्तक मेज़ पर से नीचे गिरी। मैं चौंक पड़ा। फिरकर देखा तो मक्खी भी मुझसे बचकर उसके पीछे पीछे जारही थी।

यह निखिल बड़ा ही विचित्र मनुष्य है। वह खूब समझता है एक घोर विपत्ति का सामना है, फिर क्यों मुझे अपने घर से निकाल बाहर नहीं करता ? जान पड़ता है यह देखरहा है कि विमला क्या करती है। विमला यदि उससे कहे कि तुम्हारे साथ मेरा जोड़ नहीं मिलता तोभी वह सिर झुकाकर स्वीकार करलेगा कि हाँ बड़ी भूल होगई। उसको यह समझने का साहस नहीं है कि भूल को भूल मानना ही सबसे बड़ी भूल है। कल्पना मनुष्य को कितना कातर बना देती है इसका निखिल प्रत्यक्ष दृष्टान्त है। इस प्रकार का मैंने कोई आदमी नहीं देखा—मानों प्रकृति ने उसे विचित्र ढंग से गढ़ा है। उसके चरित्र को लेकर उपन्यास या नाटक भी गढ़ना कठिन है, घरबार का काम तो वह क्या चलावेगा।

रही मक्खी, सो जान पड़ता है आज उसका स्वप्न बिलकुल टूटगया। वह किस धारा में बही जारही है आज

उसे मालूम होगया। अब वह चाहे आगे बढ़े, चाहे पीछे हटे, जो कुछ करेगी जान बूझकर करेगी। हो सकता है एक बार आगे बढ़कर भी फिर ज़रा पीछे हट जाय। पर इससे मुझे ज़रा भी डर नहीं। कपड़ों में जब आग लगती है तो जितने हाथ पैर मारो उतनी ही और भड़कती है। भय के स्पर्श से उसके हृदय का वेग और भी अधिक होजायगा। मैं स्वयं उससे और अधिक कुछ न कहूँगा—केवल नये ढंग की उदार भाव से लिखी हुई कुछ अंग्रेज़ी पुस्तकें पढ़ने को दूंगा। वह धीरे धीरे खूब समझलेगी कि कामना को वास्तव मानकर उसपर श्रद्धा करना ही आधुनिकता है। कामना से लज्जित होकर त्याग की बड़ाई करना आधुनिकता नहीं है।

जो हो, इस नाटक को पंचम अंक तक देखना चाहिए। मैं यह डींग नहीं मारता कि मैं केवल दर्शक मात्र हूँ और उच्चासन पर बैठा बैठा कभी कभी ताली बजा देता हूँ। छाती में तनाव हो रहा है, नस नस खिंची जाती है! रात को जब बत्ती बुझाकर बिछौने पर लेटता हूँ तो वही नज़रें, वहा बातें, वही हावभाव अन्धकार के भँवर में चक्कर लगाया करते हैं। सवेरे जब उठता हूँ तो मनमें एक आनन्दमय प्रतीक्षा का अनुभव होता है—मानों रक्त के साथ साथ सारे शरीर में किसी स्वर की धारा बहरही है।

उस मेज़ के ऊपर जो तस्वीरों का चौकठा रक्खा है उसमें निखिल के पास मक्खी की तस्वीर भी थी। यह तस्वीर मैंने निकाललो। कल वह ख़ाली जगह दिखाकर मैं ने मक्खी से कहा था, "कंजूस की कंजूसी के कारण ही चोरी की ज़रूरत पड़ती है, अतएव इस चोरी का पाप कंजूस

और चोर दोनों को बराबर बाँटदेना चाहिए। आपकी क्या राय है ?"

मक्खी ने हँसकर कहा, "वह तस्वीर तो कुछ ज़्यादा अच्छी भी नहीं थी।"

मैंने कहा, "क्या किया जाय ? तस्वीर तो फिर तस्वीर ही है। पर जैसी भी कुछ है मैं उसी से सन्तुष्ट रहूंगा।"

मक्खी एक पुस्तक खोलकर उस के पृष्ठ उलटने लगी। मैंने कहा, "आप रुष्ट न हों मैं उस जगह को किसी न किसी तरह भरदूंगा।"

आज वह जगह ख़ाली नहीं रही। मेरी यह तस्वीर बहुत दिनों की है—उस समय चेहरे पर ज़रा ज़रा कच्चापन था, मन की भी वही दशा थी। उस समय तक लोक-परलोक की बहुत सी बातों में विश्वास बना हुआ था। ऐसा विश्वास भूल अवश्य है पर उसमें एक गुण भी होता है, उसके कारण मनमें एक प्रकार का लावण्य आजाता है।

मेरी तस्वीर निखिल की तस्वीर के पास लगगई—हम दोनों पुराने मित्र हैं।

निखिलेश की आत्म-कथा।

—:o:—

पहले कभी मैंने अपने विषय में विचार नहीं किया। अब कभी कभी अपने ऊपर बाहर से दृष्टि डालता हूँ। विमला मुझे किस भाव से देखती है यही देखने की चेष्टा कर रहा हूँ। हर बात को बढ़ाकर देखने के अभ्यास ने इस विषय को बड़ा गम्भीर बनादिया।

और कुछ नहीं, जीवन को रोरोकर आसुओं में डुबोने से हँसकर उड़ा देना ही अच्छा है। इसी तरह संसार का काम चलता है। दुनिया में आज जितना दुःख, जितनी विपत्ति मौजूद है उसे हम छायामात्र समझकर अपने मनसे उड़ा-देते हैं, इसीलिए निश्चिन्त होकर खाते पीते हैं—उसे यदि सत्य मानकर ज़रा देर के लिए भी देखसकते तो क्या मुँह में अन्न रुचता या आँखों में नींद रहती?

पर अपने आपको इस प्रकार छाया समझकर मनसे नहीं भुला सकता। समझता हूँ केवल मेरा ही दुःख जगत की छाती पर पत्थर बनकर आपड़ा है। इसीलिए सब चीज़ें ऐसी गम्भीर दिखाई पड़ती हैं। इसीलिए अपनी ओर देखकर आँखों में आंसू भर आते हैं।

तू कैसा हतभाग्य है जो एक बार जगत के राजमार्ग पर खड़ा होकर अपने को सब के साथ मिलाकर नहीं देखता! वहाँ युग-युगान्तरों के महा मेले में, लाखों करोड़ों आदमियों की भीड़ में, विमला तेरी कौन है? स्त्री है?

स्त्री किसे कहते हैं ? यह शब्द जिसे रातदिन अपनी फूंक से फुलाये फिरता है, समझकर कि बाहर से ज़रासी सुई भी चुभ गई तो वहीं रहजायगा !

मेरी स्त्री है तो मानों बिल्कुल मेरी हो गई ! पर वह यदि कहे, नहीं मैं तो स्वतन्त्र हूँ—तो क्या मैं कहूँगा, नहीं यह कैसे हो सकता है, तुम तो मेरी स्त्री हो ! स्त्री ! मानों शब्द से अधिकार और सत्य दोनों निश्चित हो गये ! एक शब्द के भीतर क्या मनुष्य के समस्त आत्मा का हाथ पाँव बाँधकर कैद करसकते हैं ?

स्त्री ! इसी शब्द में मैंने जीवन का समस्त माधुर्य्य इकट्ठा करके सदा अपने हृदय में रक्खा है — वहाँ से हटकर उसे कभी धूल पर उतरने नहीं दिया । इसी नाम की वेदी पर कितनी पूजा की धूप जली है, कितनी कामना की बंशी बजी है, कितने बसन्त और शरद के फूल चढ़े हैं ! वह यदि काग़ज़ की नाव के समान गंदे जल में डूबजाय तो उसके साथ मेरा ... ।

वह देखो, फिर वही गम्भीरता ! ये सब गुस्से की बातें हैं । तुम चाहे जितना क्रोध करो, जो बात है वह ज्यों की त्यों बनी रहेगी । यदि बिमला तुम्हारी नहीं है तो बस नहीं है, जितना क्रोध करोगे, जितना छटपटाओगे उतना इस बात का और प्रमाण मिलता जायगा । छाती फटती है तो फटने दो । इससे दुनिया का कुछ बनता बिगड़ता नहीं, दुनिया का क्या, तुम्हारा ही क्या बनता बिगड़ता है । जीवन में मनुष्य जो कुछ खोता है उस सबसे 'मनुष्य' बहुत बड़ा है — आँसुओं के समुद्र का पार अवश्य है, इसीलिए हम रोते हैं,

नहीं तो रोते भी नहीं।

रहा समाज का ख़याल—सो समाज आप सोच ले और जो करना हो सो करे। मैं जो रोता हूँ यह मेरा अपना रोना है, समाज का रोना नहीं है। यदि विमला कहे कि मैं तुम्हारी नहीं हूँ, तो फिर मेरी सामाजिक स्त्री होकर चाहे जहाँ रहे, मुझसे कुछ वास्ता नहीं।

मास्टर महाशय अभी मेरे पास आये थे। उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रखकर मुझसे कहा था, "निखिल, सोने जाओ, बहुत रात गई है।"

बात यह है कि जब तक विमला ख़ूब गहरी नींद नहीं सो जाती मुझे अन्दर जाकर सोना बहुत कठिन मालूम होता है। दिन के समय उसके पास बैठता हूँ, बात चीत भी होती है—पर रात के समय जब उसके साथ अकेला होता हूँ तो कहने को कुछ बात ही नहीं सूझती। उस समय मुझे बड़ी लज्जा मालूम होती है।

मैंने मास्टर महाशय से पूछा, "आप अभी तक क्यों नहीं सोये?"

वह हँस कर बोले, "मेरे सोने के दिन गये अब जागने के दिन हैं!"

मैं जाने ही वाला था कि खिड़की के सामने आकाश में जो गहरा मेघ छाया हुआ था वह ज़रा फटा और अकस्मात् एक बड़ासा तारा चमकता हुआ दिखाई पड़ा और मुझसे कहने लगा, कितने सम्बन्ध बनते बिगड़ते हैं पर मैं उसी प्रकार स्थिर हूँ, मानों मिलन-रात्रि के कभी न बुझनेवाले प्रदीप की शिखा हूँ।

तुरन्त ही ऐसा जान पड़ने लगा कि इन विश्व-वस्तुओं के परदे के पीछे मेरी अनन्त काल की प्रेयसी छिपकर बैठी है। कितने जन्म, कितने दर्पणों में उसकी छवि दिखाई पड़ी है—दर्पण भी कैसे कैसे—टूटे, फूटे, धुंधले। जैसे ही सोचता हूं इस दर्पण को अपना करके बक्स में बन्द कर रक्खूं, वैसे ही छवि फिर ओझल हो जाती है। जाने दो, करना ही क्या है, मुझे न दर्पण चाहिये और न तस्वीर!

अँधेरे में खड़ा एक शैतान कहरहा है, यह सब बातों का फुसलाना है। यही सही, बच्चे को तो फुसलाना ही पड़ता है। पर यह लाखों करोड़ों बच्चे, ये रोते हुए बच्चे, ये सब क्या केवल झूठ ही बोलकर फुसलाये जाते हैं। मेरी प्रेयसी मुझे नहीं फुसला सकती—वह अवश्य सत्य है, इसी कारण मैंने बार बार उसे देखा है, बार बार देख रहा—भूल में पड़ कर भी उसे देखरहा हूं—आँख भर आँखों से भी उसे देखा है। जीवन के हाट की भीड़-भाड़ में उसे बारबार देखा है, बारबार खोया है, मृत्यु की धारा में डूबकर निकलूंगा तोभी उसे देखूंगा। तुम निठुर हो, पर अधिक मत सताना—जिस मार्ग पर तुम्हारे पैरों के निशान पड़े हैं—जिस हवा में तुम्हारे खुले बालों की सुगन्ध भरी है, उसे यदि फिर खोबैठूं, तो इसी भूल में मुझे सदा के लिए न छोड़देना! वह तारा, मेघरूपी घूंघट उठाकर मुझसे कह रहा है, नहीं, नहीं घबराओ मत जो चिरस्थाई है वह सदा बना रहेगा।

इसी समय छोटी भाभी भी कमरे में आगईं। घड़ी में दो बजे थे।

"निखिल तुम क्या कर रहे हो? भैया सोने जाओ, अपने आप को क्यों व्यर्थ कष्ट पहुँचा रहे हो? तुम्हारा जो हाल हो गया है मुझसे देखा नहीं जाता।"

यह कहते कहते उनकी आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे।

मैं कुछ नहीं बोला। उनके चरण छूकर और प्रणाम करके सोने के लिए चला गया।

विमला की आत्म-कथा।

पहले मुझे कुछ सन्देह नहीं था, न किसी प्रकार का डर था; मैं समझती थी देश के लिए आत्म-समर्पण कर रही हूँ। परिपूर्ण आत्म-समर्पण में कैसा आनन्द मिलता है! उस समय मुझे पहली बार मालूम हुआ था कि अपना सर्वनाश करके ही परमानन्द प्राप्त होता है।

सम्भव था यह नशा आप ही आप दूर होजाता। पर सन्दीपबाबू से न रहागया, उन्होंने अपने मन का भाव स्पष्ट कर डाला। उनकी बातों का स्वर मुझे हर ओर से स्पर्श करने लगा, उनकी चाह भरी नज़रें मानों मेरे पाँव पकड़कर भिक्षा माँगने लगीं। इन सब बातों में इच्छा का ज़ोर ऐसा प्रबल दिखाई पड़ता था, मानों मुझे निष्ठुर डाकू के समान चोटी पकड़कर खींच ले जायगा।

सच बात तो यह है कि इस भयङ्कर इच्छा की प्रलय-मूर्ति रात दिन मेरे मन को खींच रही थी। मैं जानती थी अपना सत्यानाश कर रही हूँ, पर यह ख़याल भी कैसा मनोहर मालूम होता था! कैसी लज्जा होती थी, कैसा डर लगता था, पर उसका माधुर्य बड़ा ही तीव्र था।

फिर कौतूहल का भी अन्त नहीं था,—जिस मनुष्य को अच्छी तरह नहीं जानती, जो निश्चित रूप से मेरा नहीं हो सकता, जिस की शक्ति प्रबल है, जिसका यौवन सहस्र शिखाओं में जल रहा है उसकी भड़कती हुई कामना का रहस्य कैसा प्रचण्ड, कैसा प्रबल होगा। जो समुद्र बहुत दूर था, जिसका नाम केवल पुस्तकों में पढ़ा था, उसकी एक भयङ्कर लहर ने समस्त बाधाएँ तोड़ डालीं और अकस्मात् मेरे पैरों को छूकर अपनी असीमता का परिचय दे दिया।

पहले सन्दीपबाबू पर मेरी बड़ी भक्ति थी, पर अब तो भक्ति क्या श्रद्धा भी नहीं है। तौभी मेरी यह रक्तमांस की वीणा उन्हीं के हाथ से बजने लगी। उन हाथों को मैं अवज्ञा करना चाहती थी और इस वीणा को भी—पर वीणा तो बजने लगी।

ऐसा होते हुए भी मेरे मन में न जाने क्या बात थी जिसके कारण ऐसा मालूम होता था कि इस जीने से तो मरना ही अच्छा है।

एक दिन मेरी मँझली जिठानी हँसकर कहने लगीं, "हमारी छोटी रानी में कैसे कैसे गुण हैं! अतिथि का कैसा आदर सत्कार किया है कि घर छोड़कर जाना ही नहीं चाहता। हमारे समय भी मेहमान आते थे पर उनका इतना

आदर नहीं था, इसके अतिरिक्त उस समय हमें पतियों की मां कुछ सेवा शुश्रूषा करनी पड़ती थी। बेचारा निखिल इस नये युगमें पैदा हुआ है, इसीका फल भोगरहा है। वह यदि मेहमान बनकर इस घरमें आता तो शायद उस को भी कुछ पूछ होती। छोटी रानीजी तुमसे एकबार उसको और देखा भी नहीं जाता, उसका क्या हाल हो गया है!"

उस समय इन उलाहनों का मुझपर कुछ असर नहीं था, मैं सोचती थी मैंने जो व्रत किया है उसका ये अर्थ ही नहीं समझतीं। उस समय मेरे चारों ओर एक प्रबल भाव का चक्र था। मैं अपने विचार में देश के लिए प्राण देरही थी, मुझे लाज-शरम की ज़रूरत नहीं थी।

कुछ दिन से देशोपकार की बातें बन्द हैं। आज-कल आलोचना, आधुनिक काल के स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध और अन्य हज़ारों इसी प्रकार की बातें हुआ करती हैं। बीच बीच में अंग्रेज़ी कविता और वैष्णव कविता का भी ज़िक छिड़जाता है। इसी कविता में एक ऐसा स्वर सुनाई पड़ता है जो बहुत मोटे तार का स्वर है। इस स्वर का स्वाद मुझे अपने घर में अबतक नहीं मिला था। मुझे जान पड़ता था मानों यही पौरुष का स्वर है, इसी में प्रबल शक्ति की झंकार सुनाई पड़ती है।

किन्तु अब यह पर्दा भी उठगया। सन्दीपबाबू क्यों बिना कारण इस प्रकार दिन बिता रहे हैं, मैं क्यों बिना प्रयोजन उनके साथ आलाप-आलोचना करने में निमग्न हूँ, इन बातों का आज मेरे पास कुछ भी उत्तर नहीं है।

इसीलिए उस दिन मुझे अपने ऊपर, छोटी जिठानी के ऊपर, सारे जगत के व्यवहार के ऊपर बड़ा क्रोध आया। मैंने सोच लिया कि अब कभी बाहर की बैठक में न जाऊँगी—चाहे मर जाऊँ तोभी न जाऊँगी।

दो दिन तक बाहर नहीं गई। उन्हीं दो दिन में मुझे पहले पहल अच्छी तरह मालूम हुआ कि कितनी दूर निकल गई हूँ। ऐसा मालूम होता था मानो एकदम सारा जीवन फीका पड़गया। जो चोज़ सामने आती थी तोड़कर फेंकदेने को जी चाहता था। सिर से पैर तक सारा शरीर मानो किसी की प्रतीक्षा कररहा है—मानो सारे शरीर का रक्त बाहर की ओर कान लगाए हुए है।

हर घड़ी काम काज में लगी रहने की चेष्टा करने लगी। सोने का कमरा बिलकुल साफ़ था, तोभी अपने सामने जल के घड़े डलवा डलवाकर उसे ख़ब धुलवाया। आलमारी में सब चीज़ें ठोक रक्खी थीं, मैंने सब निकाल डालीं और झाड़ पोंछकर एक नये ढंग से सजाईं। उस दिन मुझे सिर धोकर चोटी बाँधने का समय भी नहीं मिला। भंडार में जाकर देखा तो खाने पीने की बहुत सी सामग्री चोरी होगई थी। मैंने नौकर-चाकरों को ख़ब डाँटाडपटा, पर किसी को चोर ठहराने की हिम्मत न पड़ी—क्योंकि दोष मेरा भी था, मेरी क्या इतने दिन तक आँखें फूट गई थीं।

उस दिन मैंने ऐसी गड़बड़ मचाई मानो मुझ पर भूत सवार था। दूसरे दिन पुस्तक पढ़ने की चेष्टा की, पर कुछ याद नहीं का पड़ा। एक बार भूल में पुस्तक हाथ में लिए घूमते घूमते खिड़की के पास जाखड़ी हुई और बैठक के

आँगन की ओर झाँकने लगी। उत्तर की ओर जो कमरे हैं वहाँसे वह सब दिखाई पड़ते हैं। उनमें से एक कमरा मानों मेरे जीवन-समुद्र के उस पार आपहुँचा है, और पार उतरने को नाव नहीं मिलती, मैं खड़ी बाट देखरही हूँ। परसों मैं जो कुछ थी आज मानों उसकी छाया मात्र हूँ, उसी स्थान में हूँ तो भी जान पड़ता है कहीं और हूँ।

इसी समय सन्दीपबाबू एक समाचार-पत्र हाथ में लिए कमरे से बरामदे में आते हुए दिखाई पड़े। उनके मन की बेचैनी चेहरे ही पर दिखलाई पड़ती थी। बार बार जान पड़ता था मानों उन्हें आँगन पर और बरामदे के जँगले पर बड़ा क्रोध आरहा है। समाचार-पत्र अब उन्होंने अधीर हो कर दूर फेंकदिया, जान पड़ता था यदि सम्भव होता तो आकाश तक के टुकड़े करडालते। प्रतिज्ञा अब न रहसकेगी! जैसे ही बैठक की ओर जाने का विचार कररही थी, देखा कि अकस्मात् छोटी जिठानी पीछे आखड़ी हुई! "ओहो, अब तो ताकाझांकी शुरू करेगी?" केवल यही कह कर वह लौट गई। मैं फिर बाहर न जासकी।

अगले दिन सबेरे गोविन्द की मां आकर मुझ से बोली, "छोटी रानी भोजन को सामग्री अभी तक नहीं दी गई।" मैंने चाबी का गुच्छा फेंक दिया—"जा, हरिमती से कह, वह निकाल देगी।" और खिड़की के पास बैठी विलायती सिलाई का काम करती रही। इसी समय बैरा ने एक चिट्ठी लाकर मेरे हाथ में दी कि सन्दीपबाबू ने भेजी है। साहस की भी हद हो गई: बैरा अपने मन में क्या सोचेगा? दिल धड़कने लगा। चिट्ठी खोलकर देखी। उसमें केवल लिखा था,

"विशेष प्रयोजन। देश का काम। सन्दीप।"

सिलाई-विलाई सब धरी रही। आइने के सामने जाकर ज़रा बाल ठीक करलिए। साड़ी वही पहने रही, जाकट दूसरे बदल लो। मैं जानती हूँ इस जाकट के साथ, उनकी नज़रों में मेरा कुछ विशेष सम्बन्ध हो गया है।

मुझे जिस बरामदे में होकर जाना था उसमें छोटी जिठानी नियमानुसार बैठी सुपारी काटरही थीं। आज मुझे कुछ भी सङ्कोच नहीं हुआ। उन्होंने पूछा, "छोटी रानी, कहाँ चलीं?"

मैंने कहा, "बैठक में।"

"इतने सबेरे?"

मैं बिना कुछ उत्तर दिए बैठक में चली गई। छोटी जिठानी गाने लगीं—

" राई आमार चले जेते ढले पड़े
अगाध जलेर मकर जेमन,
ओ तार चिटे चिनि ज्ञान नेई !"

[मेरी राधा, मेरी प्रियतमा, चलते चलते ढुलक पड़ती, जैसे गहरे जल में मगरमच्छ, पर ज्ञान इतना भी नहीं है कि गुड़ और खांड में पहिचान करसके।]

बैठक में आकर देखा सन्दीपबाबू द्वार की ओर पीठ किए ब्रिटिश एकाडेमी द्वारा प्रकाशित तस्वीरों की एक पुस्तक बड़े ध्यान से देखरहे हैं।

मैं कमरे के अन्दर चली गई। मेरे पैरों की आहट सन्दीप ने अवश्य सुनी होगी किन्तु वह फिर भी पुस्तक उसी तरह पढ़ते रहे, मानो उन्हें कुछ ख़बर ही न हुई। मुझे

डर था कि कहीं आर्ट की (शिल्प विद्या की) बात न छेड़ बैठें। सन्दीपबाबू शिल्प की आड़ में जिन बातों की आलोचना किया करते थे उनसे अबतक मुझे लज्जा मालूम होती थी। मेरी लज्जा छिपाने के लिए ही वह इस ढंग से बातें करते थे मानों उसमें लज्जा की कुछ बात ही नहीं थी।

इसीलिए मैंने सोचा कि लौट जाऊँ—उसी क्षण सन्दीप बाबू ने बहुत गहरी सांस लेकर सिर उठाया और मुझे देख कर चौंक पड़े। बोले, "आप आगईं!"

उनकी आवाज़ में और दोनों नेत्रों में एक प्रकार की दबी हुई भर्त्सना झलक रही थी। मेरे ऊपर जो सन्दीप का अधिकार जमगया था उसके कारण मेरा दो-तीन दिन तक बाहर न आना मानों बड़ा अपराध था। मैं जानती थी कि सन्दीप के इस अभिमान से मेरा अपमान होता है पर क्रोध करने की शक्ति कहां थी!

मैं चुप रही। मैं दूसरी ओर देख रही थी, तो भी खूब जानती थी कि सन्दीप के दोनों नेत्र मेरे मुख पर पड़े स्वयं मेरे ही विरुद्ध नालिश कररहे हैं और वहाँसे हटना नहीं चाहते। यह कैसी विचित्र घटना थी। यदि सन्दीप कोई बात छेड़ देते तो उसीकी आड़ में मुझे छिपने का अवसर मिलजाता। याद नहीं कितनी देर तक यही दशा रही, अन्तमें जब लज्जा के मारे विह्वल हो उठी तो कहना ही पड़ा, "आपने किस काम के लिए मुझे बुलाया था?"

सन्दीप कुछ विस्मित होकर बोले, "क्यों, काम की क्या सदा ही आवश्यकता है? मित्रता कुछ अपराध है? संसार में जो चीज़ सबसे बड़ी है उसका आप इतना अनादर करतीं

हैं ! हृदय की पूजा भी क्या सड़क का कुत्ता है कि बाहर से बाहर ही खेद दिया ?"

मेरा दिल धड़कने लगा—विपत्ति धीरे धीरे निकट आ रही है, अब बचना कठिन है। मेरे हृदय में हर्ष और भय दोनों का समान ज़ोर था। इस सर्वनाश का बोझ मैं अपनी पीठ पर कैसे उठाऊँगी ? क्या मुँह के बल कीचड़ में गिरना ही पड़ेगा ?

मेरा सारा शरीर काँप रहा था। मैं अपना मन खूब कड़ा करके उनसे बोली, "सन्दीपबाबू, आपने देश के कौन से काम के लिए मुझे बुलाया है, मैं इसीलिए घर का काम छोड़ कर आई हूँ।"

वह ज़रा हँसकर बोले, "वहीं तो मैं आपको बतारहा हूँ। आप जानती हैं, मैं पूजा करने यहां आया हूँ ? क्या मैंने आपसे नहीं कहा कि आपके द्वारा मैं देश की शक्ति को प्रत्यक्ष देखरहा हूँ ? केवल भूगोलविवरण ही तो सत्य वस्तु नहीं है—क्या कोई नक्शे की रेखाओं का स्मरण करके जान देसकता है ? जब आपको सम्मुख देखता हूँ तभी तो समझता हूँ देश कितना सुन्दर, कितना प्रिय, कितना तेजस्वी है। आप अपने हाथसे मेरे माथे पर जय-टीका लगाएं तभी मैं जानूंगा कि मुझे देश का आदेश मिल गया। इस बात को स्मरण रखकर यदि लड़ते लड़ते मृत्यु-बाण खाकर धूल पर गिरपड़ूंगा तो भी समझूंगा कि यह धूल भूगोल-विवरण की धूल नहीं है, यह एक प्रेमसे भरा आँचल है। कैसा आँचल है यह आप स्वयं जानती हैं। आपने जो उस दिन वह साड़ी पहनी थी जिसका लाल मिट्टी का सा रंग

था, जिसकी चौड़ी गोट रक्त की धारा के समान थी, वह उसी साड़ी का आँचल होगा—उसे क्या मैं कभी भूलसकता हूँ? यही स्मृति तो जीवन को सतेज और मृत्यु को रमणीय बनासकती है!"

सन्दीप की आँखों से आग निकलरही थी। यह आग कामना की थी या पूजा की, यह मैं मालूम न करसकी। मुझे वही दिन फिर याद आगया जिस दिन मैंने उनकी वक्तृता पहलेपहल सुनी थी। उसदिन मैं यह भी भूल गई थी कि सन्दीपबाबू मनुष्य हैं या अग्नि-शिखा।

इसके बाद मुझसे कुछ भी न कहागया। मुझे डर था कि कहीं सन्दीपबाबू एकदम उठकर मेरा हाथ न पकड़लें, क्योंकि उनका हाथ चंचल अग्नि-शिखा की तरह काँपरहा था और उनकी नज़र चिनगारियों के समान मेरे ऊपर पड़रही थी।

वह फिर कहने लगे, "क्या आप घरके कामकाज ही को सदा जीवन का सर्वस्व समझती रहेंगी? आपका तेज ऐसा प्रबल है कि उसके आभास मात्र से हम जीवन-मरण को तुच्छ समझने लगते हैं; यह क्या घूंघट में घोट कर रखने की चीज़ है? मिथ्या लज्जा आपको नहीं सोहाती, न लोगों की कानाफूँसी पर ध्यान देना आप के लिए उचित है। आज आपको विधि-निषेध का चक्र तोड़ कर स्वतंत्रता के मैदान में निकलआना चाहिये।"

इस प्रकार जब सन्दीपबाबू की बातों में देश-भक्ति के साथ साथ मेरी प्रशंसा मिली रहती तो संकोच का बंधन टूटने लगता और खून में गर्मी आजाती। जितने दिन शिल्प

और वैष्णव कविता, स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध और वास्तव-अवास्तव के विचार के विषय में बातें चलती रहीं मेरा मन प्रायः ग्लानि से काला हो उठता था। आज उस अंगारे की कालिमा ने फिर आग पकड़ली और उसके सामने लज्जा अधिक न ठहरसकी। मैं समझने लगी कि मेरा सतेज स्त्रीत्व वास्तवमें एक दिव्य महिमा है।

इसी समय खेमा दासी रोती पीटती गुल मचाती कमरे में आ उपस्थित हुई। बोली, "मेरा हिसाब करदो, मैं जाती हूँ, मुझे कभी ऐसी···।" सिसकियों के मारे और कुछ सुनाई न पड़ा।

मैंने पूछा, "क्या हुआ? बात क्या है?"

विदित हुआ कि मँझली रानीमां की दासी थाको खेमा से लड़पड़ी थी और दोनों की आपस में खूब गाली गलौज हुई थी।

मैंने बहुतेरा कहा कि मैं स्वयं आकर देखती हूँ कि क्या बात है पर उसका रोना किसी प्रकार न थमा।

सबेरे सबेरे दीपक-रागिनी का स्वर खूब मधुर होउठा था, उसपर मानों बासन माँजने का पानी डाल दिया गया। स्त्रियाँ जिस पद्मसरोवर की पद्म हैं उसकी तली की कीचड़ धुलकर ऊपर आगई। इसे सन्दीपबाबू से छिपाने के लिए ही मैं जल्दी से अन्दर चली गई। देखा छोटी जिठानी उसी बरामदे में बैठी माथा नीचे किए सुपारी काटरही हैं। होठों पर ज़रा ज़रा हँसी है और वही गीत गुनगुना रही हैं, "राई आमार चले जेते ढले पड़े"—अभी कुछ उपद्रव हो चुका है इसकी मानों उन्हें कुछ भी खबर नहीं है।

मैंने कहा, "मंझली रानी, तुम्हारे थाको भूठ मूठ क्यों खेमा को गाली दिया करती है ?"

वह भवें चढ़ाकर विस्मित भावसे बोलीं, "हाँ, क्या सच बात है ? चुड़ैल की चोटी पकड़कर घरसे निकाल दूँगी। देखो तो सही, तुम्हारा सबेरे सबेरे का सारा जमा जमाया रंग मिट्टी करदिया। खेमा भी बड़ी समझदार है, जानती है मालिकिन महमान के साथ बातचीत करती होंगी, एकदम वहीं जाकर उपस्थित होगई—मानों लज्जा शर्म सब हड़प करगई। जाओ छोटी रानी तुम घर गृहस्थी के झगड़ों में मत पड़ो, तुम बाहर जाओ, मैं किसी न किसी तरह सुलझा लूँगी।"

मनुष्य का मन बड़ा विचित्र है। क्षणभर में काया-पलट हो जाता है ! अभी सवेरे घरका काम-काज फेंककर किस भाव से सन्दीप से आलाप आलोचना करने बैठक में गई थी ! अब जो लौटकर आई तो घर गृहस्थी के अभ्यस्त आदर्श के सामने वही बात ऐसी अनोखी और अनुचित मालम होने लगी, कि मुझसे कुछ उत्तर न बनपड़ा और सीधी अपने कमरे में चली गई।

मैं खूब जानती हूँ मंझली रानी ने यह झगड़ा जान बूझकर कराया था। पर इस बात पर कुछ कहने का मेरा मुंह नहीं रहा था। ननकू दरबान के निकलने पर जो उस दिन मैंने स्वामी के साथ ज़िद की थी उसी पर अन्त तक दृढ़ न रहसकी। धीरे धीरे अपनी उत्तेजना पर आप मुझे लज्जा होने लगी ! और फिर मंझली रानी का मेरे स्वामी से कहना, "भैया, अपराध मेरा ही है। हमतो पुरानी चाल के लोग हैं, हमें तुम्हारे

उन सन्दीपबाबू का चालचलन किसी तरह भला नहीं लगता, इसी कारण मैंने ज़रा दरबान से कहदिया था। इसमें छोटी रानी का कुछ अपमान है यह कभी ध्यान में भी नहीं आया था, बल्कि मैंने तो इससे बिल्कुल उलटा सोचा था। पर क्या करूँ मैं हूँ ही ऐसी मूर्ख !"

देश-सेवा और पूजा की दृष्टि से जो बात ऐसी उज्ज्वल दिखाई पड़ी थी उसी को जब इस प्रकार नीचे की ओर से देखने का मौका मिला तो पहिले तो क्रोध हुआ; फिर मन में ग्लानि होने लगी।

आज सोने के कमरे का द्वार बन्द करके खिड़की के पास बैठकर सोचने लगी कि सबके साथ स्वर मिलाकर रहने से जीवन कितना सरल होसकता है ! वह देखो मँझली रानी निश्चिन्त मन से बरामदे में बैठी सुपारी काट रही हैं। इस सरल भाव से ऐसा सहज काम मेरे लिए कैसा कठिन होगया है। रोज़ अपने मन से पूछती हूँ, इसका अन्त कहाँ है ? सचेत होकर उठने पर यह सब बातें क्या ज्वरपीड़ित रोगी के प्रलाप के समान भूल जाऊँगी, या हाथ पैर तोड़कर सर्वनाश के सागर में ऐसी डूबूँगी कि फिर इस जीवन में उद्धार ही न होगा ? अपने सौभाग्य को सरल भाव से ग्रहण क्यों न कर सकी ? जीवन का क्यों व्यर्थ नाश कर डाला ?

यही हमारा शयन-घर है। इसी में मैं नौ बरस पहले नव-वधू होकर आई थी। आज इस कमरे की दीवारें, छत, धरती मुँह खोले आँखें फाड़े मेरी ओर देख रहे हैं। एम० ए० की परीक्षा देकर जब मेरे स्वामी घर आये थे तो फूलों

का यह पौदा अपने साथ लेते आये थे। यह पौदा भारत-सागर के किसी द्वीप का है और इसके लिए उन्होंने बहुत दाम खर्च किये थे। इसमें पत्ते तो बहुत कम हैं पर एक समय जो लम्बा सा फूलों का गुच्छा इसमें से निकला था वह मानों सौन्दर्य का प्याला था, मानों इन्द्रधनु ने उन पत्तों की गोद में जन्म लिया था।

हम दोनों ने निश्चय कर के इसे अपने शयन-घर की खिड़की के पास टांग दिया था, फूल वहीं एक बार खिला था, फिर नहीं खिला, आशा अब भी है शायद फिर एक बार खिले। आश्चर्य यही है कि अब भी अभ्यासवश इसमें रोज़ जल देदेती हूँ और इसके पत्ते अबतक हरे हैं।

आज चार बरस हुए मैंने अपने स्वामी की एक तसवीर हाथीदाँत के चौकठे में लगाकर सामने ताक में रक्खी थी। आज दैवात् भी उसकी ओर नज़र जा पड़ती है तो आँखें नीची करनी पड़ती हैं। कुछ दिन पहले तक रोज़ स्नान के बाद फूल तोड़कर उस तसवीर के सामने रखकर प्रणाम किया करती थी। कई बार उसी बात पर स्वामी के साथ मेरी बहस हो चुकी है।

उन्होंने एक दिन कहा था, "तुम जो मेरा इतना आदर करके फूलों से मेरी पूजा करती हो इससे मुझे बड़ी लज्जा होती है।"

मैंने पूछा, "तुम्हें लज्जा क्यों होती है?"

वह बोले, "केवल लज्जा नहीं, ईर्षा भी होती है।"

मैंने कहा, "लो और सुनो। ईर्षा तुम्हें किससे होती है?"

वह बोले, " इसी तसवीर से। मैं सामान्य साधारण पुरुष हूँ, मुझसे तुम सन्तुष्ट नहीं होतीं, तुम किसी ऐसे को चाहती हो जो असाधारण हो और तुम्हारी बुद्धि को अभिभूत करदे, इसीलिए तुम मेरा दूसरा रूप गढ़कर अपना मन बहलाती हो। "

मैंने कहा, " मुझे तुम्हारी यह बातें सुनकर बड़ा गुस्सा आता है। "

वह बोले, " मुझपर गुस्सा करनेसे क्या होगा, गुस्सा अपने भाग्य पर करो। तुमने मुझे स्वयंवरसभा में पसन्द कर के थोड़े ही लिया है, मैं जैसा कुछ भी हूँ तुम्हें आँखें बन्द कर के लेना पड़ा। इसीलिए मुझे देवत्व देकर यथाशक्ति संशोधन करना चाहती हो। दमयन्ती का स्वयम्वर हुआ था, इसीलिए वह देवताओं को छोड़कर मनुष्य को पसन्दकर सकी, तुम्हारा स्वयंवर नहीं हुआ, इसीलिए तुम रोज़ मनुष्य को छोड़ कर देवता के गले में माला पहनाती हो। "

उस दिन इस बात पर मुझे इतना गुस्सा आया था कि मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। उसी दिन को याद करके आज उस तसवीर की ओर आँख नहीं उठा सकती।

आज मेरे गहने के बक्स में और एक तस्वीर है, उस दिन बैठक की झाड़पोंछ कराते समय उस चौकटे को उठा कर लेआई थी—वही चौकटा जिसमें मेरे स्वामी की तस्वीर के साथ सन्दीप की तस्वीर लगी थी। उस तस्वीर को मैं पूजा नहीं करती, वह मेरे हीरे मोती के बक्स में ढकी रक्खी है। वह बन्द पड़ी है। इसीलिए मानों हृदय को और भी आकर्षित करती है। कमरे के सब दरवाजे बन्द करके उसे

कभी कभी निकाल कर देखती हूँ। रात को उसे लैम्प के पास रखकर घण्टों बैठी देखा करती हूँ। इसके बाद रोज़ सोचती हूँ उसे लैम्प की बत्ती से जलाकर राख करडालूं, पर रोज़ ही लम्बी साँस लेकर उसे धीरे धीरे अपने गहने के बक्स में बन्द करके रखदेती हूँ। किन्तु श्रो अभागी, ये हीरे मोती तुझे किसने दिये थे ? उनमें से हर एक में कितना आदर, कितना प्रेम भरा है ! आज तुझे देखकर इन्हें अवश्य मुंह छिपाने की इच्छा हो रही है। इससे तो मैं मर ही जाती !

सन्दीप की आत्म-कथा।

मेरे मन में यह प्रश्न कई दिन से उठरहा है कि विमला के लिए मैंने अपना जीवन क्यों जंजाल में डाल दिया। मेरा जीवन न हुआ नदी में पड़ा केले का वृक्ष हो गया कि जहाँ तहाँ अटक-अटक कर बह रहा है।

विमला मेरी कामना की अभीष्ट हो गई है, इस बात पर मैं ज़रा भी लज्जित नहीं हूँ। मैं स्पष्ट देखरहा हूँ वह मुझे कितना चाहती है। इसीलिए मेरा उस पर पूर्ण अधिकार है। फल वृक्ष की टहनी में लटक रहा है, उस पर क्या सदैव उसी टहनी का अधिकार रहेगा ? उसका जितना रस, जितनी मिठास है यह सब मेरे लिए है — मेरे फैले हुए हाथों

में गिरपड़ना हो उसकी सार्थकता है — यही उसका धर्म है, यही नीति है। मैं उसे अवश्य तोड़ूंगा, उसे कदापि व्यर्थ न होने दूँगा।

पर मुझे चिन्ता यही है कि मैं बन्धन में क्यों फँस गया। जान पड़ता है विमला मेरे जीवन का अंश बनी जाती है। मैं पृथ्वी पर कुछ करने आया हूँ, लोगों के मन प्रेरित करने आया हूँ, जनता को उकसाने आया हूँ—यहीं जनता की भीड़ मेरा युद्ध का घोड़ा है, मेरा आसन उसकी पीठ पर है, उसकी लगाम मेरे हाथ में है। उसे अपने लक्ष्य की भी ख़बर नहीं, यह भी मैं ही जानता हूँ, उसे केवल काँटों और कीचड़ से काम है, उसे विचार का अवसर न दूंगा, केवल हाँके जाऊँगा।

मेरा वही घोड़ा आज द्वार पर खड़ा अस्थिर हो रहा है। पैरों से धरती खोदे डालता है, उसकी हिनहिनाहट से आकाश फटा जाता है, पर मैं कहाँ हूँ? और क्या कर रहा हूं? इस प्रकार बड़ा क्यों समय नष्ट कररहा हूँ? उस ओर न जाने कितने शुभ अवसर निकलगये।

मैं सोचता था, मैं तो आँधीके समान हूँ, मार्ग में जो फल तोड़कर गिराऊँगा, वे मेरा प्रवाह कैसे रोक सकेंगे? पर इस बार जो मैं फूल के चारों ओर चक्कर लगा रहा हूँ यह तो भूमर का काम है, आँधी का काम नहीं है।

तभी तो कहता हूँ कि कल्पना की सहायता से मनुष्य अपने आपको जिस रंग में रंग लेता है वह रंग केवल बाहरी होता है, भीतर से मनुष्य वह का वही रहता है। यदि कोई अन्तर्यामी मेरा जीवन-वृत्तान्त लिखता तो स्पष्ट

मालूम हो जाता कि मुझमें और उस गँवार पंच में ही नहीं बल्कि मुझमें और निखिल में भी अधिक अन्तर नहीं है। कल मैं अपनी आत्मकहानी के पुराने पृष्ठ उलटरहा था। देखा कि जिस समय बी० ए० पास करचुका था मेरा मस्तिष्क दर्शनशास्त्र के ज़ोर से फटा जाता था। तभी मैंने प्रण किया था कि अपने या और किसी के रचे हुए किसी माया-जाल को अपने जीवन में स्थान न दूंगा, अपने जीवन को नितान्त वास्तव के आधार पर उठाऊँगा। पर उसके बाद से आज तक सारी जीवनकहानी से क्या स्पष्ट होता है? वह गठी हुई बुनावट कहाँ है? यह तो सारा विस्तार जाल के समान है, सूत के तार तो बराबर चल रहे हैं पर जितने तार हैं उनसे भी अधिक छेद दिखाई पड़ते हैं। उन छेदों के साथ बहुत लड़ाई की पर अबतक उन्हें भर न सका। कुछ दिन अपनी सफलता पर निश्चिन्त हो खूब ज़ोर में चलता रहा, आज देखता हूँ एक और बड़ा सा छेद सामने है।

आज देखता हूँ मन में कभी कभी काँटा सा चुभता है। जिस चीज़ की कामना हो उसे सामने आने पर कभी न छोड़ो—यह स्पष्ट बात और संक्षिप्त मार्ग है। इस मार्ग पर जो दृढ़ होकर चलसकते हैं वही सिद्धि प्राप्त करते हैं। मेरा सदा इस बातपर विश्वास रहा है। पर इन्द्रदेव इस तपस्या को सहज में पूरा नहीं होने देते। कहीं न कहीं से सहानुभूति की अप्सरा को भेजकर साधक की दृष्टि को अस्पष्ट करदेते हैं।

मैं देख रहा हूँ विमला जाल में फँसी हिरनी के समान

छटपटा रही है, उसकी बड़ी बड़ी आँखों में कितना भय, कितनी करुणा भरी है, अपना बन्धन तोड़ने के लिए वह कैसा ज़ोर लगा रही है—शिकारी तो यही देख कर प्रसन्न होता है। प्रसन्न मैं भी हूँ, पर दुखित भी हूँ। केवल इसी लिए फंदा खींचने में देर होगई है।

मैं जानता हूँ कई बार ऐसा अवसर आचुका है कि मैं झपट कर विमला का हाथ पकड़ उसे खींच कर अपने हृदय से लगा लेता, और यह कुछ भी न बोलती, पर समय को जानबूझ कर टाल दिया—निःसङ्कोच बल का प्रयोग कर "निश्चितप्राय" को क्षण भर में "निश्चित" न होने दिया। इससे स्पष्ट समझ गया कि इतने दिन से जो बाधाएँ मेरी प्रकृति में छिपी पड़ी थीं आज मार्ग रोके खड़ी हैं।

रावण, जिसे मैं रामायण का प्रधान नायक समझता हूँ, इसी प्रकार मरा था। उसने सीता को अपने अन्तःपुर में न लाकर अशोक वन में रक्खा था—इतने बड़े वीर के हृदय में यह जो एक कच्चा सङ्कोच बाक़ी था उसी के कारण सारा लङ्काकांड व्यर्थ होगया। यह सङ्कोच न रहता तो सीता अपना सतीत्व छोड़ कर रावण की पूजा करती। इसी सङ्कोच के कारण जहाँ विभीषण को मार डालना उचित था, वहाँ रावण ने सदा उसपर दया की, अन्त यह हुआ कि प्राण देने पड़े।

जीवन की यही बड़ी शोकजनक समस्या है। यह पहले तो छोटे से रूप में हृदय के किसी कोने में छिपी पड़ी रहती है, किन्तु पीछे बढ़कर एकदम सर्वनाश कर डालती है। मनुष्य अपने को जैसा समझता है, वास्तव में वैसा

नहीं है, इसीलिए सारी बुरी घटनाएँ घटती हैं।

रही निखिल की बात। वह कैसा ही अद्भुत सही उस की बातों पर कितना ही हँसूँ, पर यह किसी तरह अस्वीकार नहीं कर सकता कि वह मेरा मित्र है। पहले उसकी बातों पर मैंने कभी अधिक विचार नहीं किया, पर अब कुछ दिन से मुझे उसके सामने लज्जा होने लगी है, कष्ट भी होता है। इसीलिए आजकल निखिल से दूर रहना चाहता हूँ, किसी तरह सामना न हो तो ही अच्छा है।

यही सब दुर्बलता के लक्षण हैं। अपराध के भूत पर विश्वास करते ही वह वास्तव रूप में आ उपस्थित होता है—फिर कितना ही अविश्वास करो वह सिर पर चढ़ ही बैठता है। मैं निखिल को निःसङ्कोच होकर यही बताना चाहता हूँ कि इन सब बातों को अच्छी तरह वास्तविक रूप में देखना चाहिए। सत्य और वास्तव से सच्चे मित्रों के मन में विकार आना उचित नहीं।

किन्तु यह अस्वीकार करना कठिन है कि इसी विचार ने मुझे दुर्बल कर दिया है। मेरी इस दुर्बलता पर विमला मुग्ध नहीं हुई—मेरे निःसङ्कोच पौरुष की आग में ही उस पतिङ्गनी ने अपने पर झुलस लिए हैं। सङ्कोच जब उसके प्रकाश को धुंधला कर देता है उसी समय विमला के मन में भी द्विधा पैदा होती है। पर जब उसका मन घृणा से भर उठता है उस समय भी अपनी स्वयंवर माला मेरे गले से नहीं निकाल सकती, केवल आँखें मूंदना चाहती है।

किन्तु हम दोनों के लिए लौटने का मार्ग बन्द हो

गया है। हम दोनों एक दूसरे को नष्ट करेंगे, घृणा करेंगे, पर छोड़ नहीं सकते।

निखिलेश की आत्म-कथा।

एक बात जो पहले स्पष्ट नहीं थी, अब अच्छी तरह समझ में आने लगी। स्त्री-पुरुष पारस्परिक के प्रेम की अग्नि को हम सब ने फूंक मार मार कर इतना भड़का दिया है कि आज समस्त मनुष्यत्व की दुहाई देकर भी हम उसे बस में नहीं लासकते। घर के प्रदीप को घर की अग्नि बना बैठे हैं। अब उसे बढ़ने के लिए और स्थान देना उचित नहीं है, अब उसका दमन करने का दिन आगया है। स्त्री पुरुष की आपस की प्रीति प्रकृति के हाथों आदर सत्कार पाते पाते देवी का रूप धारण कर बैठी है। पर यदि उसके सामने पुरुष के पौरुष को बलि देकर उसे रक्तपान कराना ही पूजा है तो मैं ऐसी पूजा पर विश्वास नहीं रखता। उसने जो बनाव-सिङ्गार, लज्जा-सङ्कोच, हाव-भाव, हँसी-रोने का इन्द्रजाल तैयार किया है उसे तोड़ना ही पड़ेगा।

आज सबेरे सोने के कमरेवाली आलमारी में से एक पुस्तक लेने गया था। बहुत समय से कभी दिन के समय इस कमरे में नहीं गया था। आज जो दिन के

प्रकाश में उसे देखा तो मन कैसा व्याकुल होगया! खूंटी पर बिमला की चुनी हुई साड़ी पहिनने के लिए तैयार रक्खी थी। सिङ्गारदान के ऊपर उसके बालों के काँटे, तेल, कंघी, लैवेंडर की शीशी ये सब चीज़ें रक्खी थीं, और वहीं सिन्दूर की डिबिया भी थी! मेज़ के नीचे उसका वही छोटा सा कामदार जूते का जोड़ा रक्खा था। यह जूता मैंने एक मित्र के द्वारा लखनऊ से मँगाया था। बिमला उस समय किसी तरह जूता पहनने को राज़ी नहीं थी। जूता पहन कर कमरे से बरामदे तक जाते में उसे बड़ी लज्जा मालूम होती थी। उसके बाद से बिमला ने बहुत से जूते तोड़ डाले पर इसे स्मारक के तौर पर रख छोड़ा है। मैंने उससे एक दिन हँसी में कहा था, जब मैं सोता रहता हूँ तो तुम चुपके से मेरे पैरों की धूल लेकर मेरी पूजा करती हो, मैं तुम्हारे चरणों की धूल निवारण करके आज अपने जाग्रत देवता की पूजा करूँगा। बिमला ने उत्तर दिया था, जाओ तुम ऐसी बातें मत करो, नहीं तो मैं उस जूते को कभी न पहनूंगी। यही मेरा चिर-परिचित शयनघर है। इसमें एक विशेष सुगन्ध भरी है जिसे मेरा हृदय ही जानता है। मुझे पहले ध्यान भी नहीं था कि मेरे रसपिपासु हृदय से अनेक लतायें निकल निकल कर यहाँ की सब छोटी छोटी चीज़ों पर लिपट गई हैं। अब जड़मूल कट जाने से भी आत्मा मुक्त नहीं होती, यह छोटा सा जूता तक उसे अपनी ओर खींच रहा है। देखते देखते अकस्मात् अपनी उसी तस्वीर पर नज़र आ पड़ी। उसके सामने बहुत दिन

के सूखे हुए काले काले फूल पड़े थे। पूजा में इतना विकार आजाने पर भी तस्वीर के मुख पर कुछ विकार दिखाई नहीं पड़ता। इस कमरे में ये सूखे हुए काले काले फूल ही मेरा उचित उपहार हैं। इनके अब तक यहां रहने का कारण यही है कि इनका फेंक देना भी व्यर्थ समझा गया। जो हो, सत्य को मुझे इसी नीरस काले रूप में ग्रहण करना चाहिये—कभी न कभी उस चौकठे के अन्दरवाली तस्वीर के समान बिल्कुल निर्विकार भी हो जाऊँगा।

इसी समय विमला भी अकस्मात् पीछे से आ गई। मैंने जल्दी से नज़र बचा कर आलमारी की ओर जाते हुए कहा, "Amiel's Journal (एमियल की पत्रिका) लेने आया था।" मुझे यह कैफ़ियत देने की क्या आवश्यकता थी यह मैं नहीं जानता। पर उस जगह मानों मैं अपराधी या अनधिकारी था, मानों किसी ऐसी वस्तु पर नज़र डालने आया था जो छिपी हुई थी और छिपाने योग्य थी। मैं विमला के मुख की ओर आँख न उठा सका और झटपट बाहर चला गया।

बाहर अपने कमरे में पुस्तक लिए बैठा था पर पढ़ना बिल्कुल असम्भव जान पड़ा, यही नहीं, जीवन में जो कुछ है मानों अब असाध्य हो उठा, कुछ देखने या सुनने, कहने या करने की मानों लेशमात्र भी इच्छा नहीं रही। जान पड़ता था कि सारा भविष्य उसी एक मुहूर्त में इकट्ठा होकर पत्थर के समान मेरी छाती पर आपड़ा। ठीक इसी समय पंचू एक टोकरी में बहुत से नारियल लिए

आया और मुझे प्रणाम करके सामने खड़ा होगया।

मैंने कहा, "यह क्या, पंचू, ये क्यों लाये हो ?"

पंचू मेरे पड़ोसी ज़िमींदार हरीशकुण्ड की रैयत है। मैं उसे मास्टर महाशय के द्वारा जानता हूँ। पंचू बहुत ग़रीब है और मेरी रैयत भी नहीं है, इसलिए उसके हाथ से कोई उपहार लेना मेरे लिए उचित नहीं था। मैंने सोचा, जान पड़ता है बेचारे ने निरुपाय होकर पेट भरने का यही उपाय सोचा है और कुछ बख़्शीश की अभिलाषा लेकर आया है।

मैं जेब से दो रुपये निकाल कर उसे देने लगा, पर वह हाथ जोड़ कर बोला, "नहीं हज़ूर यह मैं नहीं ले सकता।"

"यह क्या, पंचू ?"

"अब हज़ूर से क्या छिपाऊँ। एकबार बड़ी तंगी के समय जब कुछ उपाय न सूझा तो मैंने हज़ूर के सरकारी बाग़ से कुछ नारियल चुरा लिए थे, वही अब देने आया हूँ, अब बूढ़ा हुआ न जाने कब समय आजाय !"

एमियल का जर्नल पढ़ने से आज मुझे कुछ लाभ न होता पर पंचू की इस एक बात ने मानों मन का बोझ हलका करदिया। एक स्त्री के संयोग-वियोग का सुख-दुख छोड़कर इस पृथ्वी पर और भी अनेक वस्तुएँ हैं, मनुष्य का जीवन बहुत विस्तृत है, उसके बीच में खड़े होकर ही हम अपने दुखसुख का भी ठीक अन्दाज़ा कर सकते हैं।

पंचू मास्टर महाशय पर बड़ी भक्ति रखता है। वह

अपना और अपने कुटुम्ब का पेट कैसे पालता है, यह भी मैं जानता हूँ। रोज़ सबेरे उठकर एक टोकरी में पान तम्बाकू, रंगीन सूत, छोटे छोटे कंघे और आईने इत्यादि लेकर वह फेरी लगाता है, और ये चीज़ें गाँव की स्त्रियों के हाथ बेचकर कुछ धान ले आता है। इस प्रकार उसे कुछ पैसे बच रहते हैं। जिस दिन सबेरे लौट आता है, उस दिन झटपट खा पीकर बताशेवाले की दुकानपर जाकर काम करता है। इसके बाद घर आकर शंख की चूड़ियाँ तैयार करता है—इसी में कई पहर रात चली जाती है। ऐसा भारी परिश्रम करके भी उसके बाल बच्चों के लिए पेट-भर खाना नहीं जुटता। उसका नियम है कि खाने बैठते ही लोटा भर जल पीकर पेट भर लेता है और उसके भोजन का अधिकांश प्रायः सस्ता बीज भरा केला हुआ करता है।

एक बार मैंने सोचा था कि उसका कुछ महीना बाँध दूँ। पर मास्टर महाशय ने मुझसे कहा, "तुम्हारे दान से दुख तो नष्ट होने से रहा, मनुष्यत्व चाहे नष्ट हो जाय। हमारे देश में न जाने कितने पंचू हैं। आज सारे देश की छातियों में मानों दूध सूख गया है। यह ऐसी चीज़ नहीं है जिसे तुम केवल रुपया देकर बाहर से उत्पन्न करसको।"

यह वास्तव में बड़ी चिन्ता का विषय है। मैंने निश्चय किया था कि इसी समस्या के सुलझाने में अपना सर्वस्व लगा दूँगा। उसी दिन मैंने विमला से कहा था, "विमला, हम दोनों को चाहिए कि देश का दुःख निवारण करने में अपना समस्त जीवन लगादें।"

विमला ने हँसकर कहा, "तुम मेरे लिए राजपुत्र सिद्धार्थ के समान हो, पर देखो अन्त में मुझे छोड़कर न चले जाना।"

मैंने कहा, "सिद्धार्थ की तपस्या में उनकी स्त्री शामिल नहीं थी, मैं अपनी तपस्या में स्त्री को भी चाहता हूँ।"

इस प्रकार हँसी में बात उड़गई। वास्तव में विमला की गणना उन स्त्रियों में होनी चाहिए जिन्हें महिला कहते हैं। वह ग़रीब घर की लड़की है पर उसका स्वभाव रानियों का सा है। वह जानती है कि जो लोग नीची श्रेणी के हैं उनको, दुख-सुख व अच्छे बुरे की कसौटी भी नीची श्रेणी की होती है। उन्हें अभाव अवश्य रहता है पर यह अभाव उनके लिए वास्तवमें अभाव नहीं है। उनकी हीनता ही उनकी रक्षा करती है। छोटे से तालाब का जल कूप के भीतर ढंक रहता है, दुःखा काट कर उसकी सीमा बढ़ाने का उपाय करते ही तली की कीचड़ दिखाई पड़ने लगती है।

बात यह है कि विमला मेरे घर की अंश अवश्य है पर मेरी साधना की अंश नहीं।

विमला की आत्म-कथा।

सारे देश को आज जिस आवेग ने विह्वल कर रक्खा है उसी का प्रभाव एक नये रूपमें मेरे जीवन पर भी पड़ाहै। मेरे

भाग्य देवताका रथ धीरे धीरे बढ़रहा है, पहियों की घड़घड़ाहट रातदिन मेरे हृदय में गूंजा करती है। मेरा विचार था कि यदि मेरी अवस्था में कोई अनहोनी घटना उपस्थित हो जायगी तो उसका दायित्व मेरे ऊपर न होगा। जिस क्षेत्रमें पाप-पुण्य विचार-विवेक दया-माया का ध्यान रखना पड़ता है वहांसे मैं बहुत दूर हटगई थी। मैंने तो कभी इस बात की कामना या आशा नहीं की फिर में क्यों इसकी उत्तरदाता समझी जाऊं? इतने दिन तक जिस देवता की एक मन से पूजा करती आई थी, वरदान के समय उसके स्थान में एक और देवता आ उपस्थित हुआ। इसी कारण जिस प्रकार सारा देश सचेत हो उठा है और भविष्य की ओर दृष्टि जमा कर "बन्देमातरम्" पुकार रहा है उसी प्रकार मेरा समस्त आत्मा एक अपूर्व, अनोखा, अनजान और अपरिचित मनुष्य के प्रति "वन्दे" शब्द की ध्वनि से गूंज रहा है।

मैं कभी कभी रात के समय चुपके से उठकर ऊपर खुली हुई छत पर जा खड़ी होती हूं। हमारे बाग से लगे हुए अधपके धान के खेत हैं, उनसे आगे गांव के घने वृक्षों के बीच में नदी का जल दिखाई पड़ता है — सारा दृश्य मानों विराट रात्रि के गर्भ में किसी भावी सृष्टि के भ्रूण के समान निद्रित पड़ा रहता है, ऐसे समय मुझे जान पड़ता है मानों देश भी मेरे ही समान एक युवती है, अब तक अपने घर में निश्चिन्त बैठी थी, आज अपूर्व और अज्ञात भविष्य का आह्वान सुनकर निकल आई है — उसे सोच विचार का भी समय नहीं मिला, सीधी अन्धकार में जारही है, दिया बत्ती लेने तक की

सुध न रही। मैं जानती हूँ इस सुप्त रात्रि में उसके हृदय में कैसी धुकड़ पुकड़ हो रही है। मैं जानती हूँ इस नई वंशी की आवाज़ सुनकर उसका मन खिचा जा रहा है, वह समझती है कि जिस वस्तु की खोज थी वह मिल गई, जहां जाना था वहाँ पहुँच गई। मानों अब आँख मूँदकर चलने में भी भय नहीं है। पर यह सब तो माता का कर्त्तव्य नहीं है। माँ तो भूखी सन्तान को दूध पिलाती है, अन्धेरे में दिया जलाती है, घर का काम-धंधा करती है। पर इस युवती को तो इन बातों का कुछ भी ध्यान नहीं है। वह आज अभिसारिका बनी हुई है क्योंकि हमारा देश तो वैष्णव कविता का देश है। उसे घरबार या काम-काज की कुछ भी सुध नहीं है। उसे केवल अन्तहीन आवेग से मतलब है, उसी आवेग के बल चल रही है, पर मार्ग कौनसा है और कहाँ को जा रहा है, इसकी उसे कुछ भी खबर नहीं है। मैं भी वैसी ही अभिसारिका हूँ, घरबार खो बैठी हूँ और मार्ग की कुछ ख़बर नहीं है। उपाय और उद्देश दोनों मेरे निकट छायामात्र होगये हैं, केवल आवेग और गमन रह गया है। अरी निशाचरी याद रख जब सवेरा होगा तो लौटने को वटिया का चिन्ह तक तुझे न मिलेगा। किन्तु लौटना कैसा! मुझे तो मरना है! जिस काले अन्धकार की ओर से वंशी की आवाज़ सुनाई पड़ी थी यदि उसी में मेरा सर्वनाश हो जाय तो चिन्ता की कौन सी बात है। सब नष्ट हो जायगा? निशान तक न रहेगा, कालिमा के साथ मेरा कलंक भी मिलकर एक हो जायगा, इसके

पश्चात् कैसा अच्छा और कैसा बुरा, किसको हँसी और किसका रोना !

उस समय बंगला देश में समय के एंजिन में पूरी भाप भरी हुई थी। जो घटनाएँ कठिन दिखाई पड़ती थीं उनका आज भकभक करके विकाश होरहा था। देश के जिस कोने में हम पड़े थे उसको भी अब वंचित रहना कठिन दिखाई पड़ने लगा। अब तक हमारे ज़िले में और भागों की अपेक्षा आन्दोलन का ज़ोर बहुत कम था। इसका प्रधान कारण यह था कि मेरे स्वामी किसी पर दबाव डालना नहीं चाहते थे। उनकी राय थी कि देश के निमित्त जो त्याग करते हैं वही साधक हैं, पर जो उपद्रव करते हैं वे शत्रु हैं, वे मानों स्वाधीनता की जड़ काटकर पत्तों में जल देना चाहते हैं।

पर सन्दीपबाबू जब से यहाँ आये उनके चेलों ने हर ओर आन्दोलन करना शुरू किया, सभाएँ होने लगीं, वक्ताओं की धूम मच गई और उत्तेजना की लहरें वेग के साथ उठने लगीं। सन्दीप की सरपरस्ती में स्थानीय युवकों का एक दल बनगया। उनमें अनेक ऐसे थे जो गाँव के कलंक समझे जाते थे। उत्साह की ज्वाला से उनका चरित्र भी उज्वल हो उठा। यह भलीभाँति स्पष्ट हो गया कि देश में जब आनन्द की हवा चलती है तो मनुष्य की विकृति आप ही आप दूर हो जाती है। जब देश में आनन्द नहीं होता तो देश की सन्तान के लिए भी सरल, सबल और स्वस्थ होना बड़ा कठिन हो जाता है।

इसी समय सब का ध्यान मेरे स्वामी की ओर भी

आकर्षित हुआ। उनके इलाक़े से अभी तक विलायती नमक विलायती चीनी और विलायती कपड़े बहिष्कृत नहीं हुए थे। रियासत के नौकर-चाकरों तक को इस बात पर लज्जा होने लगी। कुछ पहले स्वयं उन्होंने स्वदेशी चीज़ों का प्रयोग बढ़ाने की चेष्टा की थी तो बूढ़े, बच्चे—सभी ने उनकी हँसी उड़ाई थी। विदेशी के बहिष्कार से पहले हम ही सब स्वदेशी की अवज्ञा करते थे। मेरे स्वामी अब भी देशी चाक़ू से देशी पेंसिल बनाते हैं, सरकंडे के क़लम से लिखते हैं; पीतल के लोटे से जल पीते हैं और रात को शमादान में देशी बत्ती जलाकर काम करते हैं—किन्तु उनका यह अत्यन्त सादा स्वदेशीपन हमें सदा नीरस जान पड़ा। उनकी बैठक की चीज़ों की सादगी और गँवारपन पर मुझे सदा लज्जा होती थी, विशेषतः जब मेजिस्ट्रेट या और कोई साहब उनसे मिलने के लिए आते थे। मेरे स्वामी हँसकर कहा करते, "ऐसी छोटी छोटी बातों पर तुम विचलित क्यों होती हो।"

मैं उत्तर देती, "पर वे तो हमें असभ्य समझने लगेंगे।"

वह कहते, "तो मैं भी समझूँगा कि उनकी सभ्यता चमड़े के पालिश ही तक है भीतर की लाल रक्त धारा तक नहीं पहुँचती।"

उन्होंने अपने लिखने पढ़ने की मेज़ के लिए एक साधारण पीतल के ग्लास को फूलदान बना रक्खा था। मैं जब किसी साहब के आने की ख़बर सुनती, उस ग्लास को चुपके से उठा लेती और एक विलायती रंगीन काँच के फूलदान में फूल सजाकर रखदेती।

पीछे मेरे स्वामी कहते, "देखो विमल, प्रकृति के फूल

जैसे सादे और भोले भाले हैं वैसा ही यह पीतल का ग्लास भी है। पर तुम्हारी यह विलायती फूलदानी तो ऐसी भड़कीली है कि उसमें वृक्ष के फूल न रखकर काग़ज़ के फूल रखना ही उचित है।"

उस समय इस विषय में उनका समर्थन करनेवाला मँझली रानी के सिवा और कोई नहीं था। एक बार वह हाँफती हुई आकर बोलीं, "भैया सुना है आजकल देशी सावन चला है। मेरे तो अब सावुन मलने के दिन गये, तोभी उसमें चर्बी न हो तो एक बार देखूँ कैसा है।"

मेरे स्वामी इससे बड़े प्रसन्न होते थे। रोज़ नये नये ढंग के देशी सावन आने लगे। सावन क्या थे अच्छे ख़ासे पीली मिट्टी के डले थे! मँझली रानी को भी क्या मैं देखती नहीं थी? स्नान के लिए वही पुराना विलायती साबुन, देशी सावन केवल कपड़े धोने के काम आता था।

और एक दिन आकर बोलीं, "भैया, सुना है देशी क़लम चले हैं, वह तो मुझे भी मंगा देना।"

"भैया" के उत्साह का अन्त नहीं। क़लम नाम की जितनी दाँतन की लकड़ियाँ बाज़ार में मिलसकीं सभी एक एक मँझली रानी के कमरे में भेज दी गईं। इसमें उनका हर्ज ही क्या था, क्योंकि लिखने पढ़ने का उन्हें काम ही नहीं पड़ता था। एक धोबी का हिसाब रखने का काम था सो पेंड़ की टहनी से भी चल सकता था। पर इसके लिए भी वही पुराना हाथीदाँत का क़लम सन्दूकची से निकाला जाता था।

असली बात यह थी कि मैं जो अपने स्वामी का सम-

थॅन नहीं करती थी उसी का उत्तर देने के लिए मँझली रानी यह स्वाँग रचा करती थीं। स्वामी को असली बात समझाने का कोई उपाय नहीं था। ज़रा बात छेड़ते ही वह ऐसे गम्भीर हो जाते कि मुझे चुप होते ही बन पड़ती। ऐसे लोगों को धोखे से बचाना आप धोखे में पड़ना है।

मँझली रानी को सीने पिरोने का शौक़ है। एक बार जब सिलाई कर रही थीं, तो मैंने उनसे कहा, "यह क्या बात है? देवर के सामने तो स्वदेशी कैंची का नाम आते ही तुम्हारे मुँह से राल टपक पड़ती है और सिलाई करते समय वही विलायती कैंची निकाल बैठती हो।"

मँझली रानी बोलीं, "इस में दोष क्या है? उसे इसी बात से कितना आनन्द होता है। मेरा उसका बचपन से साथ रहा है, मैं तो तेरी तरह बिना कारण उसे कष्ट नहीं देसकती। उस बेचारे का और कोई दिल-बहलाव भी तो नहीं है, एक यह देशी चीज़ों का खेल है, और दूसरी तू और तेरे ही पीछे उसका सर्वनाश होगा।"

मैंने कहा, "जो हो, कहना कुछ और करना कुछ, यह तो मुझे अच्छा नहीं लगता।"

मँझली रानी हँस पड़ीं और कहने लगीं, "ओहो सरला, तू तो जान पड़ता है बड़ी सीधी सादी है, बिलकुल गुरुमहाराय के बेत के समान! स्त्रियों को इतना कड़ा होना नहीं शोभा देता, ज़रा नरम होना ही ठीक है, जो मुड़ भी जाय तो कुछ हानि न हो।"

मँझली रानी की यह बात कभी न भूलूँगी, "और

दूसरी तू और तेरे हो पीछे उसका सर्वनाश होगा।"

आज मैं यही सोचती हूँ कि पुरुषों का दिल-बहलाव यदि स्त्री न हो तो ही अच्छा है।

शुकसायर का हाट इस ज़िले में सब से बड़ा हाट है। यहाँ जो एक तालाब है उसके इस पार स्थाई बाज़ार है और उस पार हर शनिवार को पैंठ लगती है। चौमासे में यहाँ विशेषतः बड़ी भीड़भाड़ रहती है। तालाब का पानी नदी से जा मिलता है। और सूती और ऊनी कपड़ा नावों में आसानी से आ सकता है।

इस समय विदेशी नून, चीनी और विदेशी कपड़े के विरुद्ध घोर आन्दोलन होरहा था। मुझसे सन्दीपबाबू ने कहा, "इतना बड़ा बाज़ार हमारे हाथ में है, इसे बिलकुल स्वदेशी करके छोड़ेंगे, इस इलाके से विदेशी का कलंक एकदम मिटजाना चाहिये।"

मैं भी कमर बांध कर बोली, "अवश्य ऐसा ही होगा, इसमें सन्देह क्या है?"

सन्दीप ने कहा, "इसी बात पर मेरा निखिल के साथ कितना तर्कवितर्क हुआ। पर वह किसी तरह नहीं मानता। वह कहता है व्याख्यान चाहे जितने दो पर ज़बरदस्ती दबाव न डालने दूँगा।"

मैंने अहंकार के साथ कहा, "अच्छा यह मैं देख लूँगी।"

मैं जानती हूँ उन्हें मुझसे कितना गहरा प्रेम है। उस दिन मेरी बुद्धि यदि स्थिर होती तो ऐसे समय उस प्रेम के बल पर उनसे कुछ कहते हुए लज्जा के मारे

मेरा सिर कट जाता । पर मुझे तो सन्दीप को अपनी शक्ति दिखानी थी ! उनके निकट मैं शक्ति-रूपिणी थी ! वह अपनी प्रबल व्याख्या के द्वारा मुझे बार बार समझा चुके थे कि परमाशक्ति प्रत्येक मनुष्य में विशेष रूप धारण करती है । वे कहते थे, हम वैष्णव तत्त्व को आह्लादिनी शक्ति को प्रत्यक्ष देखने के लिए इतने व्याकुल होकर घूम रहे हैं, जब कहीं देख पाते हैं तो भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि हृदय में जो त्रिभंगमुरारि बंशी बजा रहे हैं उस का अर्थ क्या है ? कभी कभी मुझे यह गीत गाकर सुनाते—

जखन देखा दाओनि राधा तखन बेजेछिल बाँशि ।
एखन चोखे चोखे चेये सुर जे आमार गेल भासि' ।
तखन नाना तानेर छले
डाक फिरेछे जले स्थले,
एखन आमार सकल कांदा राधार रूपे उठ्ल हासि' ।

[जब तक तुम सामने नहीं आईं मेरी बंशी बजती रही । अब तुम से आँख से आँख मिलते ही मेरा सुर बह गया, अर्थात् बंशी बंद हो गई । उस समय नाना सुरों के भेष में मैं जल और स्थल पर बुलाता फिर रहा था । अब मेरा सारा विलाप तुम्हारे रूप को देख कर हँस उठा है ।]

यह सब सुनते सुनते मैं भूल गई थी कि मैं विमला हूँ । मैं मानों शक्तितत्त्व हूँ, रसतत्त्व हूँ, मेरे लिए कोई बन्धन नहीं है, मेरे लिए सब कुछ सम्भव है, मैंने जिस वस्तु को स्पर्श किया है उसकी मानों नई सृष्टि हो गई है, मैंने अपने लिए मानों जगत की भी नई सृष्टि कर ली है ।

मेरे हृदय की पारसमणि के स्पर्श से पहले शरद् के आकाश में इतना सुवर्ण नहीं था। और उस वीर को भी मैंने समय समय पर नया उत्साह प्रदान किया है, उसी साधक वीर को, उसी अपने भक्त को। उसी ज्ञान में उज्वल, तेज में उद्दीप्त, भावरस में अभिषिक्त अपूर्व प्रतिभा को;—मैं तो स्पष्ट अनुभव कर रही हूँ कि उसके हृदय में मैंने क्षण क्षण पर नई जान डाल दी है, वह मानों मेरी ही सृष्टि है। उस दिन सन्दीपबाबू बहुत अनुरोध करके एक नवयुवक को मेरे पास लाये थे। वह उनके विशेष भक्तों में है और उसका नाम अमूल्य-चरण है। तुरन्त ही मैंने देखा कि उसकी आँखों में एक नई दीप्ति जल उठी। मैं समझ गई उसने आद्या शक्ति को देख लिया और उसके रक्त में मेरी सृष्टि का कार्य आरम्भ हो गया। अगले दिन सन्दीप ने आकर मुझसे कहा, "तुम्हारा मन्त्र कैसा विचित्र है! उस नवयुवक की तो एकदम कायापलट होगई, मानों जीवन की शिखा अकस्मात् जल उठी! तुम्हारी यह अग्नि घर के भीतर कैसे छिपी रह सकती है? एक एक करके सभी आवेंगे। एक एक करके प्रदीप जलते जलते एक दिन देश में दिवाली के उत्सव की धूम मचेगी!"

अपनो इसी महिमा के नशे में उन्मत्त होकर मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि उसको वरदान दूँगी, और यह भी विश्वास था कि मैं जो चाहूँगी उस में कोई बाधा न डाल सकेगा।

उस दिन जब सन्दीप के पास से लौट कर आई तो फिर से बाल खोलकर एक नये ढंग से बाँधे। सिर के

ऊपर को ओर जूड़ा बाँधने का यह ढंग मैंने मेम से सीखा था। मेरे स्वामी इसे बहुत पसन्द करते थे। वे कहा करते, "गरदन की सुन्दरता कहाँ तक पहुँच सकती है यह विधाता ने कालिदास के सामने प्रकाशित न करके मुझ जैसे अकवि को दिखाया—कवि तो शायद इसे पद्म की मृणाल बताते, पर मुझे तो यह मशाल दिखाई पड़ती है जिसके किनारे पर तुम्हारे काले जूड़े की काली शिखा जल कर ऊपर को उठ रही है।" यह कहकर वह मेरी केश-रहित गरदन को—किन्तु हाय, अब इन सब बातों से क्या लाभ है?

इसके बाद मैंने उन्हें बुला भेजा। पहले मैं झूठ-सच सैकड़ों बहाने गढ़कर उन्हें बुला लिया करती थी—कुछ दिन से बुलाने का उपलक्ष्य हो बन्द हो गया, गढ़ने को शक्ति भी नहीं रही।

निखिलेश की आत्म-कथा।

पंचू की माँ ज्वर में घुलघुलकर चल बसी। पंचू को प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। बिरादरी ने हिसाब लगा रक्खा है कि साढ़े तेइस रुपये खर्च होंगे।

मैं रुष्ट होकर बोला, "प्रायश्चित्त नहीं किया तो क्या। तुझे किसका डर है?"

वह थकी माँदी गौ के समान डबडबायी आँखें मेरी ओर उठाकर बोला, "लड़की का ब्याह भी तो करना है और

फिर बहू की गति भी होनी चाहिये।"

मैंने कहा, "यदि पायही तुम्हें लगता है तो अब तक उसका प्रायश्चित्त भी तो कुछ कम नहीं हुआ है।"

उसने उत्तर दिया, "हुज़ूर कम क्या बहुत हो चुका। डाक्टर के खर्च में कुछ ज़मीन तो बिक गई और बाक़ी सब झाड़ हो गई। पर बिना ब्राह्मणों को भोजन कराये और दान-दक्षिणा दिये तो उद्धार नहीं हो सकता।"

बहस करना व्यर्थ था, मैंने मन ही मन सोचा, जो ब्राह्मण ऐसी दान-दक्षिणा स्वीकार करते हैं उनके पाप का प्रायश्चित्त न जाने कब होगा।"

पंचू पहले ही भूका मर रहा था, पर स्त्री को चिकित्सा और क्रिया-कर्म ने उसे कहीं का न छोड़ा। इसी समय कुछ सान्त्वना मिलने की आशा में उसने एक सन्यासी साधु के पास आना जाना शुरू किया। इससे यही हुआ कि उसके बाल-बच्चों के लिए जो पेट भर भोजन नहीं जुटता था इसको मन से भुलाये रखने के लिये वह एक प्रकार के नशे में रहने लगा। उसने मन को समझा लिया कि संसार कुछ नहीं है—जिस प्रकार सुख मिलना कठिन है उसी प्रकार दुख भी स्वप्नमात्र है। अन्त में वह एक दिन रातके समय चारों बच्चों को अपने फूटे घर में पड़ा छोड़ बैरागी बन कर निकल गया।

इन सब बातों की मुझे कुछ खबर नहीं थी, मेरे मन में उस समय सुरासुर समुद्र मंथन कर रहे थे। मास्टर महाशय पंचू के बच्चों को अपने घर रखकर पाल रहे हैं—यह बात भी मुझे मालूम नहीं थी। उस समय खुद उनका

लड़का अपनी माँ को लेकर रंगून चला गया था,घर में वहां अकेले थे और सारे दिन उन्हें स्कूल में रहना पड़ता था ।

इसी प्रकार जब एक महीना बीत गया तो एक दिन सबेरे सबेरे देखा कि पंचू सामने खड़ा है। उसका चैराग्य बहुत ठण्डा पड़ गया था । उसकी दोनों लड़की और बड़ा लड़का उसके निकट धरती पर बैठकर पूंछने लगे, "बाबा, तुम कहाँ गये थे ?" छोटा लड़का उसकी गोद में जा बैठा और बड़ी लड़की ने पीठ की ओर जाकर दोनों हाथ गले में डाल दिये। उस समय बस रोना ही रोना था, किसी प्रकार भी उसके आँसू नहीं थमते थे। फिर वह कहने लगा, "मास्टर साहब, मैं न तो इनका पेट भर सकता हूँ और न इन्हें, छोड़कर भाग सकता हूँ। मैंने क्या पाप किया है जो ऐसा बेबस होकर दुख भोग रहा हूँ ?"

पहले जिस व्यवसाय से उसका किसी न किसी प्रकार काम चल जाता था उसका इन दिनों में सिलसिला टूटचुका था। आते ही तो वह मास्टर साहब के यहाँ रहा, पर यह आश्रय उसे ऐसा सुखप्रद जान पड़ा कि फिर अपने घर जाने का नाम भी लेना नहीं चाहता था। अन्त में मास्टर साहब ने उससे कहा, "पंचू, तुम अब अपने घर जाकर रहो, नहीं तो वह रहा सहा नष्ट हो जायगा। मैं तुम्हें कुछ रुपये उधार दे दूँगा, तुम कपड़ा बेचना शुरू कर दो, "थोड़ा थोड़ा करके उतार देना ।"

इस बात से पंचू को पहलेपहल कुछ शोक हुआ—सोचने लगा क्या दयाधर्म दुनियाँ से बिलकुल उठ गया ?

इसके बाद जब मास्टर साहब ने रुपये देते समय उससे रुक्का लिखाया तो उसे और भी बुरा लगा—मन में सोचा होगा जब कि मुझे रुपया उतारना ही है तो इसमें उपकार क्या हुआ ? बाहरी दान देकर हृदय को ऋणी बनाना मास्टर साहब को कदाचित् पसन्द नहीं था—वह कहा करते हैं, जब मनका गौरव चला गया तो मनुष्यत्व भी नहीं रहता।

रुक्के पर रुपया लेनेके बाद पंचू फिर मास्टर साहब का उतना आदर करके उन्हें प्रणाम न कर सका, पाँव छूना भी बन्द हो गया। मास्टर साहब मन ही मन हँसा करते, वे स्वयं यही बात चाहते थे, वे कहते हैं, "मैं उसकी श्रद्धा करूँ, वह मेरी श्रद्धा करे, यही दूसरे मनुष्य के साथ मेरा उचित सम्बन्ध है, मैं अपने को भक्ति के योग्य नहीं समझता।"

पंचू, बाज़ार से कुछ धोती-साड़ी, कुछ जाड़े का कपड़ा लाकर गाँव के किसानों के घरों में फेरी लगा लगाकर बेचने लगा। उसे नक़द बहुत कम मिलता था, पर धान, सन या फ़सल की और चीज़ें जो कुछ इकट्ठा कर लाता उन्हीं से अपना ऋण चुका दिया करता। दो महीने में उसने मास्टर साहब के सूद की एक क़िस्त उतार दी और असल में से भी कुछ दे दिया। पर मास्टर साहब के ऋण की जितनी मात्रा वसूल हुई उतनी गौरव की घट गई। पंचू को निश्चय होने लगा था कि मैं जो गुरु मानकर मास्टर साहब का इतने दिन से आदर करता आया हूँ यह मेरी बड़ी भूल थी, वह तो वैसे ही लोभी हैं जैसे और लोग होते हैं।

इसी प्रकार पंचू के दिन कट रहे थे। इसी समय स्वदेशी का तूफ़ान भी बड़े ज़ोर से उठा। यह छुट्टी का समय था। हमारे गाँव में और आसपास के गावों में बहुत से नवयुवक स्कूल कालेजों से अपने अपने घर आये हुए थे। प्रायः सभी सन्दीप को दलपति बनाकर बड़े उत्साह से स्वदेशी प्रचार में लग गये। अनेक ने स्कूल कालेज भी छोड़ दिये। इनमें से बहुत से लड़कों ने मेरे हो फ्री (निःशुल्क) स्कूल से एन्ट्रेन्स पास किया था और कई मेरी सहायता से कलकत्ते में पढ़ रहे थे। ये सब एक दिन दल बाँधकर मेरे सामने आ उपस्थित हुए। कहने लगे, "हमारा जो शुकसायर का हाट है उसमें विलायती सूत का व्यापार आपको एक दम बन्द कर देना चाहिए।"

मैंने कहा, "मैं यह नहीं कर सकता।"

वे बोले, "क्यों क्या आपको बहुत घाटा रहेगा?"

मैं इस व्यंगपूर्ण बात का अर्थ समझ गया और कहने वाला था कि घाटा मेरा नहीं है बल्कि बेचारे ग़रीबों का है। पर मास्टर साहब वहाँ मौजूद थे। वह बोल उठे, "घाटा तो इनका ही है तुम्हारा थोड़े ही है, इसमें सन्देह क्या है?"

वे बोले, "पर देश के लिए... ...।"

मास्टर साहब ने उनकी बात काटकर कहा, देश से मतलब देश की मिट्टी नहीं है बल्कि देश की जनता है। इस जनता की ओर कभी पहले तुमने दृष्टि उठाकर देखा है? आज अकस्मात् बीच में कूद कर बताते हो वह नमक खाओ यह नमक मत खाओ, यह कपड़ा मत पहनो वह कपड़ा

पहनो। यह सब अत्याचार जनता क्यों सहेगी और हम क्यों सहने देंगे ?"

उन सब ने उत्तर दिया, "हम खुद भी तो देशी नमक देशी चीनी देशी कपड़े का प्रयोग करते हैं।"

वह बोले, "तुम्हारे मन में क्रोध है, तुम्हें ज़िद चढ़ी है, इसी नशे में तुम जो कुछ करते हो प्रसन्न चित्त से करते हो। तुम्हारे पास धन है तुम दो पैसे अधिक देकर देशी चीज़ें लेते हो, तुम्हारे इस आनन्द में वे तो बाधा नहीं डालते! पर उनसे तुम जो कुछ कराना चाहते हो वह केवल ज़बर्दस्ती है। उनके सामने नित्य जीवनमरण का प्रश्न उपस्थित रहता है, उन्हें पेट भर भोजन प्राप्त करने में जान लड़ा देनी पड़ती है, उनके निकट दो पैसे का कितना मूल्य है इसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। उनके साथ तुम्हारा क्या मुक़ाबला? जीवन के महल में उनका सदा पहली मंज़िल में, वास रहा है और तुम्हारा दूसरी मंज़िल में, आज तुम अपने दायित्व का भार उनके सिर पर डालना चाहते हो, अपने क्रोध की उत्तेजना उनके द्वारा शान्त करना चाहते हो। मैं तो इसे कातरता समझता हूँ।"

वे प्रायः सभी मास्टर महाशय के छात्र थे, स्पष्ट कोई कड़ी बात न कह सके, पर क्रोध के मारे उनका रक्त गरम हो उठा और चेहरे पर झलकने लगा। मेरी ओर देखकर बोले, "देखिए समस्त देश ने आज जो व्रत धारण किया है उसमें केवल आप ही बाधा डाल रहे हैं।"

मैंने कहा, "मैं देश के व्रत में बाधा डालनेवाला कौन हूँ ? बल्कि मैं तो उसका समर्थन करने के लिए प्राण तक

देने को तैयार हूँ। "

एम० ए० क्लास का एक विद्यार्थी व्यंग से हँसकर बोला, "आप क्या समर्थन कर रहे हैं ?"

मैंने उत्तर दिया, "देशी मिलों से देशी कपड़ा और देशी सूत मँगाकर मैंने बाज़ार में रखवा दिया है। यही नहीं, दूसरे इलाक़ों में भी बराबर भिजवा रहा हूँ।"

वही विद्यार्थी बोला, "पर हम तो आप के बाज़ार में जाकर देख आये हैं, आप का देशी सूत कोई भी नहीं लेता।"

मैंने कहा, "यह तो न मेरा दोष है न मेरे बाज़ार का दोष है, इसका कारण एक यही है कि समस्त देश ने तुम्हारा व्रत ग्रहण नहीं किया।"

मास्टर साहब ने कहा, "केवल यही नहीं है बल्कि जिन्होंने व्रत लिया है उन्होंने केवल दूसरों को तंग करने का ही व्रत लिया है। तुम चाहते हो जिन्होंने व्रत नहीं लिया वही इस सूत को ख़रीदें, वही कपड़ा बुनें और वही फिर उस कपड़े को ख़रीदकर पहनें। तुम्हारा उपाय क्या है ? केवल ज़बर्दस्ती और ज़मींदारी का दबाव ! अर्थात् व्रत तुम्हारा है, पर उपवास करेंगे वह लोग, और उपवास का पारण तुम्हें मिलेहीगा !"

विज्ञान के एक विद्यार्थी ने कहा, "बहुत अच्छा, पर यह तो बताइये कि उपवास का आप लोगों के भाग में कौन सा अंश आया है ?"

मास्टर साहब बोले, "बताऊँ ? सुनोगे ? देशी मिलों से जो निखिल ने सूत मँगाया है, वह निखिल ही को ख़रीदना

पड़ता है, निखिल ही वह सूत जुलाहों को देकर कपड़ा बुनवाते हैं, उन्होंने ही कपड़ा बुनने का स्कूल खोला है, और पीछे उस सूत से तैयार किये हुए अच्छे कपड़े को कमख्वाब के मोल से लेकर वहीं अपने बैठक के पर्दे बनवाते हैं, पर्दे भी कैसे कि जिनके होने से न होना अच्छा है! जब तुम्हारे व्रत का वेग धीमा पड़ेगा उस समय तुम्हीं स्वदेशी दस्तकारी के उन विचित्र नमूनों पर सब से ज़्यादा उच्च स्वर से हँसोगे और कहीं यदि इन रंगीन अंगोछों के लिए आर्डर (माँग) या आदर मिलेगा भी तो अंग्रेज़ों में।"

मैं मास्टर साहब को जानता हूँ पर इस प्रकार उन्हें उत्तेजित होते मैंने कभी नहीं देखा। मैं असली कारण समझ गया। मेरे विषय में उन्हें जो चिन्ता थी उसी ने धीरे धीरे उनका स्वाभाविक धैर्य नष्ट कर दिया था।

मेडिकल कालेज का एक विद्यार्थी बोला, "आप बड़े हैं, आप के साथ हम तर्क करना नहीं चाहते। इसलिए बस एक बात कह दीजिए, अपने हाट में आप विलायती माल का व्यापार बन्द करेंगे या नहीं?"

मैंने कहा, "नहीं मैं बन्द नहीं करूँगा क्योंकि वह माल मेरा नहीं है।"

एम० ए० के विद्यार्थी ने ज़रा हँसकर कहा, "क्योंकि इसमें आपको घाटा होगा?"

मास्टर महाशय ने कहा, "हाँ इसका घाटा है इस लिए इस विषय को वही ठीक सोच सकते हैं।"

इसके बाद सब विद्यार्थी उच्च स्वर से "बन्देमातरम्" पुकार कर बाहर चले गये।

इसके कुछ दिन पीछे मास्टर साहब पंचू को साथ लिए मेरे सामने आ उपस्थित हुए।

मैंने पूछा, "क्या मामला है?" मालूम हुआ पंचू के ज़मींदार ने उस पर सौ रुपए जुरमाना कर दिया है।

"क्यों, इसने क्या किया था?"

"पंचू बिलायती कपड़ा बेचता था। ज़मींदार के पास जाकर इसने बहुतेरे हाथ पैर जोड़े और वचन दिया कि ये जो थोड़े से कपड़े उधार कर के लाया हूँ, ये बिक जायंगे तो फिर कभी ऐसा काम न करूँगा। ज़मींदार ने कहा, नहीं यह नहीं हो सकता, हमारे सामने सब कपड़े जला डाल तब माफ़ किया जायगा। उसके मुँह से निकल गया, मुझसे तो ऐसा नहीं हो सकता, मैं ग़रीब हूँ, आप में शक्ति है आप दाम देकर ख़रीद लीजिये और जला डालिये। सुनतेही ज़मींदार की आँखें लाल होगईं। बोला, हरामज़ादा, जवाब देना सीखा है। लगाओ जूते! इस प्रकार अपमान तो हुआ ही और फिर सौ रुपये जुरमाना भी कर दिया!"

"कपड़े कहाँ गये?"

"सब जला डाले!"

"वहाँ और कौन कौन था?"

"ख़ूब भीड़ हो रही थी। वे सब के सब चिल्लाने लगे, 'बन्देमातरम्!' वहाँ सन्दीप भी थे। वह एक मुट्ठी राख उठा कर कहने लगे, भाइयो, बिलायती माल के अन्त्येष्टि संस्कार में तुम्हारे गाँव में यह पहली चिता जली है—यह राख पवित्र है—इस राख को शरीर में मल कर मांचेस्टर का जाल तोड़ डालो और नागे सन्यासी बन कर अपनी साधना पूर्ण

करने निकल खड़े हो !"

मैंने पंचू से कहा, "पंचू तुम्हें फ़ौजदारी में मामला लड़ना पड़ेगा।"

पंचू ने कहा, "गवाही कौन देगा ?"

"गवाही कौन देगा ! सन्दीप ! सन्दीप !"

सन्दीप ने अपने कमरे से बाहर निकल कर पूछा, "क्या मामला है ?"

"इस आदमी के कपड़ों की गठरी इसके ज़मींदार ने तुम्हारे सामने जलाई है, तुम गवाही नहीं दोगे ?"

सन्दीप ने हँसकर कहा, "दूँगा क्यों नहीं ? पर मैं तो इसके ज़मींदार के पक्ष का गवाह हूँ।"

मैंने कहा, "गवाही में पक्ष क्या ? गवाह तो सदा सत्य के पक्ष में होता है।"

सन्दीप ने कहा, "जो कुछ हमारे सामने होता है क्या वही सत्य है ?"

मैंने पूछा, "और सत्य क्या है ?"

सन्दीप ने कहा, "जो होना चाहिये। जो सत्य हमें गढ़कर बनाना है उस सत्य के लिए बहुत से झूठ की ज़रूरत है। प्रत्यक्ष जगत माया के आधार पर ही खड़ा किया गया है। पृथ्वी पर जो नई सृष्टि करने आये हैं वे सत्य को मानते नहीं, वे सत्य को बनाते हैं।"

"अतएव—।"

"अतएव तुम जिसे झूठी गवाही कहते हो मैं वही झूठी गवाही दूँगा। जिन लोगों ने राज्यों की नींव डाली है, साम्राज्य खड़े किये हैं, समाज का संगठन किया है, धर्म-

सम्प्रदाय स्थापित किये हैं वहाँ तुम्हारे कल्पित सत्य की अदालत में छाती निकाले झूठी गवाही देने आते हैं। जिन्हें शासन करना है वे झूठ से नहीं डरते, जिनपर शासन किया जाता है उन्हीं के लिए सत्य के लोहे की ज़ंजीरें गढ़ी गई हैं। तुमने क्या इतिहास नहीं पढ़ा ? तुम क्या नहीं जानते कि पृथ्वी की बड़ी बड़ी रसोइयों में जहाँ राजनीति की खिचड़ी तय्यार होती है वहाँ मसालों के स्थान में मिथ्या और झूठ का ही प्रयोग होता है।"

"संसार में बहुत खिचड़ी पक चुकी अब ⋯ ⋯ ।"

"पर तुम लोगों को खिचड़ी पकाने को क्या पड़ी है, तुम्हारे मुँह में तो पकी पकाई ठूंसी जायगी। बंगविभाग होगा और तुमसे कहा जायगा तुम्हारे ही सुभीते के लिए है; शिक्षा का द्वार खूब ठोंक कर बन्द किया जायगा और तुमसे कहेंगे, तुम्हारे ही आदर्श को अक्षुण्ण करने के लिए ऐसा किया है, तुम साधु बनकर आँसू बहाओगे और हम असाधु होकर भूठका कोट खड़ा करेंगे। तुम्हारे आँसू ज़रा देर में सूख जायंगे। पर हमारा कोट सदा बना रहेगा।"

मास्टर महाशय ने मुझसे कहा, "यह तर्कवितर्क की बात नहीं है, निखिल। जो लोग अपने मन से इस बात को नहीं मानते कि हमारे अन्दर एक विराट सत्य मौजूद है और वही सत्य सारे जगत की जड़मूल है, वे कैसे विश्वास कर लेंगे कि इसी आन्तरिक सत्य को समस्त आवरण हटा कर प्रकाश करना ही मनुष्य का परम उद्देश्य है, बाहरी वस्तुओं को स्तूपाकार कर के खड़ा करना परम उद्देश्य नहीं है।"

सन्दीप ने हँस कर कहा, "आपने यह बात बिल्कुल मास्टरों की सी कही! यह सब बातें केवल पुस्तकों के पृष्ठों में देखने में आती हैं, संसार के पृष्ठ पर तो यही देखने में आया है कि बाहरी वस्तुओं को स्तूपाकार करके खड़ा करना ही मनुष्य का परम उद्देश्य है। इसी उद्देश्य को जिन्होंने पूर्ण रूप से सिद्ध किया है वही व्यवसायों के विज्ञापनों में रोज़ नये नये झूठ बोलते हैं, वही राजनीति की बही में ख़ूब मोटे कलम से जाली हिसाब लिखते हैं, उन्हीं के समाचारपत्र झूठ को पोट होते हैं और जिस प्रकार मक्खियाँ बीमारी फैलाती हैं उसी प्रकार उनके धर्म-प्रचारक झूठ का प्रचार करते फिरते हैं। मैं उन्हीं का शिष्य हूँ—जब मैं काँग्रेस के दल में था उस समय हवा का रुख़ देखते हुए आध सेर सत्य के दूध में साढ़े पन्द्रह सेर पानी मिलाने में मुझे कभी लज्जा नहीं हुई, आज उस दल से अलग होकर भी मेरा यही विश्वास है कि सत्य मनुष्य का उद्देश्य नहीं है, फललाभ ही उद्देश्य है।"

मास्टर साहब ने कहा, "सत्यफल लाभ!"

सन्दीप ने कहा, "पर सत्य की फ़सल सदा झूठ की ज़मीन पर फलती है। और जो सत्य आप ही आप उगता है वह झाड़ झंकाड़ के समान है, काँटेदार वृक्ष है, केवल कीड़े मकोड़ों का दल ही उस फल से सन्तुष्ट हो सकता है।"

यह कह कर सन्दीप झटपट बाहर चला गया। मास्टर साहब ज़रा हँसे और मेरी ओर देख कर बोले, "जानते हो, निखिल, सन्दीप अधार्मिक नहीं है, विधार्मिक है। वह

मानों अमावस्या का चाँद है; घटनाक्रम से पूर्णिमा के बिल्कुल उलटी ओर जा पड़ा है।"

मैंने कहा, "जान पड़ता है इसीलिए मत भेद रहने पर भी मेरा हृदय उसकी ओर आकर्षित होता है। उसने मुझे बहुत हानि पहुँचाई है, और भी पहुँचाएगा, पर तो भी उस के प्रति मैं उपेक्षा नहीं कर सकता।"

वह बोले, "यह मैं भी समझ गया हूँ! पहले मुझे आश्चर्य था कि तुम सन्दीप की बातें इतने दिन से कैसे सह रहे हो। यही नहीं, कभी कभी मैंने इस बात को तुम्हारी दुर्बलता भी समझा है। अब समझ गया कि उसका तुम्हारा शब्द का मेल नहीं है, केवल छन्द का मेल है।"

मैंने हँसकर कहा, "मित्र मित्र के मिलने से अमित्राक्षर की रचना हुई है। जान पड़ता है हमारे भाग्य-कवि ने 'पैराडाइस लॉस्ट' के समान एक महाकाव्य लिखने का संकल्प किया है।"

मास्टर साहब ने कहा, "अब पन्नू के विषय में क्या किया जाय?"

मैंने कहा, "मैंने सुना है पन्नू का ज़मींदार उसका पैत्रिक मौरूसी स्वत्व छीनने की चेष्टा कर रहा है—उसकी वह ज़मीन मैं ख़रीदे लेता हूँ। पन्नू वहीं मेरी रैयत होकर रहेगा।"

"और जुरमाने के सौ रुपये ?"

"जब ज़मीन मैं ले लूंगा तो जुरमाना वसूल कहाँ से करेंगे ?"

"और उसके कपड़ों की गठरी ?"

"वह मैं दूंगा। मेरी रैयत होकर वह जो मन चाहे बचे, मैं देखूंगा उसे कौन रोकता है ?"

पंचू हाथ जोड़कर बोला, "हज़ूर राजा राजा को लड़ाई है बीच में जान मेरी जायगी।"

"क्यों तेरा क्या करेंगे ?"

"मेरे घर में आग लगा देंगे, बाल बच्चों सहित जल मरूँगा।"

मास्टर साहब बोले, "अच्छा तेरे बाल बच्चे कुछ दिन तक मेरे घर रहेंगे। तुझे किसी बात का डर नहीं है। अपने घर बैठकर जो काम चाहे कर, तुझसे कोई कुछ न कह सकेगा।"

उसी दिन मैंने पंचू की ज़मीन ख़रीदकर दख़ल लेलिया। इस बात पर बड़ी गड़बड़ी मची।

पंचू को ज़मीन उसे अपने नाना से मिली थी। सब जानते थे कि पंचू को छोड़ कर उसके नाना का और कोई वारिस नहीं था। अकस्मात् कहीं से एक मामी अपना बँधना बोरिया और एक अधेड़ अवस्था की भतीजी को साथ लिए पंचू के घर आ उपस्थित हुई और लगी अपना जीवनस्वत्व प्रमाणित करने।

पंचू विस्मित होकर बोला, "मेरी मामी तो बहुत दिन हुए मर चुकी।"

उसने उत्तर दिया, "पहले की ब्याहता मर गई होगी पर दूसरी तो मैं मौजूद हूँ।"

"पर मामी तो मामा से बहुत दिन पीछे मरी है; दूसरी ब्याहता कहाँ से आगई?"

नई मामी ने उत्तर दिया, "मेरा ब्याह उनकी मृत्यु से पीछे नहीं पहले ही हुआ था। सौतन के डर के मारे मैं बराबर अपने मैके रही। उनके मरने के पीछे दर्शन यात्रा के लिए वृन्दावन चली गई थी; इस बात को गाँव के बहुत लोग जानते हैं, और यदि ज़मींदार बाबू फिर भी आपत्ति करें तो मैं उन लोगों को बुला सकती हूँ जिन्होंने ब्याह के समय न्योता खाया था।"

उस दिन दोपहर के समय जब पंच के मामले पर विचार करते करते हैरान हो गया था, अन्दर से विमला ने मुझे बुला भेजा।

मैं चौंक पड़ा, पूछने लगा, "किसने बुलाया है?"

"रानीमां ने।"

"बड़ो रानीमां ने?"

"नहीं छोटी रानीमां ने।"

छोटी रानी ने? जान पड़ा लगभग सौ बरस से छोटी रानी ने मुझे नहीं बुलाया।

बैठक में सब को बैठा छोड़ भीतर गया। कमरे में जाकर विमला को देखा तो और भी अचम्भा हुआ। आज कुछ विशेष बनावसिंगार हुआ था। बहुत दिन से वह कमरा भी बुरी दशा में था, सब चीज़ें तितर बितर पड़ी रहती थीं। आज उसमें भी विशेष प्रयत्न के लक्षण दिखाई पड़रहे थे।

मैंने विमला से कुछ न कहा और चुप खड़ा उसके मुँह को ओर देखने लगा। विमला का मुँह ज़रा ज़रा लाल हो गया। वह अपने दाहिने हाथ से बाएँ हाथ के कड़े को ज़ोर से घुमाते घुमाते मुझ से कहने लगी, "देखो, देशभर में केवल हमारे हाँ हाट में विदेशी कपड़ा आता है, यह क्या अच्छी बात है?"

मैंने पूछा, "अच्छी बात और किस प्रकार हो?"

"विदेशी माल का आना बन्द कर दो।"

"मेरा माल तो नहीं है।"

"पर हाट तो तुम्हारा है।"

"हाट! मुझ से भी अधिक उन लोगों का है जो वहाँ सौदा ख़रीदने आते हैं।"

"उन्हें लेना हो तो देशी माल लें।"

"वे यदि देशी माल लें तो बड़ी अच्छी बात है, मैं भी बहुत प्रसन्न होऊँगा। पर यदि वे लेना पसन्द न करें तो?"

यह कैसे हो सकता है? तुम्हारे होते उनकी ऐसी मजाल—?"

"मुझे इस समय अवकाश नहीं है, इस बात पर व्यर्थ बहस करने से कुछ न होगा? मैं अत्याचार नहीं कर सकता।"

"अत्याचार तो तुम्हारे अपने लिए नहीं, देश के लिए होगा।"

"देश के लिए अत्याचार करना देश के ऊपर ही अत्याचार करना है। तुम इस बात को न समझ सकोगी।"

यह कहकर मैं बाहर चला आया। अकस्मात् मेरी दृष्टि के सामने सारा जगत् दीप्यमान हो उठा। जिस प्रकार पृथ्वी जीवपालन का सब काम करते हुए भी अद्भुत शक्ति के वेग से दिन रात्रि की जयमाला के समान फिराते फिराते आकाश में चक्कर लगाती है, उसी प्रकार मेरे मन में भी कर्मभार और मुक्तिवेग दोनों की सीमा न रही! अब कौनसा बन्धन मुझे रोक सकता था? अकस्मात एक विपुल आनन्द मेरे हृदय की गहराई से उठकर मानों समुद्र के जलस्तम्भ के समान आकाश के बादल से जा टकराया।

मेरे मन में बार बार यही प्रश्न उठता था, यह एक दम मुझे क्या हो गया? पहले कुछ उत्तर न सूझा पर धीरे धीरे स्पष्ट समझ में आने लगा कि जिस बन्धन ने इतने दिन से मेरे मन को पीड़ित कर रक्खा था अब वह टूटने वाला है। मुझे बड़ा अचम्भा था कि मेरे मन का चक्कर एक दम कहाँ चला गया। फ़ोटू की प्लेट पर जिस प्रकार तसवीर उतर जाती है उसी प्रकार विमला सम्पूर्ण रूप से मेरी दृष्टि में अंकित हो गई। मैंने स्पष्ट समझ लिया कि विमला ने मुझ से काम निकालने के लिए आज विशेष बनाव सिंगार किया है। आज से पहले मैंने विमला को और विमला के सिंगार को अलग करके नहीं देखा। आज उसका विलायती ढङ्ग का जूड़ा मुझे केवल साधारण बालों की कुण्डली दिखाई पड़ा—केवल यही नहीं बल्कि जो जूड़ा एक दिन मेरे निकट अमूल्य था आज वही ऐसा दिखाई पड़ा मानों सस्ते दामों में बिकने के लिए तैयार रक्खा है।

जब मैं अपने शयनघर के अँधेरे गढ़े में से निकल कर हेमन्त की दोपहर के खुले उजाले में आया तो देखा कि बाग़ के वृक्षों के नीचे चिड़ियों के एक दल ने उत्तेजित हो कर बड़ी चीं चीं मचा रक्खी है; दक्षिण की ओर ईंट कुटे रास्ते के दोनों ओर चम्पा के वृक्ष थे, उनके असंख्य गुलाबी फूलों के भड़कीले रंग ने आकाश को अभिभूत कर रक्खा है; कुछ दूर पर एक ख़ाली बैलों की गाड़ी आकाश की ओर पूँछ उठाए मुँह के बल पड़ी है। उसी के निकट एक बैल खड़ा घास खा रहा है, दूसरा धूप में पड़ा सो रहा है। उस की पीठ पर कौवा बैठा ठोंग मार मार कर कोड़ निकाल रहा है—यह बैल को ऐसा अच्छा लग रहा है कि उसने आँखें मूँद ली हैं। आज मुझे मालूम हो रहा है कि मैं इस अत्यन्त सरल और वृहत् विश्व के धड़कते हुए हृदय के बहुत निकट आ पहुँचा हूँ, उसी की गर्म गर्म साँस उन चम्पा के फूलों की सुगन्ध के साथ मिलकर मेरे हृदय को स्पर्श कर रही है। मैं सोचता हूँ, हमारी आत्मा का विश्व के साथ सुर मिलने पर जो सङ्गीत उठता है वह कैसा उदार है, कैसा गम्भीर है, कैसा अनिर्वचनीय सुन्दर है!

आख़िर यह मोह कब तक? क्या अब भी आत्मा अन्तःपुर के स्वप्न के जाल में जकड़ी पड़ी रहेगी? हम पुरुष हैं, मुक्ति ही हमारी साधना है, आदर्शों की आवाज़ सुनकर हम सामने की ओर झपटेंगे, दैत्यपुरी की दीवारें फाँद कर बन्दिनी लक्ष्मी का उद्धार करेंगे। जो स्त्री अपने निपुण हाथों से हमारे इस अभियान की जयपताका तैयार कर सकेगी वही हमारी सहधर्मिणी है और जो घरके कोने में बैठकर हमारे लिए

मायाजाल बनती है उसका छद्मवेश तोड़कर मोह-मुक्त सत्य का परिचय पाना हमारा कर्तव्य है क्योंकि उसे हम अपनी कामना के रस में रँग कर अप्सरा बनाकर मानों स्वयं अपनी ही तपस्या भंग करने को भेजते हैं। आज मुझे मालूम हो रहा है मेरी जय होगी—मैं सरल रास्ते पर खड़ा हूँ—मैं सरल नेत्र से सब देख रहा हूँ—मुझे मुक्ति मिल गई है, मैंने मुक्ति दे भी दी है, जहाँ मेरा कर्तव्य है वहाँ मेरा उद्धार है।

सन्दीप की आत्म-कथा।

उस दिन आँसुओं का बाँध मानों टूट ही पड़ा था। विमला ने मुझे बुला भेजा पर कुछ देर तक उसके मुँह से कोई बात न निकली। उसके नेत्रों में आँसू झलक रहे थे। मैं समझ गया कि निखिल ने उसकी बात नहीं मानी। उसे अहंकार था कि जैसे भी होगा निखिल से यह काम करा के छोड़ूँगी, पर मुझे यह आशा नहीं थी। पुरुष जिस बात में दुर्बल है उसे स्त्रियाँ खूब पहचानती हैं; पर पुरुष जहाँ वास्तव में पुरुष है वहाँ के रहस्य को स्त्रियाँ नहीं पा सकतीं। असली बात यह है कि पुरुष स्त्रियों के निकट रहस्य है और स्त्रियाँ पुरुषों के निकट रहस्य हैं, यदि ऐसा न होता तो उन दोनों का जाति-भेद प्रकृति के पक्ष में एक अपव्यय दिखाई पड़ता।

अभिमान इसी का नाम है। जो बात होनी चाहिए थी वह क्यों न हुई, इस बात का विशेष ध्यान नहीं है, रोना इस बात का है कि मुँह-माँगा वरदान क्यों न मिला। स्त्रियों के इसी अहंकार में कितना रस, कितना रंग, कितनी हँसी, कितना रोना, कितना हाव-भाव भरा है; इसी में उनका माधुर्य है। उनमें हमारी अपेक्षा कहीं अधिक व्यक्तिविशेषता है। विधाता ने जब हमारी सृष्टि की थी तो वह मानो स्कूल-मास्टर थे, उस समय उनकी झोली में पोथी और तत्व को छोड़ कर और कुछ नहीं था; पर स्त्रियों की सृष्टि के समय वह स्कूल-मास्टरी छोड़ चित्रकार बनगये थे, उस समय तूलिका और रंग के बक्स का प्रयोग हुआ था।

इसीलिये जब विमला उस आँसू भरे अभिमानको रक्तिमा में सूर्यास्त समय के जल और आग से भरे मेघ के समान चुप चाप खड़ी थी तो मुझे बड़ी मनोहर दिखाई पड़ी। मैंने निकट जाकर उसका हाथ पकड़ लिया; उसने हाथ छुड़ाने की चेष्टा नहीं की पर उसका सारा शरीर थरथर काँपने लगा। मैंने कहा, "मक्खी, हम दोनों जने सहयोगी हैं, हमारा एक ही लक्ष्य है। तुम ज़रा बैठ जाओ।"

यह कहकर मैंने विमला को एक कुरसी पर बिठा दिया। कैसा आश्चर्य है! मेरे हृदय का सारा वेग बस यहीं तक आकर रुक गया। वर्षा ऋतु में जो पद्मा नदी तोड़ती फोड़ती गरजती हुई चलती है मानो जो कुछ सामने आयेगा वहा ले जायगी वही पद्मा नदी मानों अकस्मात् अपने तोड़ का सीधा मार्ग छोड़कर एकदम इधर से उधर आपहुँची। उसकी थाह में कहाँ क्या बाधा छिपी पड़ीथी इसका उस मकरवाहिनीको स्वयं

ज्ञान नहीं था। विमला का हाथ पकड़ते ही मेरी देह-वीणा का तार तार बज उठा, परन्तु यह झंकार ऐसे बेमौक़े क्यों रुक गई, भीतर तक क्यों न पहुँच सकी ? जान पड़ता है अब तक हृदय में कुछ संकोच बाक़ी था। पर इस संकोच का कोई एक कारण नहीं था, इसके अनेक कारण थे। इसी लिए मैं इसे कभी स्पष्ट न पहचान सका, केवल इतना ही जानता था कि यह एक बाधा है। मैं वास्तव में जो कुछ हूँ यह किसी अदालत में किसी दलील या प्रमाण द्वारा साबित नहीं हो सकता। मैं स्वयं अपने ही निकट रहस्य हूँ, इसी से मेरी दृष्टि में मेरा अपना मान है; इसी रहस्य को यदि पूर्ण रूप से समझ लेता तो सारी बाधाओं का दमन करके आज मुक्ति प्राप्त कर चुका होता।

कुरसी पर बैठे बैठे विमला का मुख एकदम पीला पड़ गया, वह मानो सोच रही थी कि बहुत बची, बड़े घोर संकट का सामना हुआ था। धूमकेतु तो सरसराता हुआ पास से निकल गया पर उसकी आग भरी पूंछ की चोट से मानो विमला क्षणभर के लिए मूर्छित हो गई। मैं उसके सर से युमेर उतारने के लिए कहने लगा, "बाधा अवश्य है पर यह खेद का समय नहीं, लड़ाई का समय है। क्या कहती हो रानी ?"

विमला ने ज़रा खँकार कर अपना रुद्धकंठ साफ़ किया और बोली, "हाँ।"

मैंने कहा, "जिस प्रकार काम आरम्भ करना हो, उस का उपाक्रम पहले से ठीक कर लेना चाहिए।"

यह कहकर मैंने अपनी जेब से एक पेन्सिल और काग़ज़

निकालकर सामने रक्खा। कलकत्ते से आये हुए जितने उत्साही नवयुवक उन दिनों वहाँ उपस्थित थे, उनमें किस प्रकार काम का विभाग किया जाय इसी की आलोचना होने लगी पर तुरन्त ही विमला बीच में बोल उठी, "इस समय रहने दो, सन्दीप बाबू, मैं पाँच बजे फिर आऊँगी उस समय सब ठीक कर लेंगे।" यह कहकर वह झटपट कमरे से बाहर चली गई।

मैं समझ गया कि इतनी देर तक चेष्टा करने पर भी विमला मेरी बातों पर ध्यान न दे सकी। इस समय उसे कुछ देर एकान्त में रहने की ज़रूरत है, संभव है मुँह ढककर रोने की भी ज़रूरत पड़े।

विमला के जाने के बाद कमरे की भीतर की हवा में मानों और भी नशा भरगया। सूर्यास्त के पश्चात् जिस प्रकार आकाश में मेघ रंगीन हो उठते हैं, उसी प्रकार जब विमला चली गई तो मेरा मन भी आवेग के रंग से भर गया। सोचने लगा फिर अवसर हाथ से निकाल दिया। यह कैसी कापुरुषता है। मेरी इस अद्भुत द्विधा से उसे अवश्य ग्लानि हुई है इसीलिए वह चली गई, और ग्लानि होने की बात भी है।

इन्हीं विचारों से मन विह्वल हो रहा था कि बैरा ने आकर खबर दी, अमूल्य आप से मिलना चाहते हैं। पहले तो मैंने सोचा इनकार करदूँ—पर निश्चय करने से पहले ही वह स्वयं कमरे में आगया।

अब स्वदेशी विदेशी के युद्ध का समाचार चला। उस समय कमरे की हवा से नशा दूर हो गया। जान पड़ा

जैसे स्वप्न देखकर अभी उठा हूँ। कमर बाँध कर खड़ा हो गया। अब क्या था, चलो रणक्षेत्र में! बन्देमातरम्!

समाचार यह था:–कुराड़ ज़मींदार की सब रैयत हमारा लोहा मान गई। निखिल के सब मुनीम गुमाश्तों की सहानुभूति हमारी ओर है, वे चुपके चुपके हमें सहायता दे रहे हैं। मारवाड़ी लोग कहते हैं, हमसे कुछ दंड लेकर हमें विलायती कपड़ा बेचने दो, क्यों व्यर्थ झगड़ा मोल लेते हो? मुसलमान किसी तरह बस में नहीं आते।

एक किसान अपने बाल बच्चों के लिए एक सस्ते दामों का जर्मन शाल लिए जा रहा था। हमारे दल के एक लड़के ने उसकी वह शाल छीन कर जला डाली। इसी बात पर बड़ी गड़बड़ मची है। हम उससे कहते हैं तुझे सस्ते दामों का देशी गर्म कपड़ा ले देंगे। पर सस्ते दामों का देशी गर्म कपड़ा आये कहाँ से? रंगीन कपड़े तो बिलकुल आते ही नहीं। फिर क्या उसे काश्मीर की शाल ले दें? अब वह निखिल के सामने आकर रोया पीटा है। उन्होंने उस लड़के पर नालिश करने की आज्ञा दी है। पर नालिश को बिगाड़ देने का भार उनके मुनीम गुमाश्तों ने अपने सिर लिया है। मुख्तार हमारे दल में है ही।

अब प्रश्न यह है, जिन लोगों के हम कपड़े जलाते हैं, यदि उन्हें देशी कपड़ा लेकर देना पड़ेगा और फिर अदालत में मामले भी चलेंगे तो इस सब के लिए रुपया कहाँ से आयेगा? और इस फूंकाफाँकी से विलायती कपड़े का व्यवसाय और चमक उठेगा। सुनते हैं कोई

नवाब बिल्लोरी भाड़ के टूटने का शब्द बहुत पसन्द करता था और घर घर भाड़ तोड़ता फिरता था। उस समय भाड़ वालों के अवश्य गहरे हुए होंगे।

दूसरा प्रश्न यह है, सस्ता देशी गर्म कपड़ा बाज़ार में नहीं है, जाड़े सिर पर आगये; अब विदेशी शाल, चादर, मलीने इत्यादि का क्या किया जाय ? उनकी विक्री होने दें या बन्द कर दें ?

मैंने कहा, "विदेशी कपड़े के बदले देशी कपड़ा यक्ष-शीघ्र में देने से काम नहीं चलेगा। जो लोग विदेशी माल लेते हैं दण्ड उन्हीं को मिलना चाहिए, हम क्यों दण्ड भोगें ? जो अदालत में मामला करने जाएँ उनके खलियानों में एकदम आग लगादो, पुचकारने धुमकारने से काम नहीं बनेगा। देखो जी अमूल्य इस प्रकार चौंक पड़ने से काम नहीं चलेगा। किसानों के खलियानों में आग लगाकर मुझे रोशनी करने का शौक़ नहीं है। पर यह तो युद्ध है। दुख देते हुए यदि घबराते हो तो मधुररस में जाकर डूब मरो, और राधा के समान प्रेम में निमग्न होकर 'क' सुनते ही बेसुध होकर धरती पर गिर पड़ो।

रही विलायती गर्म कपड़े की बात, सो जिस प्रकार भी हो हम, लोगों को इसका प्रयोग न करने देंगे। हमारा देशी माल विलायती माल का मुक़ाबला नहीं कर सकता, पर जब विदेशी रंगीन चादरें नहीं थीं तो किसान दुलाई लपेट कर काम चलाते थे, अब भी वही करें। इससे उनका शौक़ पूरा न होगा, पर यह तो शौक़ पूरा करने का समय भी नहीं है।"

वहाँ जिन व्यापारियों की नावें चलती थीं उनमें से बहुत से हमारे दल में आ गये थे। पर उनमें सब से बड़ा मीरजान था और वह किसी तरह नहीं सुनता था। इस गाँव के नायब* से पूछा गया, उसकी वह नाव किसी तरह डुबवा सकते हो? वह बोला, इसमें मुश्किल क्या है, डुबवा सकता हूँ; पर अन्त में बात तो मेरे सिर नहीं पड़ेगी? मैंने कहा ऐसा करो कि किसी के सिर भी न पड़े, फिर भी यदि पड़ ही जाय तो मेरा सिर मौजूद है।

हाट खतम होनेपर मीरजान की नाव घाटपर बँधी थी। उसपर मल्लाह भी नहीं थे। नायब ने तरकीब करके किसी स्वांग यात्रा के बहाने उन्हें अलग करलिया था। उसी रात को नाव मँझधार में लेजाकर डुबादी गई।

मीरजान सब समझ गया। सीधा रोता पीटता मेरे पास आया और हाथ जोड़ कर कहने लगा, "हुज़ूर एक बार कसूर हो गया अब कभी ...।"

मैंने कहा, "अब यह बात कैसे एकदम तुम्हारी समझ में आगई?"

इसका उसने कुछ उत्तर नहीं दिया और कहने लगा, "उस नाव के दाम दो हज़ार रुपये से कम न होंगे हुज़ूर! अब मेरी आँख खुल गई, इस बार का अपराध यदि क्षमा करें ......।"

यह कहकर उसने मेरे पाँव पकड़ लिए। मैंने उससे दस दिन पीछे आने को कह दिया। इस आदमी को यदि

*बंगाल में ज़मींदार के गुमाश्ते को नायब कहते हैं।

दो हज़ार रुपये दे दिये जाएँ तो बस मानों इसे हमने मोल लेलिया। ऐसे ही लोगों के दल में आने से काम चलेगा। इस समय कुछ अधिक रुपये की ज़रूरत है, कुछ प्रबन्ध न हुआ तो सारा काम बिगड़ जायगा।

संध्या समय विमला जैसे ही कमरे में आकर कुरसी पर बैठी मैंने उससे कहा, "मक्खी रानी, सब काम तैयार है, केवल रुपया चाहिए।"

विमला ने कहा, "रुपया? कितना रुपया?"

मैंने कहा, "इस समय केवल पचास हज़ार बहुत होगा।"

यह सुनते ही विमला भीतर ही भीतर चौंक पड़ी, किन्तु मन का भाव बाहर प्रगट न होने दिया। इसे भी कैसे कह देती कि मेरे बस का काम नहीं है।

मैंने कहा, "रानी, तुम असम्भव को सम्भव करसकती हो, तुम कई बार कर भी चुकी हो। तुमने जो कुछ किया है यदि मैं दिखा सकता तो तुम भी देख लेतीं। पर अब उसका समय नहीं है, सम्भव है किसी दिन आजाय। इस समय तो रुपया चाहिए।"

विमला ने कहा, "अच्छा दूँगी।"

मैं समझ गया विमला ने मन ही मन अपना गहना बेचने का निश्चय किया है। मैंने कहा, "अपना गहना अभी रहने देना, न जाने किस समय क्या ज़रूरत आपड़े।"

विमला कुछ न बोली और मेरे मुँह की ओर देखने लगी। मैंने कहा, "यह रुपया तुम्हें अपने स्वामी के रुपये में से लेना होगा।"

विमला और भी स्तम्भित हो गई; कुछ देर बाद बोली, "उनका रुपया मैं कैसे लेसकती हूँ?"

मैंने कहा, "उनका रुपया क्या तुम्हारा रुपया नहीं है ?"

उसने अभिमान के साथ उत्तर दिया, "नहीं।"

मैंने कहा, "तो फिर वह रुपया उनका भी नहीं है। वह रुपया देश का है। जब देश को ज़रूरत है तो यही समझना चाहिए कि निखिल ने वह रुपया देश के पास से चुरा कर रख छोड़ा है।"

विमला ने कहा, "मुझे वह रुपया मिलेगा किस तरह ?"

"जिस तरह भी हो। तुम सफल होगी अवश्य। जिसका रुपया है तुम्हें उसे लाकर सौंपना पड़ेगा। बन्देमातरम्! इसी बन्देमातरम् से तुम लोहे के सन्दूक खोलोगी, ख़ज़ानों को दीवारें तोड़ोगी, और जो धर्म का आसरा ले कर उस महाशक्ति के मानने में आपत्ति करेंगे, उन के हृदय विदीर्ण हो जायँगे! मक्खी, बोलो "बन्देमातरम्, बन्देमातरम्।"

हम पुरुष हैं, हम राजा हैं, हम दुनिया से कर वसूल करेंगे। हमने जब से जन्म लिया है, पृथ्वी को लूट रहे हैं। जैसे जैसे हमारी लूट बढ़ती जाती है वैसे ही पृथ्वी पर हमारा अधिकार भी बढ़ता जाता है। हम पुरुष लोग आदि काल से फल तोड़ते आये हैं, हमने पेड़ उखाड़े हैं, मट्टी खोदी है, पशुओं का संहार किया है, पक्षियों को मारा है, मछलियों को खाया है। समुद्र की तह में से, धरती के

नीचे से, मृत्यु के मुख में से हमने कर वसूल किया है—हम वही पुरुषजाति हैं। विधाता के भाण्डार में हमने एक भी लोहे का सन्दूक नहीं छोड़ा—हम सदा तोड़फोड़ में लगे रहे हैं।

इस प्रकार हम पुरुषों की माँग पूरी करने ही में धरणी को आनन्द मिलता है। रात दिन हमारी आवश्यकतायें पूरी करते करते ही पृथ्वी उर्वरा हो गई है, सुन्दर और सार्थक बन गई है, अन्यथा भाड़ झंकाड़ों में छिपी पड़ी रहती, उसे स्वयं अपना भी ज्ञान न होता, उसके हृदय के सारे द्वार बन्द पड़े रहते; उसकी खानों के हीरे खानों ही में पड़े रहजाते, उसको सीपियों के मोती कभी दिन का प्रकाश न देखते।

हम पुरुषों ने केवल अपने दावे के ज़ोर से ही स्त्रियों की प्रकृति को उद्घाटित किया है। हमारे लिए आत्म-समर्पण करते करते ही उन्होंने अपना सारा गौरव प्राप्त किया है। उन्होंने अपने सुख के हीरे और दुख के मोती हमारे राज-कोष में जमा कर दिये हैं, तभी उन्होंने अपना सच्चा धन पाया है। इसी कारण पुरुषों के पक्ष में स्वीकृति ही यथार्थ दान है और स्त्रियों के पक्ष में दान ही यथार्थ लाभ है।

मैंने विमला को बड़ी कठिन समस्या में डाल दिया है। कोई जान बूझकर ऐसी बात नहीं करता जो स्वयं अपने आप को बुरी लगे, इसीलिए मुझे पहले ज़रा दुविधा हुई थी। सोचा उसे बुलाकर कहदूँ, नहीं तुम इस झंझट में मत पड़ो, मैंने व्यर्थ तुम्हें चिन्ता में डाला।

क्षण भर के लिए मानों मैं भूल ही गया था कि पुरुष की जाति सकर्मक है, हमें अकर्मकों को झंझट और अशांति में डालकर उनके जीवन को सार्थक बनाना है। पुरुषों का काम मानों त्रिभुवन में हाहाकार मचा देना है, नहीं तो उनकी भुजायें ऐसी सबल और उनकी मुट्ठी ऐसी कड़ी न होती।

विमला मन से चाहती है कि सन्दीप मुझसे किसी बहुत बड़े काम को कहे, मुझसे मेरे जीवन का दान माँगे और वास्तव में ऐसा न होने से उसे सन्तोष भी न होगा। वह कभी जी भरकर नहीं रोसकी है, इसीलिए मानों मेरी वाट देख रही थी। उसने अभी सुख ही सुख देखा था इसलिए मुझे देखते ही उसके हृदय के दिगन्त में दुख की घनघोर घटा उठने लगी। मैं यदि दया कर के उसके आँसू पोंछनेलगूँ तो मानों मेरा पृथ्वी पर आना ही व्यर्थ हो गया।

असल में मेरे मन में जो संकोच हुआ था उसका कारण यही था कि यह रुपये का प्रश्न है। रुपया पैसा पुरुषों का भाग है। उसे कहीं और माँगने जाने में एक प्रकार की भिक्षुकता दिखाई पड़ती है। इसीलिए रुपये की मात्रा को इतना बढ़ाना पड़ा। एक आध हज़ार होता तो चोरी सी दिखाई पड़ती, पर पचास हज़ार तो पूरी पूरी डकैती है।

बात यह है कि मेरे पास खूब धन होना चाहिए था। इसी अभाव के कारण न जानें कितनी इच्छायें पूरी न हो सकीं, यह बात और किसी के लिए कैसी ही हो

मुझे बिल्कुल शोभा नहीं देती। यह मेरे साथ केवल अन्याय नहीं है, इससे मेरे भाग्य देवता की मूर्खता प्रगट होती है। इसीलिए मुझे बड़ा क्रोध होता है। घर किराए पर लिया तो हर महीने सिर पकड़ कर सोच रहे हैं किराये का क्या प्रबन्ध करें। रेल पर गये तो बड़ी चिन्ता और देर तक जेब टटोलने के बाद इन्टर का ही टिकट लेना पड़ा—यह सब बातें मेरे समान मनुष्य के लिए दुखकर नहीं हास्यकर हैं। मैं साफ़ देख रहा हूँ निखिल सरीखे मनुष्यों के लिए इतनी अधिक सम्पत्ति बिल्कुल व्यर्थ है। वह ग़रीब होता तो कुछ भी हानि नहीं थी, वह अनायास दरिद्रता के छकड़े में अपने मास्टर महाशय के साथ जुट जाता।

मैं जीवन में कम से कम एक बार पचास हज़ार हाथ में लेकर अपने आराम और देशप्रयोजन के निमित्त दो दिन में उड़ा देना चाहता हूँ। मैं वास्तव में धनी हूँ, ज़रा चाहता हूँ कि दरिद्रता के इस भेष को दो दिन के लिए उतार कर एक बार आइने के सामने खड़ा होऊँ।

पर विमला को पचास हज़ार मिलेंगे कहाँ से? जान पड़ता है अन्त में वही दो चार हज़ार हाथ लगेंगे। वही सही। "अर्द्धं त्यजति पंडितः"* कहा है, पर जब त्याग अपनी इच्छा से न हो तो हतभाग्य पंडित आधा क्या रुपये में पन्द्रह आने भी त्याग देता है।

अभी यहीं तक लिखा है—ये सब बातें ख़ास मेरे अपने

* सवनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः।

विषय में है। इस सम्बन्ध में अवकाश मिलने पर फिर विस्तारके साथ विचार किया जायगा। इस समय अवकाश नहीं है। मुझे अभी नायब ने बुलाया था, तुरन्त जाना चाहिए; सुना है बड़ी गड़बड़ी मची है।

*　*　*　*　*

नायब ने कहा, "जिस आदमी से नाव डुबवाई थी उस पर पुलीस सन्देह कर रही है, और वह है भी पुराना दाग़ी, इसीसे मुझे भी चिन्ता होरही है। उससे किसी बात का पता लगाना तो कठिन है, बड़ा चलता हुआ है। पर क्या कहा जा सकता है। मुश्किल यह है कि महाराज (निखिल) भी हमारे विरुद्ध हैं, इसीलिए मैं खुल्लमखुल्ला कुछ नहीं कर सकता। पर देखिये यदि मुझपर कुछ बात आई तो मैं आपको भी नहीं छोड़ूंगा।"

मैंने पूछा, "मुझे फाँसने का क्या उपाय सोचा है?"

नायब ने कहा, "मेरे पास एक आप की और तीन अमूल्य बाबू की लिखी हुई चिट्ठियाँ मौजूद हैं।"

मैं अब समझा जो चिट्ठी नायब से मुझे लिखकर उत्तर मँगाया था, उसका यही प्रयोजन था। ये तो नई नई बातें देखने में आरही हैं।

अब आवश्यकता इस बात की है कि पुलीस को कुछ पेट-पूजा की जाय और यदि मामला बढ़ गया तो जिस आदमी को नाव डुबवाई गई है उसका घाटा भी आपस में पूरा करना पड़ेगा। यह मैं खूब जानता हूँ कि इस खिचड़ी का बड़ासा हिस्सा नायब के पेटमें भी जायगा। पर यह बात दोनों

और मन ही मन में है। मुंह से मैं भी कहता हूँ बन्देमातरम् और वह भी कहता है बन्देमातरम्।

देशकार्य में जिन पात्रों से हमें काम लेना पड़ता है उनमें से अनेक की तलो टूटी हुई रहती है; जितना पदार्थ उनमें टिकता है उससे कहीं अधिक निकल पड़ता है। लोग अपनी धर्मबुद्धि को मानों एकदम हो हड़प कर जाते हैं। इसीलिए मुझे पहली बार नायब पर बड़ा क्रोध आया था, ज़रा सी कसर रह गई नहीं तो इसी वृत्तान्त के साथ साथ देशसेवकों के छल कपट के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिख डालता। पर यदि भगवान का वास्तव में अस्तित्व है तो मुझे इस बात में उनका अवश्य कृतज्ञ होना पड़ेगा कि उन्होंने मुझे बड़ी साफ़ और तेज़ बुद्धि दी है—अपने विषय में भीतर बाहर की कोई बात ऐसी नहीं जो स्पष्ट न हो। और चाहे जिस विषय में भूल हो जाय पर अपने विषय में मुझे कभी भूल नहीं होती। इसीलिए मेरा क्रोध अधिक न रह सका। जो सत्य है वह न भला है न बुरा है केवल सत्य ही है—इसी का नाम विज्ञान है। मिट्टी में जितना जल सूख जाता है उसे छोड़ कर जितना बचता है उसी का नाम जलाशय है। बन्देमातरम् की मिट्टी में कुछ जल अवश्य सूखेगा इसमें से कुछ मैं सोखूंगा कुछ वह नायब सोखेगा—इसके पश्चात् जो कुछ बचेगा वही बन्देमातरम् है। इसे कपट बताकर भलाबुरा कह सकते हैं, पर है यह सत्य, इसे मानना अवश्य पड़ेगा। संसार के सब बड़े कामों की तह में गाद जम जाती है, यह केवल कीचड़ ही होती है। समुद्र के नीचे भी यह कीचड़ मौजूद है।

इसलिए किसी बड़े काम को आरम्भ करते समय इस कीचड़ का हक़ अलग उठा रखना चाहिए। अतएव कुछ तो नायब लेगा और कुछ मेरा प्रयोजन है; पर यह प्रयोजन एक और बड़े प्रयोजन का अंश है, क्योंकि केवल घोड़ा ही तो दाना नहीं खाता पहियों में भी तो तेल देना पड़ता ही है।

जो कुछ भी हो, अब तो रुपया चाहिए। पचास हज़ार पर अड़ने से काम नहीं चलेगा। इस समय जो कुछ मिल सके वही लेना पड़ेगा। मैं जानता हूँ जब इस प्रकार ज़रूरत आपड़ी है तो नफ़े नुक़सान का ध्यान छोड़ देना पड़ता है। आज पाँच हज़ार परसों के पचास हज़ार को ले बैठेंगे। मैं तो यही निखिल से कहा करता हूँ, जो त्याग के मार्ग पर चलते हैं केवल उन्हीं को लोभ का दमन नहीं करना पड़ता, जो लोभ के मार्ग पर चलते हैं उन्हें भी पगपग पर अपना लोभ छोड़ना पड़ता है। मैंने पचास हज़ार त्याग दिये, पर निखिल के मास्टर महाशय चन्द्र बाबू को ऐसा नहीं करना पड़ता।

षट्रिपुओं में पहले दो और अन्त के दो, पुरुषों के हैं और बीच के दो, कापुरुषों के। कामना करो पर लोभ और मोह का नाम मत लो, यह दोनों आये और कामना मिट्टी हुई। मोह अतीत और भविष्य को मिलाकर एक कर देता है, और इन दोनों के बीच में वर्त्तमान का ध्यान नहीं रहता। इस समय जो आवश्यक है उसपर जो लोग ध्यान नहीं देसकते, जो अल्प काल की बंसी पर कान लगाये हैं, वे विरहणी शकुन्तला के समान हैं; निकट से अतिथि की आवाज़ को वे सुन नहीं पाते, उसी के शाप से दूर के

जिस अतिथि को मुग्ध होकर कामना करते हैं उसे भी खो बैठे हैं। मोह-मुद्गर उन्हीं के लिए है जो कामना के तपस्वी हैं। "का तव कान्ता कस्ते पुत्रः*।"

उस दिन मैंने विमला का हाथ पकड़ लिया था, इसकी गूंज उसके मनसे अब तक नहीं गई है। मेरे मन में भी अभी तक झंकार बाकी है। इस झंकार का ताज़ा बना रहना उचित है। बार बार अभ्यास करके यदि इसका सुर मोटा करदिया तो जो अब संगीत का विषय है वह तर्क का विषय बन जायगा। अब तक मेरी किसी बात में विमला को "क्या" और "क्यों" का प्रश्न उठाने का अवसर नहीं मिला है। जिन मनुष्यों को मोह की आवश्यकता है उनके लिए मोह का प्रबन्ध अवश्य करना चाहिए। आज कल काम का बड़ा ज़ोर है—इस समय जो रस का प्याला सामने है उसके भागों ही तक रहना ठीक है, आगे बढ़ने में गड़बड़ मचेगी। जब इसका समय आयेगा तो देखा जायगा। अरे काम। लोभ को छोड़दे, मोह के वीणायन्त्र पर हाथ चल गया है तो क्या, अभी अनेक महीन और सूक्ष्म सुरों के अभ्यास की आवश्यकता है।

इधर हमारे आन्दोलन ने खूब ज़ोर पकड़ लिया है। हमारे दलबल ने धीरे धीरे चारों ओर धाक जमाली है। पर एक बात अब अच्छी तरह समझ में आगई, इन मुसलमानों को लल्लोपत्तो करके वस में लाना असम्भव है। उनका बलपूर्वक दमन करना पड़ेगा, उनको बताना

* कौन तेरी स्त्री है और कौन तेरा पुत्र।

पड़ेगा कि ज़ोर हमारे ही हाथ में है। आज वे हमारा कहना नहीं सुनते, दाँत निकाल कर हमारी ओर दौड़ते हैं, एक दिन उन्हें अवश्य रीछ का नाच नचाना पड़ेगा।

निखिल कहता है, "भारतवर्ष यदि कोई वास्तविक वस्तु है तो उसमें मुसलमान भी मौजूद हैं।"

मैं कहता हूँ, "यह हो सकता है, पर यह मालूम होना चाहिए कि मुसलमान कहाँ हैं, बस वहीं उन्हें दबा देना चाहिए—नहीं तो वे विरोध किये बिना न रहेंगे।"

"विरोध को बढ़ाकर ही मानों तुम विरोध मिटाना चाहते हो?"

"फिर तुम्हारा क्या उपाय है?"

"विरोध मिटाने का केवल एक ही उपाय है।"

मैंने अनेक बार देखा है कि साधुओं की लिखी कहानियों के समान निखिल की हर बात में एक उपदेश घुसा रहता है। आश्चर्य यह है कि इन कहानियों और उपदेशों से इतना परिचित होने पर भी वह इनमें विश्वास रखता है। सच बात यह है कि निखिल एकदम जन्म-स्कूल-बॉय (जन्म का विद्यार्थी) है। उसकी गणना गुणी मनुष्यों में अवश्य होगी। पर चाँद सौदागर* के समान उसने अवास्तव का शिवमन्त्र सीख लिया है, वास्तव के सर्पदंशन को वह कदापि मानना नहीं चाहता। कठिनाई यह है कि

*चाँद सौदागर शिव का बड़ा भक्त था पर चंडी देवी को नहीं मानता था। देवी ने कुपित होकर उसके पुत्र को साँप बनकर डस लिया किन्तु फिर भी चाँद सौदागर की शिव पर भक्ति वैसी ही बनी रही।

यह लोग मृत्यु ही को अन्तिम घटना नहीं समझते, वे आँख मूंद कर समझ बैठे हैं कि इसके पीछे और भी कुछ है।

बहुत दिन से मैंने एक उपाय सोच रक्खा है। यदि वह किसी प्रकार पूरा हो जाय तो देखते देखते समस्त देश में आग लग उठे। जब तक देश को अपनी आँखों से न देखेंगे हमारे देश के लोग कभी न जागेंगे। देश की एक देवी प्रतिमा होनी चाहिये। मेरे और मित्रों के मन में भी यह बात आई थी और वे चाहते थे कि एक मूर्त्ति गढ़ ली जाय। पर मैंने कहा कि हमारे गढ़ने से काम नहीं चलेगा। जो प्रतिमा परम्परा से चली आती है उसी को स्वदेश की प्रतिमा बनाना होगा। पूजा का पथ हमारे देश में खूब गहरा खुदा हुआ है, उसी पथ से भक्ति की धारा देश की ओर खींचकर लानी पड़ेगी।

इसी बात पर निखिल के साथ कुछ दिन पहले मेरा खूब तर्कवितर्क हुआ था। निखिल का कथन था, "जिस काम को सत्य मानकर उसपर श्रद्धा करते हैं, उसके साधन के लिए मोहजाल का प्रयोग करने से काम नहीं चलेगा।"

मैंने कहा, "मिष्टान्नमितरेजनाः, मोह न हो तो साधारण जनता का काम ही न चले; और पृथ्वी पर रुपये में बारह आने लोग साधारण हैं। इस मोह को बनाये रखने के निमित्त ही देश में देवताओं की सृष्टि हुई है — मनुष्य अपना स्वभाव खूब जानता है।"

निखिल ने कहा, "देवता तो मोह को नष्ट करते हैं, उसे उत्पन्न करना तो अपदेवताओं का काम है।"

मैंने कहा, "अच्छा तो अवदेवता हो सही। उन्हीं से हमारा काम बनेगा। दुख का विषय है कि हमारे देश में मोह बेकार खड़ा रहता है, उसे नित्य दानाचारा दिये जाते हैं, फिर भी उससे कुछ काम नहीं लेते। देखो वे ब्राह्मणों को भूदेव कहते हैं, उनके चरणों को धूल लेते हैं, उन्हें दान-दक्षिणा भी देते हैं, पर यह सब की सब शक्ति योंही नष्ट होरही है, किसी काम नहीं आती। उनको क्षमता यदि पूर्णरूप से उनके हाथ में दी जाय तो हम अपने असाध्य कामों को भी साधन करसकें। संसार में ऐसे लोगों की संख्या बहुत है जिन्हें नियमित चरणों की धूल न मिले तो उनसे कोई काम नहीं होता। ऐसे लोगों से काम लेने के लिए मोह बड़ी भारी शक्ति है। इसी शक्ति के तोरों को हमने इतने दिन अश्वालय में रखकर पैनाया है, आज उन्हें छोड़ने का समय आया तो क्या निकालकर कूड़े पर फेंक दें?"

पर निखिल को यह सब बताना बड़ा कठिन है। वह सत्य का ऐसा भारी पक्षपात करता है मानों सत्य भी कोई एक विशेष पदार्थ है। मैं उसे बार बार समझा चुका हूँ कि जहाँ मिथ्या सत्य माना जाता है वहाँ मिथ्या ही सत्य है। इसी बात को समझकर हमारे पुरुषाओं ने कहा है कि अज्ञानियों के लिए मिथ्या ही सत्य होता है। यही मिथ्या उनका धर्म है। यदि वे इससे हट जाँय तो मानो सत्य से हट गये। जो लोग देश की प्रतिमा को सत्य समझ कर पूज सकते हैं उनके लिए वह प्रतिमा सत्य का ही काम देगी। हमारा जैसा स्वभाव और संस्कार है उससे हम साधारण

देश को नहीं समझ सकते पर देश की प्रतिमा की अनायास पूजा कर सकते हैं। जब यह बात मानली गई तो जो लोग देश की सेवा करना चाहते हैं वे इसे ध्यान में रख कर अपना काम आरम्भ करेंगे।

निखिल ने अकस्मात् उत्तेजित होकर कहा, "तुम सत्य के साधन की शक्ति स्वयं खो बैठे हो, इसलिए मोहजाल रचकर अपना मतलब पूरा करना चाहते हो। उपयुक्त कार्य के सरल मार्ग को छोड़कर देश को देवता बनाकर वरदान के लिए हाथ फैलाये बैठो हो।"

मैंने कहा, "असाध्य का साधन करना चाहते हैं, इसी लिए देश को देवता बनाने की ज़रूरत है।"

निखिल ने कहा, "अर्थात् साध्य के साधन में तुम्हारा मन नहीं लगता। और सब कुछ यों ही पड़ा रहे, केवल फल जो मिले वह आश्चर्यजनक हो।"

मैंने कहा, "निखिल, तुम जो कुछ कह रहे हो इस का नाम उपदेश है। किसी विशेष अवस्था में इसकी ज़रूरत पड़ सकती है, पर मनुष्य के जब दाँत निकलते हैं तो उस से काम नहीं चलता। मैं अपनी आँखों से स्पष्ट देख रहा हूँ कि जो फ़सल हमने कभी स्वप्न में भी नहीं बोई वही आज हर खेत में लहलहा रही है—यह किसका प्रताप है? आज जिस देश को हम देवता कहते हैं, जिसे अपने मन में प्रत्यक्ष देख रहे हैं, उसी को मूर्ति को चिरन्तन बना देना इस समय की प्रतिभा का काम है। प्रतिभा तर्क नहीं करती, प्रतिभा सृष्टि करती है। आज देश के मन में जो विचार हैं मैं उसी को प्रगट करूँगा, उसी का आकार गढ़ूँगा

मैं घरघर कहता फिरूंगा देवी ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिये हैं, देवी पूजा चाहती हैं। मैं ब्राह्मणों से जाकर कहूँगा, देवी के पुजारी तुम्हीं हो—वह पूजा बन्द होगई है, इसीलिए तुम्हारा पतन हुआ है। तुम कहोगे तू झूठ बोल रहा है! पर, नहीं यह सत्य है—मेरे मुँह से यह बात सुनने के लिए हमारे देश के लाखों आदमी श्वास लगाये बैठे हैं इसी कारण मैं कहता हूँ यह बात सत्य है; यदि मैं अपनी वाणी प्रचार कर सका तो तुम भी उसका आश्चर्यजनक फल देख लोगे।"

निखिल ने कहा, "मुझे जीना ही कितने दिन है! तुम जो फल देश से हाथ में दोगे उसका भी एक और फल है, उसका इस समय देखना बहुत कठिन है।"

मैंने कहा, "मुझे तो आज ही के दिन का फल चाहिए, उसी फल से मुझे मतलब है।"

निखिल ने कहा, "मुझे कल का फल चाहिए, उस फल से सभी को मतलब है।"

बात यह है कि भारतवासियों का जो एक बड़ा ऐश्वर्य-कल्पना-वृत्ति है उसका एक बड़ासा अंश निखिल के भाग में भी आया था। पर बाहर की ओर से धर्मवृत्ति का इतना अधिक संचार हो गया कि वह कल्पनावृत्ति बिलकुल दबकर रहगई। भारतवर्ष में यह जो दुर्गा जगद्धात्री की पूजा की रचना बंगालियों ने की है इससे उन्होंने अपना आश्चर्यजनक परिचय दिया है। मैं निश्चित होकर कह सकता हूँ कि यह देवी पोलिटिकल (राजनीतिक) देवी है। मुसलमानों के शासन काल में बंगालियों ने जिस देश-शक्ति से शत्रुजय का वरदान माँगा था ये दोनों देवी उसी की दो विभिन्न मूर्ति हैं। साधना

का ऐसा अद्भुत बाह्य रूप भारतवर्ष में और किसी जाति ने नहीं गढ़ा।

निखिल की कल्पनादृष्टि बिल्कुल ही अन्धी हो गई है, जभी तो वह मुझसे अनायास कहा करता है कि मुसलमानों के शासनकाल में मराठों ने और सिक्खों ने तो अपने हाथ में अस्त्र लेकर सफलता की कामना की थी, पर बंगालियों ने अपनी देवी के हाथ में अस्त्र देकर मन्त्र पढ़कर वरदान माँगा। पर देश तो देवी नहीं है इसीलिए फल के स्थान में केवल भैंसे और बकरों का मुण्डपात ही हुआ किया! जिस दिन कल्याण के मार्ग में हम देश का कार्य करने लगेंगे उसी दिन हमें अपने सत्यदेवतासे सत्यफल मिलेगा।

मुश्किल यह है कि निखिल की बातें काग़ज़ पर लिखी हुई अच्छी मालूम होती हैं—पर मेरी बातें काग़ज़ पर लिखने के लिए नहीं हैं, लोहे की खन्ती से देश का हृदय चीर चीर कर लिखने के लिए हैं। क़लम और रोशनाई से पण्डित जिस प्रकार कृषितत्व लिखता है, उस प्रकार नहीं बल्कि हल की फाली से किसान जिस प्रकार धरतीकी छाती चीरकर अपनी कामना अंकित करता है उसी प्रकार।

उस दिन जब विमला से मिला तो मैं कहने लगा, "यदि मैं तुम्हें न देखता तो अपने समस्त देश को भी एक करके न देखपाता। यह बात मैंने तुमसे कई बार कही है पर न जाने तुम इसका ठीक अर्थ समझ सकती हो या नहीं। यह बात समझना बहुत कठिन है कि देवता देवलोक में तो अदृश्य रहते हैं पर मर्त्यलोक में साक्षात् दर्शन देते हैं।"

बिमला ने मेरी ओर दबी हुई दृष्टि से देखकर कहा, "तुमने जो कहा है वह मैं खूब अच्छी तरह समझ गई हूं।" यह पहली बार बिमला ने मुझे "आप" न कहकर "तुम" कहा है।

मैंने कहा, "अर्जुन जिन कृष्ण को अपना साधारण सारथी समझता था उनका एक विराटरूप भी था, वह भी एक दिन अर्जुन ने देखा था—उसी समय उसने मानों पूर्ण सत्य देख लिया था। मैंने अपने समस्त देश में तुम्हारा वही विराटरूप देखा है। तुम्हारे गले में मुझे गंगा ब्रह्म-पुत्र का सत-लड़ा हार दिखाई पड़ता है, तुम्हारी श्यामवर्ण आँखों की काजल लगी पलकें नदी के उस पार की वनरेखा में दिखाई पड़ती हैं, अघपके धान के खेतों में तुम्हारी धूपछाएं के रंग की साड़ी उड़ती हुई मालूम होती है और तुम्हारा निष्ठुर तेज मानों जेठ की धूप से तपता हुआ आकाश है जो मरु-भूमि के सिंह के समान जीभ निकाले हा हा करके हाँप रहा है! देवी ने जब इस प्रकार विराटरूप में अपने भक्त को दर्शन दिया है तो मैं भी उसकी पूजा का सारे देश में प्रचार करूंगा, तभी हमारे देश के लोगों को नवीन जीवन प्राप्त होगा। 'हर'क मन्दिर में हो मूरत तुम्हारी!' पर इस बात को सब अच्छी तरह नहीं समझते। इसीलिए मेरा संकल्प है कि समस्त देश को निमन्त्रण देकर अपनी देवी की मूर्त्ति अपने हाथ से तैयार करूँ और उसे इस प्रकार प्रति-ष्ठित करूँ कि फिर लेश-मात्र भी अविश्वास बाकी न रहे। तुम मुझे यही वर दो, ऐसा ही तेज प्रदान करो!"

बिमला की आँखें बन्द हो गईं। वह जिस आसन पर

बैठी थी उसी के साथ एक होकर मानों पत्थर की मूर्त्ति के समान स्तब्ध होकर रह गई। मैं ज़रा भी और कुछ कहता तो वह बेसुध होकर गिर पड़ती। कुछ देर बाद उसने आँखें मलते हुए जो कुछ बेजोड़ शब्दों में कहा उसका सारांश यह था, "हे प्रलय के पथिक, तुम अपने पथ पर दृढ़ता से जा रहे हो, ऐसी किसकी मजाल है कि तुम्हारे मार्ग में बाधा डाले? मैं देख रही हूँ कि तुम्हारी इच्छा का वेग आज कोई रोक न सकेगा। राजा आकर तुम्हारे चरणों में अपना राजदण्ड डाल देंगे, धनी आकर तुम्हारे सामने अपना भाण्डार खाली कर देंगे, और जिनके पास और कुछ नहीं है वे केवल प्राण देने के लिए ही तुम्हारी ओर खिंचे चले आयेंगे! विधि-विधान का, अच्छे-बुरे का, सब विचार धरा रहेगा! मेरे राजा, मेरे देवता, मैं नहीं जानती कि तुमने मुझमें क्या देखा है, पर मैं अपने इस हृत्पद्म के ऊपर तुम्हारा विश्वरूप अवश्य देख रही हूँ। उस के आगे मेरी क्या बिसात है! बस अब सर्वनाश हुआ ही रक्खा है, उसकी शक्ति कैसी प्रचण्ड है! यह मेरा संहार करके रहेगी, इससे बचाव नहीं, कोई बचाव नहीं, मेरी छाती फटी जाती है।"

यह कहते कहते वह कुरसी से धरती पर गिर पड़ी और मेरे दोनों पाँव ज़ोर से पकड़ कर बिलख बिलख कर रोने लगी। सिसकियों और आँसुओं का तार बँध गया।

यही हिप्नाटिज़्म * है! यही पृथ्वी को वशीभूत करने

* Hypnotism उस मानसिक दशा को कहते हैं जिसमें मनुष्य अपने आप कुछ नहीं कर सकता और बिल्कुल दूसरे के बस हो जाता है।

की शक्ति है। उपाय उपकरण कुछ नहीं, जो कुछ है यही सम्मोहन है! कौन कहता है, 'सत्यमेव जयते!' जय सदा मोह की होती है। बङ्गाली इस बात को समझ गये थे, तभी तो बङ्गालियों ने दश भुजा की पूजा आरम्भ की। तभी तो उन्होंने सिंहवाहिनी की मूर्त्ति तैयार करली, वही लोग आज फिर मूर्त्ति तैयार करेंगे, और केवल सम्मोहन से विश्व को जीतकर दिखादेंगे—वन्देमातरम्।

धीरे धीरे हाथ के सहारे से मैंने विमला को उठाकर ऊपर बिठा दिया। इस उत्तेजना का नशा उतरने से पहले ही मैंने कहा, "देशमें अपनी पूजा प्रतिष्ठित करने का भार माता ने मेरे ऊपर डाला है, पर मुझ सा निर्धन दरिद्र मनुष्य यह काम कैसे कर सकेगा?"

विमला का मुँह अभी तक तमतमा रहा था, उसके नेत्र अभी तक सजल थे। उसने गद्गद् स्वर से कहा, "तुम निर्धन कैसे हो? जिस के पास जो कुछ है वह सब तुम्हारा है। मेरा गहने से भरा बक्स और किसके लिए है? ये हीरे मोती सब तुम्हारे चरणों में अर्पण हैं, मुझे कुछ नहीं चाहिये।"

इससे पहले और एक बार विमला ने गहना देना चाहा था। मुझे किसी बात में संकोच नहीं होता पर इस बात में हुआ। सोचने पर इसका कारण भी समझ में आगया। सदा पुरुष ही स्त्रियों को गहना देकर सँवारते रहे हैं, उन के हाथ से गहना लेना पौरुष के विरुद्ध जान पड़ता है।

परन्तु इस समय अपना विचार छोड़ देना चाहिए।

में थोड़े ही ले रहा हूँ। यह माता की पूजा है, सब इसी पूजा में लगेगा। यह पूजा ऐसे धूम धड़के से होगी कि पहले कभी किसी ने न देखी हो! यह पूजा सदा के लिए देश के इतिहास में प्रतिष्ठित हो जायगी। इसी पूजा को मैं अपने जीवन का श्रेष्ठ दान समझकर देश को दे जाऊँगा। मूर्ख देवता की साधना करते हैं पर सन्दीप देवता की सृष्टि करेगा।

ये तो रहीं बड़ी बातें, पर अब छोटी बातें भी छेड़नी पड़ेंगी। इस समय कम से कम तीन हज़ार न होने से तो काम ही न चलेगा; पाँच हज़ार हों तो ज़रा सुभीता रहे। पर इतनी बड़ी उत्तेजना के मुँह में यह रुपये पैसे की बात क्या शोभा देगी? पर क्या किया जाय और समय भी तो नहीं है।

यही सोचकर मैं संकोच की छाती पर पैर रख कर खड़ा होगया और कह उठा, "रानी, इस ओर तो भाण्डार ख़ाली होने आया, अब काम बन्द हुआ ही चाहता है।"

यह सुनते ही विमला के मुख पर वेदना की झलक दिखाई पड़ी। मैं समझ गया विमला सोच रही है कि अब भी वही पचास हज़ार की आवश्यकता है। इसी चिन्ता से उसकी छाती पर पत्थर सा रक्खा है—जान पड़ता है रातभर सोचती रही है पर कोई उपाय नहीं सूझा। प्रेम की पूजा का और तो कोई उपचार उसके हाथ में नहीं, अपने हृदय को चीर कर तो मेरे सामने रख नहीं सकती, इसलिए उसे इच्छा है कि यह सब रुपया

अपने अवरुद्ध आदर-प्रेम का प्रतिरूप बनाकर मुझे अर्पण करदे। किन्तु कोई उपाय न पाकर उसके आत्मा को बड़ा दुख हो रहा है। उसका यह कष्ट देख कर मेरे हृदय पर भी चोट सी लगती है। अब वह पूर्णरूप से मेरी है, अब उसे क्यों व्यर्थ कष्ट दिया जाय, अब तो उसके बचाव का उपाय सोचना चाहिए।

मैंने कहा, "रानी इस समय पूरे पचास हज़ार की ज़रूरत नहीं है, मैंने हिसाब लगा कर देखा है कि पांच हज़ार ही काफ़ी होंगे। बल्कि तीन हज़ार भी हों तो इस समय तो काम चल ही जायगा।"

विमला का चेहरा तुरन्त खिल उठा। उसने मानों एक संगीतस्वर में कहा, "पांच हज़ार मैं तुम्हें अभी लाये देती हूँ।"

राधिका ने ऐसे ही स्वर में यह गीत गाया था—

बंधुर लागि केशे आमि परब एमन फूल,
स्वर्गे मर्त्य तिन भुवने नाइक जाहार मूल।
बाँशिर ध्वनि हाओयाय भासे,
सबार काने बाजबे ना से,
देख लो चेये यमुना ऐ छापिये गेल कूल।

[प्रियतम के लिए मैं अपने बालों में ऐसे फूल पहनूंगी कि जिनका स्वर्ग मर्त्य इत्यादि तीनों लोकों में कहीं मूल्य नहीं है। बंशी की ध्वनि हवा में बह रही है पर सब के कान उसे न सुन सकेंगे। यह देखो, यमुना का जल किनारों के बाहर उमड़ आया।]

विमला का भी बिल्कुल यही सुर था और यही गीत और

बात भी एक ही थी—"पाँच हज़ार तुम्हें लाये देती हूँ।" "बंधुर लागि केशे आमि परव एमन फूल!" वंशी के भीतर का छेद बारीक होने और चारों ओर से हवा को रोके रहने ही से वंशी का ऐसा सुर है—अधिक लोभ के दबाव से यदि वंशी को तोड़ ताड़ कर चपटा कर डालता तो आज सुनाई पड़ता, "क्यों, इतने रुपयों को तुम क्या करोगे? मैं स्त्री ठहरी इतने रुपये का प्रबन्ध करूँगी कैसे?" इत्यादि इत्यादि। राधिका के गीत के साथ उसका एक अक्षर भी न मिलता। अभी तो कहता हूँ, मोह में ही सत्य है, इसी में वंशी का सुर है, और मोह को छोड़कर जो कुछ है वह टूटी हुई वंशी के भीतर का छेद है—निखिल ने केवल इसी छेद की शून्यता का मज़ा कुछ कुछ चक्खा है, जैसा कि उसके चेहरे से ही मालूम होता है, मुझे भी दुख अवश्य होता है, पर निखिल का गौरव इसमें है कि वह सत्य चाहता है और मेरा गौरव इसमें है कि मैं यथाशक्ति मोह को हाथ से न खसकने दूँगा। यादशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादशी—अतएव इस बात पर दुख करने से क्या होगा?

विमला के मन को उसी ऊपर की हवा में उड़ाये रखने के लिए रुपये की बात छोड़ फिर महिषमर्दिनी की पूजा का उपाय सोचने लगा। पूजा कब और किस प्रकार होनी चाहिये? निखिल के इलाके में रुईमारी गाँव है, वहाँ अगहन में जो हुसेनगाज़ी का मेला होता है उसमें हज़ारों, लाखों आदमी दूर दूर से आते हैं। यदि वहीं पूजा का प्रबन्ध हो सके तो खूब जमाव रहेगा। विमला

भी इस बात को पसन्द करके खूब उत्साहित हो उठीं। उसने सोचा कि वहाँ तो न कपड़े जलेंगे न किसी के घर में आग दी जायगी, अतएव ऐसे अच्छे प्रस्ताव में निखिल को भी कुछ आपत्ति न होगी। मैं मन ही मन हँसा— नौ बरस दिन रात एक साथ काटने पर भी ये दोनों एक दूसरे को बस इतना ही पहचानते हैं! जान पड़ता है घर गृहस्थी की बातों में ही वास्ता पड़ा है, इसलिये एक बाहरी घटना का सामना होते ही दोनों के पाँव डगमगा गये। नौ बरस से दोनों समझते आये थे कि घर और बाहर दोनों मानों एक ही वस्तु हैं, पर अब समझ में आने लगा है कि जो चीज़ें इतने दिन अलग रही हैं वे अकस्मात् कैसे एक हो सकती हैं?

जो हो, जो लोग भूल में पड़े हैं वे धीरे धीरे अपनी भूल पहचान लें, इस विषय में मुझे अधिक चिन्ता का ज़रूरत नहीं है। बिमला की उद्दीपना के वेग से बेलून के समान अधिक समय तक उड़ाये रखना असम्भव है, अतएव जो काम करना है शीघ्र कर लेना चाहिये। बिमला कुरसी से उठकर द्वार तक पहुँची थी कि मैं बोल उठा, "रानी, तो फिर रुपया कब ...?"

बिमला फिर कर खड़ी हो गई और बोली, "अगले महीने के आरम्भ में ...।"

मैंने कहा, "नहीं देर होने से काम नहीं चलेगा।"

"तुम्हें कब चाहिये?"

"कल ही।"

"अच्छा कल ही ला दूँगी।"

निखिलेश की आत्म-कथा ।

मेरे विषय में समाचारपत्रों में लेख और पत्र निकलने लगे हैं—सुना है अब कार्टून भी निकाले जायेंगे। रसिकता का स्रोत खुल पड़ा है, साथ साथ मिथ्या और झूठ की धारा भी बह रही है और देश अत्यन्त पुलकित हो रहा है। जो लोग होली खेलने में मस्त हैं वे जानते हैं कि गंदे जल की पिचकारी तो हमारे हाथ में है—मैं साधारण मनुष्य रास्ते में एक ओर बच कर चल रहा हूँ पर मेरे सफेद कपड़ों के बचने का अब कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता।

समाचारपत्र पढ़ने से विदित होता है कि मेरे इलाके में छोटे बड़े सब स्वदेशी के लिए उत्सुक हो रहे हैं, केवल मेरे ही डरके मारे कुछ नहीं कर सकते, दो एक साहसी व्यक्तियों ने स्वदेशी माल चलाने का प्रयत्न किया भी, पर मैंने ज़मींदारी चालों से उन्हें वहाँ का वहीं दबा दिया। पुलिस से मेरा साज बाज है, मेजिस्ट्रेट से चुपके ही चुपके पत्र सम्वाद जारी है और सम्पादक महाशय को विश्वस्त सूत्र से ख़बर मिली है कि पैतृक ख़िताब में एक स्वोपार्जित ख़िताब जोड़ने का जो प्रयत्न मैंने किया है वह व्यर्थ न जायगा। लिखा है, "स्वनामा पुरुषो धन्यः पर हम जानते हैं कि हमारे देश के कुछ लोग खिताब पाने की चेष्टा ही में लगे रहते हैं।" मेरा नाम खोल कर नहीं दिया पर अस्पष्टता के भीतर से वह और भी स्पष्ट होकर दिखाई पड़ रहा है।

दूसरी ओर देशभक्त हरिकुण्ड के गुणों का बखान हो रहा है—समाचार पत्रों में चिट्ठी पर चिट्ठी निकल रही हैं। लिखा है कि माता के ऐसे सेवक यदि और दो चार होते तो अब तक मैनचेस्टर के पुतलीघर अपनी आग में आप ही भस्म होकर रह गये होते!

हाल ही में मेरे नाम लाल रोशनाई से लिखी हुई एक चिट्ठी आई है। उसमें बताया है कि कहाँ कहाँ, कौन कौन से लिवरपूल के उपासक ज़मींदारों की हवेलियाँ फूंक दी गई हैं। इसके अतिरिक्त लिखा है कि पावक भगवान ने अब यह पावन कार्य आरम्भ कर दिया है, अब यह व्यवस्था हो रही है कि जो लोग माता की सन्तान नहीं हैं वे उसकी गोद में लद कर उसे व्यर्थ कष्ट न दें। अन्त में एक बनावटी नाम दे दिया है।

मैं जानता हूँ यह सब यहाँ के नवयुवक विद्यार्थियों की रचना है। मैंने उनमें से दो एक को बुलाकर यह चिट्ठी दिखाई। बी० ए० के विद्यार्थी ने गम्भीर भाव से कहा, "यह तो हमने भी सुना कि एक दल इसी उद्देश से संगठित हुआ है कि स्वदेशी के मार्ग में जितनी बाधाएँ हैं सबको हटा कर दूर करदे, और ये लोग अपने उद्देश को पूरा करके रहेंगे।"

मैंने कहा, "यदि देश का एक आदमी भी इन लोगों की धौंस में आगया तो मैं यही समझूंगा कि सारे देश ने हार मानली।"

उनमें से एक महाशय जो इतिहास के एम० ए० थे बोले, "आपका अभिप्राय मैं नहीं समझा।"

मैंने कहा, "हमारा देश देवता से लेकर सिपाही तक सभी

से डरते डरते अधमरा हो चुका है, आज तुम स्वतन्त्रता का नाम लेकर यदि फिर उसी हौवे के भय से काम निकालना चाहो, यदि अत्याचार द्वारा देश को अयथार्थ कापुरुषता के ऊपर लगाना चाहो, तो देश के सच्चे प्रेमी कदापि इस भयशासन के सामने सिर नहीं नवा सकते।"

इतिहास के एम० ए० ने कहा, "ऐसा कौन सा देश है जहाँ राज्यशासन भय का शासन नहीं है ?"

मैंने कहा, "इस भयशासन की सीमा कहाँ तक है यही मालूम करके हम किसी देश की स्वाधीनता को नाप सकते हैं। यदि भय का शासन केवल चोरी, डाकों और अन्य इसी प्रकार के अन्यायों के प्रति काम में लाया जाता है तो हम कह सकते हैं कि इस शासन का अभिप्राय यही है कि प्रत्येक मनुष्य को अन्य मनुष्यों के अत्याचार से स्वाधीन रक्खा जाय। पर लोग क्या खाएंगे, क्या पहिनेंगे, कौनसी दुकान से सौदा लेंगे ये सब बातें भी यदि भयशासन द्वारा निश्चित की जायें तो मानो मनुष्य की अपनी इच्छा को बिलकुल जड़ मूल से उखाड़ कर फेंक दिया। यह तो मनुष्य को मनुष्यत्व से वंचित रखना हुआ।"

इतिहास के एम० ए० ने कहा, "क्या और देशों में ऐसी व्यवस्था नहीं है जिससे व्यक्तिगत इच्छा का दमन होता हो ?"

मैंने कहा, "कौन कहता है नहीं है, पर गुलामी की प्रथा जितनी जहाँ प्रचलित रही है उतना ही मनुष्यत्व का सत्यानाश हुआ है।"

एम० ए० ने कहा, "यदि गुलामी हर जगह प्रचलित

है तो वहां मनुष्य का धर्म है, इसी में मनुष्यत्व है।"

बी० ए० के विद्यार्थी ने कहा, "उस दिन सन्दीपबाबू ने इस सम्बन्ध में जो दृष्टान्त दिया था वह बहुत ही ठीक था! यहीं जो आपके पड़ोसी हरिशकुण्डु ज़मींदार हैं, सन्दीपबाबू कहते थे, यदि उनकी सारी रियासत झकोड़ डाली जाय तो एक छटांक भी विदेशी नमक न निकलेगा। इसका कारण क्या है? यही कि उन्होंने अपनी धाक जमा रक्खी है;—जो स्वभाव से गुलाम हैं उनके लिये योग्य प्रभु का अभाव ही सब से बड़ी विपत्ति है।"

इसके बाद एक लड़का जो एफ० ए० में फ़ेल होचुका था बोला, "क्या आपने चक्रवर्ती ज़मींदार के एक रैयत का हाल नहीं सुना? वह कायस्थ था और स्वदेशी के विषय में किसी तरह अपने ज़मींदार का कहना नहीं मानता था। चक्रवर्ती ने मुकद्दमेंबाज़ी शुरू करदी, अन्त में मामला चलते चलते उसका यह हाल होगया कि भूखा मरने लगा। जब दो दिन तक घर में चूल्हा नहीं जला, तो अपनी स्त्री का चाँदी का गहना बेचने निकला। यही एक उपाय बाकी था। ज़मींदार के डर के मारे गाँव में किसी आदमी ने उसका गहना नहीं लिया। अन्त में ज़मींदार के नायब ने कहा, मैं ले सकता हूँ पर पाँच रुपये से अधिक न दूँगा। गहना तीस रुपये से कम का न होगा। पर उसकी तो जान को बनी थी, जब पाँच ही रुपये में राज़ी हो गया तो नायब ने उसके हाथ से गहने की पोटली लेकर कहा, "अच्छा जाओ ये पाँच रुपये तुम्हारे लगान में जमा हो जायेंगे।" यह बात सुनकर हमने सन्दीपबाबू से कहा

कि चक्रवर्ती को बायकाट कर देना चाहिये। वह बोले, 'यदि ऐसे सजीव और सबल लोगों को त्याग दोगे तो क्या मरघट से मुर्दे लाकर देश का काम कराओगे? यह लोग अपनी ज़िद के पक्के हैं, यही प्रभुत्व के योग्य हैं। दुर्बल लोगों को इन्हीं की इच्छा के अनुसार चलना पड़ता है।' इन लोगों की आपके साथ तुलना करते हुए सन्दीप बाबू ने कहा था, 'आज चक्रवर्तियों के इलाक़े में एक व्यक्ति ऐसा नहीं है जो स्वदेशी के विरुद्ध चूँ भी कर सके—और निखिलेश हज़ार बार भी चाहें तो स्वदेशी नहीं चला सकते।'"

मैंने कहा, "मैं स्वदेशी से भी एक बड़ी वस्तु चलाना चाहता हूँ; इसी कारण मेरे लिए स्वदेशी चलाना कठिन है। मैं तो सूखी लकड़ी नहीं चाहता, सजीव वृक्ष चाहता हूँ। पर मेरे काम को बहुत समय चाहिये।"

इतिहास के विद्यार्थी ने हँसकर कहा, "आपको न सूखी लकड़ी मिलेगी न सजीव वृक्ष। सन्दीपबाबू ठीक कहते हैं कि जो कुछ मिलता है सदा छीनकर लेने से मिलता है। यह बात ज़रा देर में समझ में आती है क्योंकि यह स्कूल की शिक्षा के बिल्कुल विरुद्ध है। मैंने अपनी आँखों से देखा है कि कुण्डु ज़मींदार का गुमाश्ता किस प्रकार रुपया उगाता है। एक बार एक मुसलमान रैयत के पास देने को कुछ नहीं था, ऐसी भी कोई चीज़ नहीं थी जिसे बेचकर लगान चुका दे। केवल उसकी युवती स्त्री थी। गुमाश्ते ने कहा तुमें अपनी बहू का किसी और से निकाह करके लगान देना पड़ेगा। निकाह करनेवाले बहुत मिल गये

और रुपया अदा हो गया। पति के सजल नेत्र देखकर मुझे ऐसा दुख हुआ कि रातभर नींद नहीं आई। पर कितना ही कष्ट हो जब रुपया वसूल करना ही ठहरा तो जो आदमी ऋणी की खाल को बेचकर वसूल कर सकता है वह मेरे निकट मनुष्यत्व में मुझसे बड़ा है—हम से यह नहीं होता, हमारी आँखों में आँसू भर आते हैं, इससे किया कराया सब मिट्टी हो जाता है। देश का कोई उद्धार कर सकता है तो ऐसे ही लोग कर सकते हैं जैसा यह गुमाश्ता है, जैसे कुण्डु और चक्रवर्ती ज़मींदार हैं!"

यह सुनकर मैं स्तम्भित हो गया और बोला, "यदि ऐसा है तो इन गुमाश्तों और कुण्डु चक्रवर्ती सरीखे के ज़मींदारों के हाथ से देश को बचाना ही मेरा परम उद्देश है। गुलामी का जो ज़हर हमारी हड्डियों में घुसा हुआ है वह जब फूटकर निकलेगा तो अवश्य सांघातिक क्रूरता का रूप धारण करेगा। खुद होकर जो मार खाती है वह सास होकर मारती भी बहुत है। भयशासन का मज़ा चखते चखते तुम उसी को धर्म समझने लगे हो। इसीलिए दूसरों पर अत्याचार करना तुम अपना कर्त्तव्य समझ रहे हो। इसी कायरता के साथ, इसी भयानक क्रूरता के साथ मेरी लड़ाई है!"

मेरी ये बातें अत्यन्त सरल थीं—किसी सरल बुद्धि के आदमी से कहता तो क्षणभर में समझ लेता पर हमारे देश के एम० ए०, बी० ए० जो अपनी ऐतिहासिक बुद्धि पर इतने इतराते हैं सत्य को तोड़ने मड़ोड़ने के सिवा और कुछ नहीं जानते!

इधर कुछ ही दिन से पंचू की जाली मामी के विषय में भी सोचता रहता हूँ। उसके दावे को अप्रमाणित करना कठिन है। सच्ची बात के गवाह कम होते और संभव है कि एक भी न हो, पर जो बात कभी नहीं हुई उसके लिए प्रयत्न करने पर गवाहों की कमी नहीं रहती। मैंने जो पंचू का मौरूसी हक़ खरीद लिया है उसी को रद्द करने के लिए यह चाल चली गई है।

और कोई उपाय न देखकर मैं सोच रहा था कि पंचू को अपने ही इलाक़े में ज़मीन देकर उसके घरबार का ठिकाना कर दूँ। पर मास्टर साहब ने कहा कि हम अन्याय से इस प्रकार चुपचाप हार न मानेंगे, मैं इसमें स्वयं कुछ प्रयत्न करूंगा।

"आप स्वयं प्रयत्न करेंगे?"

"हाँ, मैं स्वयं करूँगा।"

यह सब अदालत का मामला है, मास्टर साहब इसमें क्या करेंगे मेरी कुछ समझ में नहीं आया। संध्या समय वह रोज़ मुझ से मिला करते थे पर उस दिन संध्या को नहीं मिले। ख़बर मंगाई तो मालूम हुआ कि वह अपना कपड़ों का बक्स और बिस्तर लेकर कहीं बाहर गये हैं, नौकरों से केवल यही कह गये हैं कि दो चार दिन में लौट कर आवेंगे। मैंने सोचा कि वे शायद गवाह इकट्ठे करने पंचू के मामा के घर गये होंगे। पर मैंने समझ लिया कि यदि ऐसा है तो उनकी चेष्टा बिल्कुल व्यर्थ रहेगी। जगद्धात्री की पूजा, मोहर्रम और रविवार मिलाकर उनके स्कूल को कई दिन की छुट्टी थी, इसलिए उनका स्कूल से भी कुछ पता न लगा।

हेमन्त ऋतु में तीसरे पहर जैसे दिन का प्रकाश धीमा पड़ने लगता है वैसे ही मन का रंग भी ढलना शुरू हो जाता है। जिस समय प्रेयसी के श्यामवर्ण नेत्रों का स्मरण करानेवाली गोधूलि जगत् के ऊपर आकर छा जाती है उस समय मेरा मन आपसे आप कहने लगता है कि काम काज मनुष्य का आदि अन्त नहीं है; मनुष्य निरा मज़दूर नहीं है, चाहे मज़दूरी सत्य और धर्म ही की हो:—वह चिन्ता-रहित तारों के धीमे प्रकाश में छुट्टी पानेवाला मन, वह अन्धकार के अमृत में डूब मरनेवाला मन, अरे निखिल, क्या तू उसे सदा के लिए खो बैठा? समस्त संसार की असंख्यता भी जिस मनुष्य का दिल न बहला सके, जो यहां भी संग के लिए भटकता हो, उसकी संगहीनता कैसी भयानक है!

उस दिन संध्या समय मुझे कुछ काम नहीं था, काम में मन भी नहीं लगता था, मास्टर साहब भी नहीं थे। शून्य हृदय जब सहारे के लिए बहुत व्याकुल होने लगा तो मैं घर के अन्दर वाले बाग़ में चला गया। मुझे चन्द्रमल्लिका के फूलों का बड़ा शौक़ है। मैंने विभिन्न रंगों के बहुत से पौदे बाग़ में लगवाये थे। जब सब पौदों पर एक साथ फूल आते थे तो जान पड़ता था मानों हरियाली के समुद्र की लहरों पर रंग विरंग के झाग उठे हैं। मैं बहुत दिन से बाग़ में नहीं गया था, आज सोचा कि चलो चल कर अपनी विरहिनी चन्द्रमल्लिका का ज़रा विरह मिटा दूं।

जब बाग़ में पहुंचा तो देखा कि पूर्णिमा का चांद ज़रा ज़रा बाहर की दीवार के ऊपर उठा है। दीवार के नीचे बिलकुल

अन्धेरा था, उसी के ऊपर से चाँद की किरणें तिरछी होकर पश्चिम की ओर पड़ रही थीं। मुझे जान पड़ा मानों चाँद ने अकस्मात् पीछे से आकर अन्धकार की आँखें बन्द करली हैं और फिर चुपके चुपके खड़ा हँस रहा है।

जब चन्द्रमल्लिका की कतार के पास पहुँचा तो देखा कि कोई घास पर चुपचाप लेटा हुआ है। देखते ही दिल धड़कने लगा। मेरे निकट पहुँचते ही वह भी चौंक कर झटपट उठ बैठी।

अब क्या किया जाय? मैंने सोचा कि यहीं से लौट कर चला जाऊँ, बिमला भी अवश्य सोच रही थी कि उठकर चली जाऊँ या यहीं खड़ी रहूँ। पर वहाँ ठहरना जैसा मुश्किल था वैसा ही चला जाना भी था। मेरे कुछ निश्चय करने से पहिले ही बिमला उठ खड़ी हुई और सिर पर धोती खींच कर घर की ओर चलदी।

उसी क्षणभर में बिमला के मन का दुख मानों मेरे सामने मूर्त्तिमान होकर खड़ा होगया। उसी क्षणभर में मेरे अपने मन का दुख न जाने कहाँ चला गया। मैंने पुकारा "बिमला।"

वह चौंक कर खड़ी होगई, पर अब भी उसने मेरी ओर फिर कर नहीं देखा। मैं उसके सामने जाकर खड़ा हो गया। उसके ऊपर छाया थी, मेरे मुँह के ऊपर चाँदनी पड़ रही थी। उसके हाथों की मुट्ठी बँधी हुई थी और आँखें नीचे की ओर झुकी थीं। मैंने कहा, "बिमला, मैं अपने इस पिंजड़े में तुम्हें अब क्यों व्यर्थ बन्द रक्खूं? मैं जानता हूं तुम्हें कितना कष्ट हो रहा है।"

विमला उसी प्रकार नीचे की ओर देखती रही और कुछ न बोली।

मैंने कहा, "यदि मैं तुम्हें इस प्रकार ज़बरदस्ती बाँध कर रक्खूंगा तो मेरा सारा जीवन एक लोहे की ज़ंजीर बन जायगा। मुझे क्या इसमें कुछ सुख मिल रहा है?"

विमला फिर भी चुप रही।

मैंने कहा, "मैं तुम से सच कह रहा हूँ मैंने तुम्हें बिल्कुल आज़ाद कर दिया। मैं तुम्हारा और कुछ नहीं हो सकता तो कम से कम तुम्हारे हाथ की हथकड़ी नहीं बनना चाहता।"

यह कह कर मैं बाहर की ओर चला आया। यह मेरी उदारता नहीं थी न उदासीनता ही थी। मैं जब तक मुक्ति दूंगा नहीं स्वयं भी मुक्ति नहीं पाऊँगा। जिसे गले का हार बनाना चाहता हूँ, उसे गले का बोझ बना कर नहीं रख सकता। अन्तर्यामी के सामने मैं हाथ जोड़ कर यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे सुख न मिले, न सही, मुझे दुख ही स्वीकार है पर मुझे इस प्रकार बाँधकर मत रक्खो। मिथ्या को सत्य मानकर रखना मानों अपना ही गला घोंटना है। मेरी इसी आत्महत्या से रक्षा करो!

बैठक में आकर देखा कि मास्टर साहब बैठे हैं। मैं भीतर के आवेग से विह्वल हो रहा था। मास्टर साहब को देख कर बिना कुछ और बात पूछे मैं एकदम कह उठा—"मास्टर साहब, मनुष्य के लिए स्वतंत्रता ही सब से बड़ी चीज़ है। उसके सामने और सब तुच्छ है, बिल्कुल तुच्छ है।"

मास्टर साहब मुझे इतना उत्तेजित देखकर अचम्भे में पड़ गए। वे कुछ न बोले, केवल मेरी ओर देखते रह गए।

मैंने कहा, "पुस्तक पढ़ने से कुछ ज्ञान नहीं होता। शास्त्रों में पढ़ा था, इच्छा ही बन्धन है, वही अपने को भी बांधती है और दूसरों को भी। किन्तु निरे शब्दों से कुछ समझ में नहीं आता। वास्तव में जिस समय चिड़ियों को पिंजड़े से छोड़ देते हैं उसी समय समझ में आता है कि चिड़िया ही ने हमें मुक्त कर दिया। मैं जब औरों को पिंजड़े में बंद करूँगा तो मेरे लिये मेरी इच्छा ही बन्धन हो जायगी और यह इच्छा का बन्धन लोहे की ज़ंजीर के बन्धन से भी कड़ा है। इसी बात को संसार में कोई नहीं समझता। सब समझते हैं कि संस्कार कहीं और करना पड़ेगा। पर सुधार और संस्कार की आवश्यकता अपनी इच्छा को छोड़कर और कहीं नहीं है, कहीं भी नहीं है!"

अकस्मात् मुझे ध्यान आया कि मास्टर साहब कई दिन बाद आये हैं और मुझे मालूम भी नहीं है कि कहाँ गये थे। मैंने लज्जित होकर उनसे पूछा, "आप कई दिन से थे कहाँ?"

मास्टर साहब बोले, "पंचू के घर।"

"पंचू के घर? चार दिन से वहीं थे?"

"हाँ, मैंने सोचा था जो औरत पंचू की मामी बन कर आई है उससे ज़रा बात चीत करके देखूं। मुझे देख कर पहले पहल उसे बड़ा अचम्भा हुआ। अच्छे ऊँचे

घराने का होकर भी कोई ऐसा अद्भुत हो सकता है, यह बात उसके किसी तरह समझ में नहीं आती थी। उसने देखा कि मैं तो रह ही पड़ा। इसके बाद उसे लज्जा होने लगी। मैंने उससे कहा, "मांजी मुझे तुम कितना ही बुरा भला कहो मैं यहाँ से न जाऊंगा। और यदि मैं रहूँगा तो पंचू को भी अवश्य रक्खूंगा; उसके ये माँ के बच्चे, सड़क पर मारे मारे फिरें यह तो मैं कभी न देख सकूँगा।" दो दिन तक तो मेरी बातें चुपचाप सुनती रही, न हाँ बोली न ना। पर आज सबेरे मैंने देखा कि अपना असबाब बाँध रही है। मुझसे बोली, "मैं वृन्दावन जाऊँगी, मुझे रास्ते का खर्च देदो। यह तो मैं जानता हूँ कि वृन्दावन नहीं जायगी, पर कुछ रुपया उसे अवश्य देना पड़ेगा। इसी लिए तुम्हारे पास आया हूँ।"

"अच्छा, जितना रुपया चाहिए दे दिया जायगा।"

"बुढ़िया मन की बुरी नहीं है। पंचू उसे पानी के बासन नहीं छूने देता, उसके भीतर आते ही हीं करके सिर हो जाता है, इसी बात पर उसके साथ रात दिन झगड़ा रहता था। पर उसने जब देखा कि मुझे उसके हाथ का खाने में कुछ आपत्ति नहीं है तो उसने मेरी बड़ी सेवा की। बड़ी अच्छी रसोई बनाती है। मेरे लिए पंचू के मन में जो कुछ भक्तिश्रद्धा थी वह इस बार रही सही जाती रही। पहले वह समझता था कि मास्टर साहब कम से कम सीधे सादे आदमी हैं, पर अब वह समझता है कि उन्होंने जो बुढ़िया के हाथ का खाया है, यह केवल उसे बस में करने की चाल है। संसार में चाल भी चलनी पड़ती है, पर

इस प्रकार कोई अपना धर्म थोड़े ही खो बैठता है। जो हो, अब तो जब बुढ़िया चली जायगी तो भी मुझे कुछ दिन तक पंचू के यहाँ रहना चाहिए, नहीं तो हरिशकुण्डु अबकी कुछ और बेढब चाल चलेगा। और उसने अपने यार दोस्तों से कहा भी है कि मैंने तो उसके लिए एक मामी का प्रबन्ध कर दिया था, वह बेटा कहीं से एक बाप भी बना कर लेआए हैं, देखंगा उसका बाप उसे कैसे बचाता है।"

मैंने कहा, "उसे चाहे बचा सके या नहीं, पर ये लोग जो धर्म में, समाज में, व्यवसाय में, हर ओर देश के लिए जाल फैला रहे हैं इससे देश की रक्षा करने में यदि हमें हार भी हो जाय तो भी कम से कम सुख से तो मरेंगे।"

विमला की आत्म-कथा।

—:०:—

एक ही जन्म में जो कुछ भोगना पड़ता है उसकी कल्पना करना भी कठिन है। मेरे तो मानों सात जन्म बीत चुके। पिछले कुछ महीने मानों हज़ार बरस की बराबर थे। समय ऐसी तीव्र गति से चल रहा था कि मानों चल ही नहीं रहा। उस दिन अकस्मात् धक्का खाया तो चौंक पड़ी।

मैं जब स्वामी से विदेशी व्यापार बन्द कराने को कहना चाहती थी तो जानती थी कि इस बात पर कुछ तर्क वितर्क होगा। पर मुझे पक्का विश्वास था कि तर्क के उत्तर में

तर्क करना मेरे लिए अनावश्यक है। मेरे चारों ओर जो वायुमंडल है उसमें मानों एक प्रकार का जादू है। सन्दीप जैसा प्रतिभाशाली मनुष्य समुद्र की लहर के समान मेरे पैरों के निकट आकर टूट पड़ा। मैंने तो पुकारा भी नहीं—वह तो मेरे इसी जादू की पुकार थी। और उस दिन वह लड़का अमूल्य—कैसा सरस और कैसा सरल लड़का है—वह जब मेरे सामने आया तो प्रभातकाल की नदी के समान देखते देखते उसके जीवन की धारा रंगीन हो उठी। देवी अपने भक्त की ओर देख कर किस प्रकार मुग्ध हो सकती है इसका मैंने उस दिन अमूल्य के मुख को देखकर अनुभव कर लिया।

इसीलिए उस दिन अपने ऊपर दृढ़ विश्वास करके वज्र-वाहिनी विद्युतशिखा के समान अपने स्वामी के सामने गई थी। पर नतीजा क्या हुआ? आज नौ बरस हुए एक दिन भी उनका ऐसा उदासीन भाव मैंने नहीं देखा! उनकी दृष्टि मानों मरुभूमि के आकाश के समान थी, न उसमें रस की झलक होती है, न जिस चीज़ के ऊपर उसका आभास पड़ता है उसी में रङ्ग दिखलाई पड़ता है। इस से तो उन्हें गुस्सा आजाता तो ही अच्छा था। पर उन पर तो कुछ भी असर नहीं हुआ। मैं स्वयं अपने आपको मिथ्या समझने लगी। मैं मानों स्वप्नमात्र थी, वह स्वप्न अकस्मात् टूट गया, चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा रह गया।

मुझे अपनी जिठानियों के सौन्दर्य पर सदा ईर्षा रही है। मैं सोचती थी विधाता ने मुझे और कोई शक्ति नहीं

दी, मेरे स्वामी का प्रेम ही मेरी शक्ति है। इसी शक्ति को शराब का प्याला जिस समय खूब भर कर पी चुकी थी, जिस समय खूब नशा जम उठा था, उसी समय प्याला धरती पर गिरकर टुकड़े टुकड़े हो गया। अब बचाव का क्या उपाय है!

कैसी जल्दी जल्दी बाल संवारने बैठी थी! शर्म नहीं आती! मंझली जिठानी के कमरे के आगे से जब जा रही थी तो उन्होंने कहा था, "अरी छोटी रानी, बालों का जूड़ा तो अलग ही उड़ा जाता है, साथ साथ खुद भी न उड़ जाना।"

उस दिन बाग़ में स्वामी ने बिना संकोच मुझसे कह दिया कि मैंने तुम्हें मुक्त किया। मुक्ति क्या ऐसे सहज में दी जाती है या मिल सकती है? मछली के समान मैं सदा आदर सम्मान के जल में तैरती रही हूँ, आज जो यकायक मुझे आकाश में उठाकर कहा जाता है कि यह लो तुम्हें मुक्त किया तो देखती हूँ कि घोर विपत्ति का सामना है, न चल सकती हूँ न बच सकती हूँ।

आज जब सोने के कमरे में गई तो देखती हूँ निरा असबाब ही असबाब आँखों के सामने है—केवल आलमारी, केवल आईना, केवल पलंग—इन सब के ऊपर वह सर्वव्यापी हृदय दिखाई नहीं पड़ता। मुक्ति! केवल मुक्ति, केवल शून्यता! भरना सूख गया, केवल कंकर और पत्थर दिखाई पड़ते हैं। आदर सम्मान गया, असबाव बाक़ी है।

मेरे जीवन में कहीं कुछ सत्य का लेशमात्र बाक़ी भी है या नहीं, जब इस द्विधा ने मन को विह्वल कर रक्खा

था तो सन्दीप से फिर मिलना हुआ। आत्मा के साथ आत्मा का संघर्षण होने से फिर वही आग उसी प्रकार भड़क उठी। अब मिथ्या कहाँ गया? यह तो भरपूर सत्य है। यह जो लोग-बाग चलते फिरते हैं, बातचीत करते हैं, रोते-हँसते हैं—यह जो बड़ी रानी माला जपती हैं, मँझली रानी थाको दासी के साथ हँसी ठट्टा करती हैं—इन सब बातों से मेरे मन का यह आविर्भाव हज़ार गुना सत्य है।

सन्दीप ने कहा पचास हज़ार चाहिये! —मेरा उन्मत्त मन बोल उठा, पचास हज़ार कुछ भी नहीं है, दूँगी! कहाँ से दूँगी, इतना रुपया कैसे मिलेगा यह भी कोई चिन्ता का विषय है! मैं क्या थी और क्षणभर में क्या हो गई, यह सब मेरा ही तो प्रताप है—इसी प्रकार एक इशारे में जो चाहूँ कर सकती हूँ। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है।

यह कहकर चली तो आई, पर अब चारों ओर देखती हूँ रुपया कहाँ से आये। कल्पवृक्ष कहाँ है? सांसारिक घटनाएँ मन का क्यों इस प्रकार अपमान करती हैं? तौ भी रुपया तो दूँ ही गी, जिस प्रकार भी हो, इसका मुझे कुछ ध्यान नहीं है। जहाँ दीनता है वहीं अपराध होता है, शक्ति को अपराध छू भी नहीं सकता। चोरी तो चोर ही का काम है, विजयी राजा लूट करता है। ख़ज़ाना कहाँ है, वहाँ किसके हाथ से रुपया जमा होता है, पहरा कौन देता है, यही सब बातें मालूम करना चाहती हूँ। बाहर के बरामदे में खड़ी दीवानख़ाने की ओर ताकते ताकते आधी-रात बिता चुकी हूँ। इस लाहे के जंगले में से पचास

हज़ार कैसे निकाल लूं ? मेरे मन में लेशमात्र भी दया नहीं थी—यदि वे पहरेवाले किसी मन्त्र के असर से वहाँ के वहीं मर जाते तो मैं झपट कर उस ख़ज़ाने में घुस जाती। इस घर की रानी के मन में डाकुओं का दल खाँड़ा हाथ में लिए नाच नाच कर देवों से वर माँग रहा था—पर बाहर आकाश वैसे ही निःशब्द था, थोड़ी थोड़ी देर बाद पहरा बदला जा रहा था, घंटा हर घण्टे टन टन बज रहा था, सारा राजमहल निश्चिन्त शान्ति में सोया पड़ा था।

फिर पीछे एक दिन मैंने अमूल्य को बुला भेजा। मैंने कहा, "देश के लिए रुपये की ज़रूरत है। ख़ज़ाञ्ची के पास से यह रुपया निकाल कर नहीं ला सकते ?"

उसने गर्व के साथ कहा, "ला क्यों नहीं सकता ?"

हाय, मैंने भी सन्दीप के सामने इसी तरह कहा था, ला क्यों नहीं सकती ? अमूल्य का गर्व देखकर मुझे ज़रा भी सन्तोष नहीं हुआ।

मैंने पूछा, "ज़रा बताओ तो कैसे लाओगे ?"

अमूल्य ने ऐसे ऊटपटाँग उपाय बताने शुरू किये कि वे मासिक पत्र की छोटी छोटी कहानियों के सिवा और कहीं प्रकाशित करने योग्य नहीं हैं।

मैंने कहा, "नहीं, अमूल्य, ये सब बचपन की बातें रहने दो।"

उसने कहा, "अच्छा कुछ दे दिलाकर पहरेवाले को बस में कर लेंगे।"

"देने के लिए रुपया कहाँ ?"

उसने बिना संकोच कहा, "बाज़ार लूट लेंगे।"

मैंने कहा, "इसकी ज़रूरत नहीं है। मेरे पास गहना है, उसी से काम चला लेंगे।"

अमूल्य ने कहा, "पर ख़ज़ांची के साथ घूंस से काम नहीं चलेगा। उसके लिए एक और सहज तरकीब है।"

"वह क्या ?"

"वह आप से कहने की नहीं है। पर बहुत सहज है।"

"तौ भी सुनूँ तो सही।"

अमूल्य ने कुर्ते की जेब से पहले एक छोटी सी गीता निकाल कर मेज़ पर रक्खी, फिर एक छोटा सा पिस्तौल निकाल कर मुझे दिखाया—मुँह से कुछ नहीं बोला।

कैसे सर्वनाश का सामना है! बूढ़े खजांची का हत्या-संकल्प करने में उसे क्षणभर भी नहीं लगा। उसका मुँह देखकर जान पड़ता है कि उससे एक कौवा भी न मरेगा, पर उस मुँह की भाषा तो बिल्कुल ही और ढंग की है। असली बात यह है कि अमूल्य बिल्कुल नहीं समझ सकता कि इस जगत में उस ख़ज़ांची के जीवन का क्या अर्थ है—उसे केवल शून्यता दिखाई पड़ती थी। उस शून्यता में आत्मा नहीं था, वेदना नहीं थी, केवल एक श्लोक था—न हन्यते हन्यमाने शरीरे*।

मैंने कहा, "तुम क्या कहते हो, अमूल्य! उस बेचारे के स्त्री है, बालबच्चे हैं—वे कहाँ... ..!"

---

* शरीर के मार जाने पर यह (आत्मा) कभी नहीं मारा जाता।
(गीता अध्याय २ श्लोक २०)

"जिनके स्त्री नहीं, बालबच्चे नहीं, ऐसे लोग इस देश में कहाँ मिलेंगे? देखिये, हम जिसे दया कहते वह केवल अपने ही लिए दया है—पीछे अपने दुर्बल हृदय को दुख होगा, इसीलिए दूसरे पर आघात नहीं करते—यह निरी कायरता है!"

सन्दीप के मुँह की भाषा इस बालक के मुँह से सुन कर मेरा हृदय काँप उठा। वह बिलकुल बच्चा है, उसकी अवस्था अभी श्रद्धा और विश्वास करने की है! उसके तो ये फूलने फलने के दिन हैं। मेरे मन में मातृभाव प्रबल हो उठा। स्वयं मेरे लिए अच्छे बुरे का भेद मिट चुका था, मेरे सामने तो केवल मृत्यु थी; पर जब मैंने देखा कि एक अट्ठारह बरस के बालक ने बिना संकोच निश्चय कर लिया कि एक बूढ़े आदमी को बिना दोष मार डालना ही धर्म है, तो मेरा सारा शरीर कांप उठा। जब मैंने देखा कि उसके मन में पाप नहीं है तो उसके इस विचार का पाप मुझे और भी भयंकर रूप में दिखाई पड़ा। मानो मा बाप का अपराध इस बालक के सिर आपड़ा है।

विश्वास और उत्साह से भरी उन बड़ी बड़ी सरल आँखों की ओर देखकर मेरा आत्मा व्याकुल हो उठा। यह अजगर साँप के मुँह में घुसने चला है इसकी कौन रक्षा करेगा? मातृभूमि क्यों स्वयं मां की माता होकर उसे छाती से नहीं लगा लेती? क्यों उससे नहीं कहती, "हे वत्स! तू मुझे बचाकर क्या करेगा, जब मैं ही तेरी रक्षा न कर सकी?"

मैं जानती हूँ पृथ्वी पर जिस शक्ति ने शैतान के साथ

समझौता किया वह कहाँ से कहाँ पहुँच गई, पर माता जो अकेली खड़ी है वह केवल इसी शैतान की समृद्धि तुच्छ करने के लिए खड़ी है। कार्यसिद्धि कैसी ही बड़ी क्यों न हो, माता कार्यसिद्धि नहीं चाहती, वह तो रक्षा करना चाहती है! आज मेरा मन इस बालक की रक्षा करने के लिए, इसे बचाने के लिए कैसा व्याकुल हो रहा है!

कुछ ही देर पहले उससे डाका डालने को कह रही थी, अब उसके विपरीत कितना ही ज़ोर देकर बात कहूँ, वह उसे स्त्रियों की दुर्बलता समझ कर हँसेगा। स्त्रियों की दुर्बलता पुरुषों को तभी अच्छी लगती जब वह सारी पृथ्वी को अपने जाल में फाँसना चाहती हैं।

मैंने अमूल्य से कहा, "जाओ तुम्हें कुछ भी न करना पड़ेगा। मैं स्वयं रुपये का प्रबन्ध कर लूँगी।"

वह द्वार तक पहुँचा था कि मैंने उसे फिर बुलाया और उससे कहा, "अमूल्य मैं तुम्हारी बहिन हूँ। आज भैया-दूइज नहीं है पर भैयादूइज की वास्तविक तिथि बरस के तीन सौ पैंसठ दिन ही रहती है। मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ, भगवान तुम्हारी रक्षा करें।"

अकस्मात् मेरे मुँह से यह बात सुनकर अमूल्य को अचम्भा सा हुआ, पर तुरन्त ही उसने मेरे पाँव छूकर मुझे प्रणाम किया। वह जब उठकर खड़ा हुआ तो उसकी आँखों में आँसू झलक रहे थे। मैंने सोचा मैं तो मरने को तैयार हो बैठी हूँ, किसी तरह इसके पाप भी अपने साथ ले जाती! हे ईश्वर, मेरे पापों से इसके निर्मल हृदय पर कोई धब्बा न पड़ जाय।

मैंने अमूल्य से कहा, " तुम्हें अपनी पिस्तौल मुझे उपहार में देनी होगी।"

" क्या करोगी, बहिन ? "

" हत्या का अभ्यास करूँगी। "

" इसकी तो आवश्यकता है। स्त्रियों को भी अब मरना और मारना पड़ेगा।" यह कह कर उसने पिस्तौल मेरे हाथ में दे दी।

अमूल्य के तरुण मुख की दीप्तिरेखा ने मेरे जीवन में नवीन ऊषा की झलक पैदा करदी। पिस्तौल को मैंने अपने कपड़ों में छिपा कर सोचा, यही मेरे उद्धार का शेष उपाय है, यही भैया के पास से मिला हुआ उपहार।

स्त्री के हृदय में जहाँ माता का आसन होता है मेरे उस स्थान की खिड़की इस बार अकस्मात् खुल गई थी। उस समय सोचती थी कि यह खिड़की अब से बराबर खुली रहेगी। पर यह श्रेय का पथ फिर बन्द हो गया, प्रेयसी स्त्री ने आकर माता का स्थान ले लिया और उस द्वार पर ताला डाल दिया।

दूसरे दिन सन्दीप से फिर मिलना हुआ। एक उमंग उन्माद ने फिर हृदय के ऊपर खड़े होकर नाचना शुरू कर दिया। किन्तु यह है क्या? यही क्या मेरा स्वभाव है? कदापि नहीं।

इस निर्लज्जता को, इस निदारुणता को इससे पहले तो मैंने कभी नहीं देखा! सपेरे ने अकस्मात् आकर इस साँप को मेरे आँचल के भीतर से निकाल कर दिखा दिया—पर मेरे आँचल में तो यह था ही नहीं, यह तो सपेरे की

चादर ही के भीतर को चीज़ है। कोई भूत मानों मेरे सिर आगया है—आज मैं जो कुछ कर रही हूँ यह मेरा किया नहीं है, उसी की लीला है।

यही भूत एक दिन रंगीन मशाल हाथ में लिए आकर मुझ से कहने लगा, "मैं ही तुम्हारा देश हूँ, मैं ही तुम्हारा सन्दीप हूँ, मुझ से बड़ा तुम्हारे लिए और कोई नहीं है—बन्देमातरम्।"

मैं हाथ जोड़ कर बोली, "तुम्हीं मेरे धर्म हो, तुम्हीं मेरे स्वर्ग हो, मेरे पास जो कुछ है सब तुम्हारे प्रेम में लुटा दूँगी—बन्देमातरम्।"

पाँच हज़ार चाहिए? अच्छा पाँच हज़ार ही लो। कल ही चाहिए? अच्छा कल ही मिलेगा। कलंक के दुःसाहस में यह पाँच हज़ार का दान शराब का झाग बन जायगा—इसके बाद फिर उन्माद का उत्सव—अचला पृथ्वी पैरों के नीचे डगमगाने लगेगी, आँखों में अग्नि भर जायगी, कानों में तूफ़ान को गरज गूँजने लगेगी, सामने क्या है और क्या नहीं कुछ न देख सकेंगे,—इसके पश्चात् लड़खड़ाते लड़खड़ाते न जाने कहाँ जाकर गिरेंगे—समस्त अग्नि शान्त हो जायगी, सब छाई हवा में उड़ जायगी,—और कुछ भी बाक़ी न बचेगा।

रुपया वहाँ से मिल सकेगा यह बात पहिले बहुत सोचने पर न सूझती थी। उस दिन तीव्र उत्तेजना के प्रकाश में यह रुपया आँखों के सामने प्रत्यक्ष देख लिया।

हर बरस पूजा के समय वह अपनी बड़ी भावी और मँझली भावी को तीन तीन हज़ार प्रणामी दिया करते हैं। यह रुपया उन दोनों के नाम बैंक में जमा होता रहता

है। अबकी बार भी नियमानुसार प्रणामी दी गई है, पर रुपया अभी बैंक में नहीं भेजा गया। कहाँ रक्खा है, यह भी मैं जानती हूँ। हमारे सोने के कमरे से लगी हुई जो छोटी कोठरी है उसके कोने में एक लोहे का सन्दूक है, उसी में सब रुपया रक्खा है।

हर साल इस रुपये को लेकर वह कलकत्ते के बैंक में जमा करने जाते हैं, इस बार उनका अभी तक जाना नहीं हुआ। इसी कारण तो दैव को मानती हूँ। यह रुपया देश के भाग का है इसीलिए तो अभी तक यहाँ रक्खा है—इस रुपये को कौन बैंक में ले जा सकता है? और मैं ही यह कब कर सकती हूँ कि इस रुपये को देश के लिए न लूँ? प्रलयंकरी ने खप्पर बढ़ा दिया है, कहती है, मैं भूकी हूँ, मुझे दे,—मैंने पाँच हज़ार क्या दिए अपने हृदय का रक्त दे दिया! यह रुपया जिसका गया उसको तो थोड़ी ही हानि होगी—पर मैं तो कहीं की भी न रही!

इसके पहले अनेक बार मैंने बड़ी रानी और मँझली रानी को मन ही मन में चोर समझा है—मेरी धारणा थी कि मेरे विश्वासपरायण स्वामी को वे बहला फुसला कर रुपया ऐंठा करती हैं। अपने स्वामियों के मरने के पीछे उन्होंने अनेक बहुमूल्य चीजें छिपा छिपा कर रक्खी हैं, यह बात मैंने कई बार अपने स्वामी से कही है। वह इसका कुछ उत्तर न देकर केवल चुप हो जाते थे। उस समय मुझे बड़ा गुस्सा आता था, मैं कहती थी, "दान करना हो तो हाथ से देकर दान करो, पर चोरी करने देते हो?" विधाता मेरी यह बात सुनकर मन ही मन मुसकराया

होगा—आज मैं अपने स्वामी के सन्दूक़ से उन्हीं घड़ी रानी और मँझली रानी का रुपया चुराने चली हूँ।

रात को मेरे स्वामी उसी कमरे में कपड़े उतारते हैं, चाबी उनकी जेब ही में पड़ी रहती है। वही चाबी निकाल कर मैंने सन्दूक़ खोला। खोलने में जो ज़रा सी आवाज़ हुई मुझे जान पड़ा मानों सारी पृथ्वी जाग उठी। एक दम हाथ पैर बरफ़ के समान हो गए, और छाती में बड़े ज़ोर से धड़कन होने लगी। लोहे के सन्दूक़ के अन्दर एक छोटा सा खाना है। उसी को खोल कर देखा तो नोट नहीं काग़ज़ में लिपटी हुई गिनी गिनाई गिन्नियों की गुड्डियाँ थीं। हर गुड्डी में कितनी गिन्नियाँ हैं और मुझे कितनी चाहिये यह सब सोचने का समय नहीं था। बीस गुड्डी थीं वे सब की सब लेकर मैंने आँचल में बाँध लीं।

बोझ कुछ कम नहीं था, चोरी के बोझ से मेरा मन मानों अचेत होकर धूल पर गिर पड़ा। सम्भवतः यदि नोटों की गड्डी होती तो यह चोरी इतनी असह्य न होती। पर वह तो सब सोना था।

उस दिन रात को जब चोर बनकर अपने कमरे में घुसी उसी समय से वह कमरा मानों मेरा नहीं रहा। इस कमरे में मुझे जितना अधिकार था—चोरी करके मैंने सब खो दिया।

मैं मन ही मन जपने लगी, वन्देमातरम्, वन्देमातरम्: देश, मेरे देश, मेरे स्वर्णमय देश! सब सोना उसी देश का सोना है, वह और किसी का नहीं है।

पर रात के अंधकार में मन और भी दुर्बल हो जाता

है। वह बराबर के कमरे में सो रहे थे, आँखें मूंदकर उनके कमरे में से बाहर चली गई—अन्तःपुर की खुली छत पर जाकर इस आँचल में बँधी चोरी को छाती से लगाए वहीं धरती पर पड़ी रही—गिन्नियों की हर एक गुल्ली मानों मेरी छाती पर आकर ज़ोर ज़ोर से लगने लगी। निस्तब्ध रात्रि मेरी ओर बराबर उंगली उठाये खड़ी रही। घर को तो मैंने देश से कभी अलग करके नहीं देखा। आज मैंने घर को लूटा है तो देश को भी लूटा है—इसी पाप के कारण मेरा घर अब मेरा नहीं रहा, मेरा देश अब भी मुझ से विमुख हो गया! मैं यदि भीख माँग कर देश की सेवा करती, और उस सेवा को अधूरा ही छोड़ कर मर जाती, तो वह असमाप्त सेवा ही पूजा मानी जाती, उसी को देवता स्वीकार कर लेते। पर चोरी तो पूजा नहीं है—यह वस्तु कैसे देश के हाथ में उठा कर रख दूँ? मैं आप तो मरने को तैयार बैठी हूँ पर देश को क्यों व्यर्थ अपने कलंक में सानूं!

इस रुपये को फिर लोहे के सन्दूक में रखने का पथ बन्द है। इस रात्रि में फिर उसी कमरे में जाकर उसी चाबी से उसी सन्दूक को खोलने की शक्ति मुझमें नहीं है। मैं तो उनके कमरे की चौखट ही पर अचेत होकर गिर पड़ूंगी। इस समय आगे बढ़ने के मार्ग के सिवा और कोई मार्ग नहीं है। वहाँ बैठे बैठे उन गिन्नियों को गिनने की सामर्थ्य भी मुझ में नहीं थी। वह जिस प्रकार बँधी हैं उसी प्रकार बँधी रहें, चोरी का हिसाब मुझ से न होगा।

जाड़ों की अंधेरी रात के आकाश में एक भी बादल नहीं था, सब तारे जगमग जगमग चमक रहे थे। मैंने छत के ऊपर लेटे लेटे सोचा—देश का नाम लेकर यदि मैं इन तारों को—अन्धकार के हृदय में संचित किए हुए इन तारों को—एक एक करके अशर्फियों के समान चुरा लेती तो अगले ही दिन से रात्रि सदा के लिए विधवा हो जाती और आकाश अपनी आँखों को रोया करता,—यह चोरी समस्त जगत के धन की चोरी होती। आज जो मैं यह चोरी करके लाई हूँ, यह भी साधारण चोरी नहीं है, यह भी आकाश के चिरस्थाई प्रकाश की चोरी के समान है—यह चोरी समस्त जगत के धन की चोरी है,—विश्वास और धर्म की चोरी है।

छत के ऊपर पड़े पड़े रात कट गई। सबेरे जब मैंने समझ लिया कि वह उठ कर चले गए हैं तो मैं सिर से पैर तक शाल लपेट कर कमरे की ओर चली। मँझली रानी इस समय लोटा लिए तुलसी के पौदे में जल दे रही थीं, मुझे देखते ही बोलीं, "कुछ सुना तूने?"

मैं चुप खड़ी रही और मेरा दिल धड़कने लगा। मैं सोचने लगी, आँचल में बंधी हुई गिन्नियाँ शाल के भीतर से ऊपर को उठी हुई दिखाई पड़ रही हैं। ऐसा मालूम होता था साड़ी फट जायगी और सब की सब खनन से निकल पड़ेंगी—अपना ऐश्वर्य चुरा कर जो कंगाल हो गया है ऐसा चोर आज इस घर के सब नौकर चाकरों के सामने पकड़ा जायगा!

मँझली रानी बोलीं, "तुम्हारे डाकुओं के दल ने

गुमनाम चिट्ठी भेज कर निखिल को खज़ाना लूटने को धमकी दी है।"

मैं चोर के ही समान चुपचाप खड़ी रही।

"मैंने निखिलेश से तुम्हारी शरण मांगने को कह दिया था! हे देवो, अब प्रसन्न होजाओ, अपना दल बल हटा लो! मैं तुम्हारे बन्देमातरम् का प्रसाद मानती हूँ। देखते देखते कहाँ से कहाँ तो बात पहुँच चुकी, पर अब तुम्हारी दुहाई है, घर में सेंध न लगवा देना!"

मैं बिना उत्तर दिए झटपट कमरे में चली गई। ऐसी दलदल में आकर फंसी हूँ कि निकलने का कोई उपाय नहीं, जितना हाथ पैर मारती हूं और नीचे को धसती चली जाती हूं।

यह रुपया किसी तरह अभी साड़ी से खोल कर सन्दीप के सामने पटक दूं तो जान में जान आए। यह बोझ मुझ से और नहीं सहा जाता मेरी हड्डी पसली सब चूर चूर हुई जाती हैं।

थोड़ी देर ही बाद मुझे ख़बर मिली कि सन्दीप बाबू मेरी बाट देख रहे हैं। आज मुझे बनाव सिंगार को कुछ सुध नहीं थी—वैसे ही शाल लपेटे झटपट बाहर चली गई।

कमरे में घुसते हीं मैंने देखा कि सन्दीप के पास अमूल्य भी बैठा है। मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि मान-सम्भ्रम जो बाक़ी था सब एकदम धूल में मिल गया। आज अपना कलंक मुझे इस बालक के सामने उद्घाटित करना पड़ा! मेरी चाची की बात पर आज ये लोग अपने दल

में बैठ कर आलोचना कर रहे हैं ? क्या मुझे मुँह छिपाने को भी जगह न रहेगी ?

हम स्त्रियाँ पुरुषों को कभी न पहचान सकेंगी। वे जब अपने उद्देश्य के रथ के लिए मार्ग तैयार करने बैठते हैं तो उन्हें विश्व का हृदय कूटकर कंकर बनाने में ज़रा भी संकोच नहीं होता। वह जब अपने हाथ से सृष्टि करने के नशे में मस्त हो जाते हैं तो सृष्टिकर्ता की सृष्टि नष्ट करने ही में उन्हें आनन्द मिलता है। मेरी यह मर्मान्तिक लज्जा उनके लिए कुछ भी अर्थ नहीं रखती—आत्मा का उन्हें ज़रा भी ख़याल नहीं है—उनकी जितनी व्यग्रता है, सब उद्देश्य की ओर है ! हाय मैं उनके निकट क्या हूं ? नदी की बाढ़ के रास्ते में एक छोटा सा फूल !

किन्तु मेरा इस प्रकार सर्वनाश करके सन्दीप को क्या लाभ हुआ ? यही पाँच हज़ार रुपये ? क्या मुझमें पाँच हज़ार से अधिक मूल्य का और कुछ नहीं था ? अवश्य था इसमें सन्देह क्या है। यह भी मुझे सन्दीप से मालूम हुआ था और यही सुनकर तो मैं संसार को तुच्छ समझने लगी थी। मैं प्रकाश दूँगी, मैं जीवन दूँगी, मैं शक्ति दूँगी, मैं अमृत दूँगी, इसी विश्वास में, इसी आनन्द में सब बन्धन तोड़कर निकल खड़ी हुई थी। मेरे उसी आनन्द को यदि कोई पूरा कर देता तो मृत्यु को जीवन समझती ; सब कुछ खो बैठने पर भी मेरा कुछ नहीं जाता।

आज क्या मुझ से कहना चाहते हैं कि ये सब बातें झूठ हैं ? मेरे अन्दर जो देवी है, क्या उसमें भक्त को पराभूत करने की शक्ति नहीं है ? मैंने जो स्तुतिगान

सुना था, जिस गान को सुनकर धूल पर उतर आई थी वह गान क्या इस धूल को स्वर्ग करने के निमित्त नहीं था, उसका उद्देश क्या स्वर्ग ही को धूल में मिलाना था?

सन्दीप ने मेरी ओर अपनी तीव्र दृष्टि उठाकर कहा, "रुपया चाहिये, रानी!"

अमूल्य मेरे मुँह की ओर देखने लगा,—वही बालक अमूल्य—जिसने मेरी माँके पेटसे जन्म भले ही न लिया हो पर जो फिर भी मेरा भाई है, क्योंकि माता तो समस्त संसार में वही एक माता है! उसने भोली भाली स्निग्ध आँखों से मेरी ओर देखा। मैं स्त्री हूँ उसकी माँके समान हूँ—वह मुझसे कहे कि मेरे हाथ में ज़हर दो तो क्या मैं उसके हाथमें ज़हर दे दूँगी?

"रुपया चाहिये रानी!" लज्जा और क्रोध के मारे मेरे जी में आया कि वह सोने की पोट सन्दीप के सिर पर फेंक मारूँ। मेरी उंगली ऐसी काँप रही थीं कि मैं बड़ी मुश्किल से अपने आँचल की गाँठ खोल सकी। इसके बाद जैसे ही मैंने वह सब की सब गुल्ली मेज़ पर डालीं सन्दीप का मुँह एकदम काला पड़ गया। उसने अवश्य सोचा होगा कि इन गुल्लियों में अठन्नियां हैं। उसकी दृष्टि में कैसी घृणा थी! मेरी अक्षमता से उसे कैसी ग्लानि हो रही थी! जान पड़ता था कि मेरे ऊपर हाथ छोड़ बैठेगा। सन्दीप ने सोचा होगा, यह मेरे साथ सौदा करने आई है, पाँच हज़ार की जगह दो तीन सौ देकर टालना चाहती है। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वह उन गुल्लियों को उठा कर खिड़की के बाहर फेंक देना चाहता है। वह भिक्षुक थोड़े ही है, वह तो राजा है।

अमूल्य ने पूछा, "और नहीं मिला, जीजी?"

उसके स्वर में करुणा भरी थी। ज़रा सी कसर रह गई नहीं तो मैं बिलख बिलख कर बच्चों की तरह रो पड़ती। मैंने अपना सारा ज़ोर लगाकर अपने हृदय का वेग वहीं का वहीं दबा दिया और उत्तर में केवल गर्दन हिला दी। सन्दीप बराबर चुप रहा, उसने न गुल्लियों को छुआ, न मुँह से कुछ कहा।

मेरा अपमान उस बालक के हृदय पर जाकर लगा। वह एकदम बड़ी प्रसन्नता दिखाकर कहने लगा, "यह क्या कम है! इसी में सब हो जायगा। तुमने हमें बचा लिया जीजी!"

यह कहते ही उसने एक गुल्ली खोल डाली—अशर्फ़ियाँ निकलकर मेज़पर गिरीं।

उसी क्षण संदीप का चेहरा खिल उठा। मन के भीतर की हवा का यह उलटा झोंका उससे न सहा गया और वह कुरसी से उठकर वेग से मेरी ओर झपटा। उसका क्या मतलब था यह मैं नहीं जानती। मैंने बिजली के समान तीव्र दृष्टि से अमूल्य की ओर देखा—उसका चेहरा बिल्कुल फीका पड़ गया था। मैंने अपनी सारी शक्ति लगा कर सन्दीप को ज़ोर से धक्का दिया। उसका सिर पत्थर की मेज़ पर जाकर लगा और वह धरती पर गिर पड़ा—क्षणभर के लिए उसे बिल्कुल होश नहीं रहा। इतनी प्रबल चेष्टा के बाद मुझे भी चक्कर आ गया और मैं वहीं कुरसी पर बैठ गई। अमूल्य के मुँह पर आनन्द की झलक दिखाई पड़ने लगी—उसने सन्दीप की ओर देखा तक नहीं और मेरे

पैरों की धूल लेकर वहीं मेरे पास ज़मीन पर बैठ गया। मेरे प्यारे भाई ! तेरी यही श्रद्धा आज मेरे शून्य विश्व-पात्र की शेष सुधाबिन्दु है ! मैं और न रह सकी, मेरे आँसू निकल पड़े। दोनों हाथों में आँचल लेकर मैंने अपना मुँह छिपा लिया और सिसक सिसक कर रोने लगी। बीच बीच में ज्यों ज्यों मुझे अपने पैरों पर अमूल्य के करुण हाथों का स्पर्श मालूम होता था त्यों त्यों मेरे आँसू और उबले पड़ते थे।

थोड़ी देर बाद जब मैंने अपने को संभाला और आँख खोलकर देखा तो सन्दीप ऐसे निश्चितभाव से मेज़ के पास बैठा गिन्नियाँ रुमाल में बाँध रहा था कि मानों बिल्कुल कुछ हुआ ही नहीं है। अमूल्य भी उठ कर खड़ा हो गया, उसकी आँखें सजल हो रही थीं।

सन्दीप ने बिना संकोच मेरी ओर देखकर कहा, "यह सब छः हज़ार हैं।"

अमूल्य ने कहा, "इतने रुपये की तो हमें ज़रूरत भी नहीं है, सन्दीप बाबू। हमने जो हिसाब लगाया था उसके अनुसार तो साढ़े तीन हज़ार ही में हमारा काम अच्छी तरह चल जायगा।"

सन्दीप ने कहा, "हमारा काम केवल इसी स्थान में तो नहीं है। हमारे लिए जितना हो उतना ही कम है।"

अमूल्य ने कहा, "यह ठीक है, पर भविष्य में जितनी ज़रूरत होगी वह सब मेरे ज़िम्मे रहा, आप यह ढाई हज़ार जीजीरानी को लौटा दीजिए।"

सन्दीप ने मेरी ओर देखा। मैं तुरन्त बोल उठी,

"नहीं, नहीं उस रुपये को मैं अब हाथ न लगाऊँगी उसे लेकर तुम्हारा जो जो चाहे करो।"

सन्दीप ने अमूल्य की ओर देखकर कहा, "स्त्रियाँ जिस प्रकार दे सकती हैं पुरुष क्या खाकर देगा?"

अमूल्य ने उत्साहित होकर कहा, "स्त्रियाँ ही तो देवी हैं।"

सन्दीप ने कहा, "हम पुरुष बहुत से बहुत अपनी शक्ति दे सकते हैं, पर स्त्रियाँ तो स्वयं अपने को दे देती हैं। वे अपने प्राणों के भीतर से सन्तान को जन्म देती हैं और उसका पालन करती हैं। यही दान तो सत्य दान है।"

यह कह कर सन्दीप ने मेरी ओर देखकर कहा, "रानी, आज तुम ने जो कुछ दिया, वह यदि केवल रुपया होता तो मैं उसे छूता भी नहीं,—तुमने अपने प्राणों से भी बड़ा चीज़ दी है।"

जान पड़ता है मनुष्य की दो बुद्धि होती हैं। मेरी एक बुद्धि समझती है कि सन्दीप मुझे धोका देता है, पर मेरी दूसरी बुद्धि धोका खाती है। सन्दीप का चरित्र तुच्छ है पर शक्ति असीम है। इसी कारण वह जिस समय आत्मा को जगा देता है उसी समय मृत्युबाण भी मारता है। उसके पास देवताओं का अक्षय तूण है पर उसमें अस्त्र सब दानवों के भरे हैं।

सन्दीप के रूमाल में सब गिन्नियाँ नहीं आईं, उसने मुझ से कहा, "रानी, मुझे अपना एक रूमाल दे सकती हो?"

मैंने जैसे ही रूमाल निकालकर दिया सन्दीप ने उसे अपने माथे से लगाया और फिर अकस्मात् मेरे चरणों के

निकट झुककर मुझे प्रणाम किया और कहा, "देवी, तुम्हें प्रणाम ही करने मैं तुम्हारी ओर झपटा था, तुमने मुझे धक्का देकर गिरा दिया। तुम्हारा यही धक्का मेरे लिए वरदान है। वह धक्का मैंने अपने माथे पर लिया है।" यह कहकर जहाँ चोट लगी थी वह जगह मुझे दिखा दी।

मैं क्या वास्तव में कुछ का कुछ समझ बैठी थी? क्या सन्दीप प्रणाम ही करने को मेरी ओर बढ़ा था? उसके मुख और नेत्रों से जो उन्मत्तता झलक रही थी, उससे तो जान पड़ता है अमूल्य ने भी देखा था। पर स्तुतिगान का सन्दीप को ऐसा मनोहर सुर याद है कि उसके आगे सारा तर्क धरा रहता है, किसी अफ़ीम के नशे में आँखें ऐसी मुँद जाती हैं कि फिर सत्य को देख ही नहीं सकतीं। सन्दीप पर जो आघात मैंने किया था उसका अच्छी तरह उसने बदला ले लिया—उसके माथे की चोट देखकर मेरे हृदय में असह्य पीड़ा होने लगी। सन्दीप ने मुझे प्रणाम क्या किया मानों मेरी चोरी को पवित्र बना दिया। मेज़ पर पड़ी हुई गिन्नियाँ लोक-निन्दा और मिथ्या संकोच की उपेक्षा कर खिलखिला कर हँसने लगीं।

अमूल्य के मन ने भी इसी तरह पलटा खाया। उसकी श्रद्धा जो थोड़ी देर के लिए धीमी पड़ गई थी फिर भड़क उठी, उसके हृदय का पुष्पपात्र भी भर गया। सरल विश्वास का स्निग्ध सुख उसके नेत्रों से प्रभात समय के तारे के प्रकाश के समान विकीर्ण होने लगा! मैंने पूजा की और पूजा पाई भी, उसी से मेरा पाप ज्योतिर्मय हो उठा। अमूल्य ने मेरी ओर देखा और हाथ जोड़कर पुकार उठा, "वन्देमातरम्!

पर स्तुति तो हर घड़ी न सुन सकूँगी। तो भी आत्म-गौरव और आत्मसम्मान बनाये रखने का और कोई उपाय नहीं है। मैं अपने शयनघर में घुस ही नहीं सकती। वह लोहे का सन्दूक मानों मेरी ओर तिरछी नज़र करके देखता है, मेरा पलङ्ग मेरी ओर निरेष का हाथ बढ़ाने लगता है। अपने हाथों अपना ही अपमान होता देख दूर भागने की इच्छा होती है, जिस वहीं जो में आता है कि सन्दीप के पास जाकर अपनी स्तुति सुनूँ। ग्लानि की अथाह गहराई में केवल वही पूजा की देवी अमृत दिखाई पड़ती है, वहाँ से जिधर भी पाँव उठाती हूँ, शून्य का अनुभव होता है। इसी कारण इस देवी को छोड़ना नहीं चाहती। स्तुति सुनने की धुन है, रात दिन स्तुति चाहिए, उस शराब का प्याला ज़रा भी ख़ाली हो जाता है तो मुझसे नहीं रहा जाता। इसीलिए सारे दिन सन्दीप के पास बैठकर उसकी बातें सुनने को मेरी आत्मा व्याकुल रहती है, उससे दूर रहकर मेरा जीवन मानों एक सस्ती और व्यर्थ चीज़ बन जाता है।

मेरे स्वामी जब दोपहर को भोजन करने आते हैं तो मुझसे उनके सामने नहीं बैठा जाता—और न बैठने में भी इतनी लज्जा मालूम होती है कि यह भी नहीं होता, इसलिए मैं उनके पीछे की ओर इस प्रकार बैठती हूँ कि उनसे नज़र न मिले। उस दिन मैं इसी प्रकार बैठी थी और वह भोजन कर रहे थे, उसी समय मँझली रानी आकर बैठीं और कहने लगीं, "भैया निखिलेश, तुम तो इन डाकुओं की चिट्ठियों को यों ही हँसी में उड़ा देते हो पर मुझे तो डर लगता है। इस बार प्रणामी का रुपया भी

तुमने अभी बैंक में नहीं भेजा।"

मेरे स्वामी ने कहा, "समय ही नहीं मिला।"

मँझली रानी बोलीं, "देखो भैया तुम बहुत बेपरवाह हो, वह रुपया...!"

वह हँस कर बोले, "वह तो मेरे सोने के कमरे के बराबरवाली कोठरी में लोहे के सन्दूक में रक्खा है।"

"और जो वहाँ से भी ले जाँय?"

"यदि ऐसा होने लगा तो फिर तुम्हें भी एक दिन उठा ले जाँयगे!"

"इसका तुम भय न करो, मुझे कोई न लेजायगा। लेने योग्य चीज़ तुम्हारे हो कमरे में है। नहीं भैया, हँसी की बात नहीं है, अब घर में रुपया रखना ठीक नहीं है।"

"चार पाँच दिन में मालगुज़ारी भेजी जायगी, उसके साथ ही वह रुपया भी कलकत्ते भेज दूँगा।"

"पर देखो भूल न जाना, तुम्हें कोई बात याद ही नहीं रहती।"

"किन्तु उस कमरे में से रुपया चोरी होगा तो मेरा ही रुपया चोरी होगा; तुम से क्या मतलब?"

"तुम्हारी यही बातें तो सुन कर मुझे गुस्सा आजाता है। मैं क्या अपना तुम्हारा अलग करके देखती हूँ? यदि तुम्हारा ही रुपया चोरी जाय तो क्या मेरे दिल को नहीं लगेगी? विधाता ने सब कुछ लेकर मेरे लिए लक्ष्मण के समान एक देवर छोड़ा है, उसका मूल्य क्या मैं समझती नहीं? मुझे बड़ी रानी की तरह देवताओं से मन बहलाना

नहीं आता, मुझे देवता ने जो कुछ दिया है वह मेरे लिए देवता से भी बढ़कर है। क्यों छोटी रानी तू तो एकदम मानों काठ की पुतली बन गई ! तुम जानते हो भैया छोटी रानी समझती हैं, मैं तुम्हारी खुशामद किया करती हूँ। यदि ज़रूरत पड़ती तो खुशामद भी की जाती, पर हमारे देवर ही ऐसे नहीं जो खुशामद की अपेक्षा रक्खें। यदि उस माधव चक्रवर्त्ती के समान होते तो आज हमारी बड़ी रानी को भी देवपूजा छोड़ पैसे पैसे के वास्ते तुम्हारे ही पैर पकड़ने में समय काटना पड़ता। पर मैं तो कहती हूँ कि यह भी कुछ उपकार ही होता क्योंकि फिर उन्हें तुम्हारी निन्दा करने को इतना समय नहीं मिलता।"

मँझली रानी इसी प्रकार बहुत देर तक बकती रहीं, बीच बीच में स्वादिष्ट चीज़ों की ओर अपने देवर का ध्यान आकर्षित करती जाती थीं। उस समय मेरा सिर घूम रहा था। और तो समय नहीं रहा, कुछ न कुछ उपाय तुरन्त करना चाहिए, क्या किया जा सकता है, यही प्रश्न अब मैं बार बार अपने मन से पूछने लगी उस समय मँझली रानी की बकबक बड़ी बुरी लगने लगी। विशेषतः मैं जानती हूँ कि मँझली रानी की आँखों से कोई बात छिपी नहीं रहती, वह बार बार मेरे मुँह की ओर देख रही थीं। उन्होंने क्या देखा यह मैं नहीं जानती, पर मुझे ऐसा मालूम हो रहा था कि मेरे मुँह पर सब बातें मानों साफ़ साफ़ लिखी हैं।

उस समय मैंने एक बड़े दुःसाहस की बात की। ज़रा हँसते हुए मैं एकदम कह उठी, "बात यह है कि मँझली

रानी का सन्देह सब मुझी पर है, चोर डाकुओं की सब बात ही बात है !"

मँझली रानी मुस्कुरा कर बोलीं, "यह तूने ठीक कहा, स्त्रियों का चोरों का डर देखा होता है। पर मेरी आँखों में धूल झोंकना आसान नहीं है, मैं पुरुष थोड़े ही हूँ !"

मैंने कहा, "यदि तुम्हारे मन में इतना भय है तो मेरे पास जो कुछ है सब तुम रख लो, कुछ नुकसान हो जायगा तो उसमें से काट लेना।"

मँझली रानी ने हँस कर कहा, "ज़रा सुनो छोटी रानी की बातें ! ऐसे भी तो नुकसान होते हैं जो लोक परलोक में किसी ज़मानत से पूरे ही नहीं हो सकते।"

हमारी बातों में वह बिल्कुल नहीं बोले। भोजन करते ही तुरन्त बाहर चले गये। आजकल वह दोपहर के समय भीतर विश्राम नहीं करते।

मेरा अधिकांश गहना ख़ज़ानची के पास जमा था तो भी जो कुछ मेरे पास था वह तीस पैंतीस हज़ार से कम का न होगा। मैंने वहीं गहने का बक्स खोल कर मँझली रानी को दिया और उनसे कह दिया, "मेरा यह बक्स तुम्हारे ही पास रहेगा, अब चिन्ता की कोई बात नहीं है।"

मँझली रानी ने गाल पर हाथ रख कर कहा, "तूने तो हद करदी, छोटी रानी ! मानों तू मेरे रुपये चुरा ले जायगी, इस भय के मारे मुझे रातों नींद नहीं आती !

मैंने कहा, "मन करने में दोष हो क्या है? संसार में कौन किसी के मन को जानता है?"

मंझली रानी ने कहा, "जान पड़ता है अभी स्वयं मुझ पर विश्वास करके मुझे शिक्षा देने आई है? मुझे अपना ही गहना रखना भारी हो रहा है, तेरे गहने की पहरेदारी करके तो बिल्कुल ही मर मिटूँगी। नौकर चाकर सब जगह आते जाते हैं, तुम अपना गहना वहाँ से ले आओ, बहिन।"

मंझली रानी के पास से मैं सीधी बैठक में चली गई और वहाँ अमूल्य को बुला भेजा। अमूल्य के साथ साथ देखती हूँ सन्दीप भी आ रहा है! उस समय देर करने का अवसर नहीं था, इसलिए मैंने सन्दीप से कहा, "अमूल्य से मुझे कुछ विशेष बातें करनी हैं, आपको थोड़ी देर के लिए...!"

सन्दीप ने रूखे भाव से हँसकर कहा, "मुझे और अमूल्य को क्या दो ही समझती हो? तुम यदि मेरे पास से उसे तोड़ लेना चाहती हो तो मैं वास्तव में उसे न रोक सकूँगा।"

मैं इस बात का कुछ उत्तर न देकर चुप खड़ी रही। सन्दीप ने कहा, "अच्छा तुम अमूल्य से अपनी विशेष बात समाप्त करलो, किन्तु फिर मैं भी विशेष बातों के लिए तुम से कुछ समय लूँगा, नहीं तो मैं हार में रहूँगा। मैं सब बात मान सकता हूँ पर हार नहीं मान सकता। मेरा भाग सब के भाग से अधिक होता है। इसी बात पर मेरी सदा विधाता से लड़ाई रहती है। पर मैं विधाता को हराऊँगा, आप नहीं हारूँगा।"

अमूल्य पर एक तीव्र दृष्टि डालकर सन्दीप कमरे से बाहर चला गया। मैंने अमूल्य से कहा, "मेरे प्यारे भाई, तुम्हें मेरे लिए एक काम करना पड़ेगा।"

उसने कहा, "तुम जो कहोगी मैं अपनी जान देकर करने को तैयार हूँ, बहिन।"

मैंने शाल में से गहने का बक्स निकाला और उसके सामने रखकर कहा, "मेरा यह गहना ले जाओ, चाहे गिरो करो, चाहे बेंच डालो, पर जितनी जल्दी हो सके मुझे छः हज़ार रुपये ला दो।"

अमूल्य ने कुछ दुखित होकर कहा, "नहीं बहन, गहना रहने दो, मैं तुम्हें छः हज़ार रुपये लादूँगा।"

मैंने कुछ रुष्ट होकर कहा, "ये बातें रहने दो, समय नहीं है। यह गहने का बक्स ले जाओ, और आज ही रात की गाड़ी से कलकत्ते चले जाओ, परसों तक मुझे रुपया मिल जाना चाहिये।"

अमूल्य ने एक हीरे का हार निकालकर उजाले में देखा और उदास होकर फिर उसे बक्स में रख दिया। मैंने कहा, "यह सब हीरे का गहना आसानी से ठीक दामों में नहीं बिक सकता, इसलिए मैंने जो तुम्हें गहना दिया है यह तीस हज़ार से भी कुछ ज़्यादा का होगा। यह सब भी चला जाय तो कुछ हर्ज नहीं पर छः हज़ार रुपये मुझे अवश्य चाहिये।"

अमूल्य ने कहा, "देखो जीजी सन्दीप बाबू ने जो ये छः हज़ार तुम से लिये हैं, इस पर मेरा उनसे झगड़ा हो गया

है। मैं कह नहीं सकता मुझे कैसी लज्जा मालूम हुई। सन्दीप बाबू ने कहा कि देश के लिए लज्जा का दमन करना पड़ेगा। इसे मैं मान सकता हूँ, पर यह तो बात ही दूसरी है। देश के लिए मरने से नहीं डरता, मारने में भी दया नहीं करता, इतनी शक्ति तो मुझे मिल गई है। पर तुम्हारे हाथ से यह रुपया लेकर मन में जो ग्लानि हुई है वह किसी तरह नहीं जाती। इस बात में सन्दीपबाबू का मन मुझ से कहीं कड़ा है, उन्हें रत्ती भर भी क्षोभ नहीं हुआ। वह कहते हैं, इस भूल को बिलकुल नष्ट कर देना चाहिए कि रुपया वास्तवमें उसी का होता है जिसके बक्स में रक्खा हो, इतना भी न हो तो बन्देमातरम् मन्त्र किस काम का है!"

यही कहते कहते अमूल्य उत्साहित हो उठा। जब मैं सुनने के लिए पास होती हूँ तो ऐसी बातों में उसका उत्साह और भी बढ़ जाता है। वह कहने लगा, "गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि आत्मा को कोई नहीं मार सकता। किसी को हत्या करना केवल बात ही बात है। रुपया ले लेना भी ऐसी ही बात है। रुपया किसका है? उसे किसी ने बनाया नहीं है। उसे कोई साथ नहीं ले जाता, वह किसी की आत्मा से जुड़ा हुआ नहीं है। वह आज मेरा है, कल मेरे लड़के का है, और किसी दिन मेरे महाजन का है। यह चंचल रुपया जब किसी का नहीं है तो तुम्हारे निकम्मे कपूतों के लिए छोड़कर यदि हम उसे देश-सेवकों की सेवा में लगा दें तो इसमें बुराई ही क्या है?"

सन्दीप के मुँह की बात इस बालक के मुँह से सुन कर मैं डर के मारे काँप उठती हूँ। जो सपेरे हैं वे बीन बजाकर साँप के साथ खेला करें, यदि मरेंगे तो जान बूझकर मरेंगे। पर ये बालक तो ऐसे कोमल हैं, ऐसे भोले भाले हैं कि समस्त संसार आशीर्वाद देकर इनकी रक्षा करना चाहता है; ये साँप को साँप न समझ कर हँसते हुए उसके साथ खेलने को हाथ बढ़ाते हैं, तभी मेरी समझ में आता है कि यह साँप कैसा भयंकर-अभिशाप है! सन्दीप का अनुमान बहुत ठीक है कि उसके हाथों में अपना सर्वनाश करा सकती हूँ पर इस बालक को मैं उसके हाथ से अवश्य बचाऊँगी और उसकी रक्षा करूँगी।

मैंने ज़रा हँसकर अमूल्य से कहा, "जान पड़ता है तुम्हारे देश-सेवकों को सेवा के लिए भी रुपये की ज़रूरत है?"

अमूल्य ने गर्व के साथ सिर उठाकर कहा, "है ही इसमें सन्देह क्या? वेही तो हमारे राजा हैं, दारिद्र उन्हें शोभा नहीं देता। आप जानती होंगी कि हम सन्दीपबाबू को फ़र्स्ट क्लास के सिवा किसी गाड़ी में नहीं बैठने देते। वे राजकीय ठाट से ज़रा भी संकुचित नहीं होते, उन्हें जो मानमर्यादा रखनी पड़ती है वह अपने लिए नहीं बल्कि हम सब के लिए है। सन्दीप बाबू कहते हैं कि संसार में जो ईश्वर है ऐश्वर्य का सम्मोहन ही उनका सब से बड़ा अस्त्र है। दारिद्र्यव्रत ग्रहण करना उनके लिए दुःख ग्रहण करना नहीं है आत्मघात करना है।"

इसी समय सन्दीप भी चुपके से अकस्मात् कमरे में

आ गया, मैंने जल्दी से अपने गहने के बक्स के ऊपर शाल ढक दी। सन्दीप ने व्यङ्गपूर्ण स्वर से पूछा, "जान पड़ता है, अभी अमूल्य के साथ तुम्हारी विशेष बातें पूरी नहीं हुई ?"

अमूल्य ने कुछ लज्जित होकर कहा, "नहीं, हमारी बातें हो चुकीं, विशेष कुछ नहीं था।"

मैंने कहा, "नहीं अमूल्य, अभी नहीं हो चुकीं।"

सन्दीप ने कहा, "तो क्या दूसरी बार सन्दीप का प्रस्थान होगा ?"

मैंने कहा, "हाँ।"

"तो फिर सन्दीप कुमार का पुनः प्रवेश... ?"

"आज नहीं, मुझे समय नहीं मिलेगा।"

सन्दीप की दोनों आँखें जल उठीं। केवल विशेष काम के लिए समय है, नष्ट करने को समय नहीं है ?"

ईर्षा! प्रबल जहाँ दुर्बल हो जाता है वहाँ क्या अबला बिना अपना जयडङ्का बजाये रह सकती है ? मैंने भी दृढ़ स्वर से कहा, "नहीं मुझे समय नहीं है।"

सन्दीप कुछ बुरा मानकर बाहर चला गया। अमूल्य घबराकर बोला, "जीजी, सन्दीपबाबू नाराज़ हो गये।"

मैंने गर्व से कहा, "उन्हें नाराज़ होने के लिए न कोई कारण है न अधिकार है। एक बात तुम से कहे देती हूँ, अमूल्य, गहने की बिक्री का ज़िक्र सन्दीप बाबू से मरते मरते भी न करना।"

अमूल्य ने कहा, "नहीं करूँगा।"

"तो फिर और देर मत करो, आज ही रात की गाड़ी से चले जाओ।"

यह कहकर मैं अमूल्य के साथ कमरे से बाहर निकल आई। देखा सन्दीप बरामदे में खड़ा है। मैं समझ गई वह अमूल्य को रोकना चाहता है। उसी को बचाने के लिए मुझे कहना पड़ा, "सन्दीपबाबू, आप मुझ से क्या कह रहे थे?"

"मेरी बात तो विशेष बात नहीं है, केवल साधारण बात है, जब समय नहीं है तो...।"

मैंने कहा, "है समय।"

अमूल्य चला गया। कमरे में घुसते ही सन्दीप ने कहा, "अमूल्य को आपने जो बक्स दिया था उसमें क्या है?"

बक्स सन्दीप की आँखों से न छिप सका। मैंने कुछ कड़े स्वर से उत्तर दिया, "आप को बताने की बात होती तो आपके सामने ही देदेती।"

"तुम समझती हो अमूल्य मुझ से नहीं कहेगा?"

"नहीं, वह नहीं कहेगा।"

सन्दीप का क्रोध और न रुक सका, उसने एक दम आग बबूला होकर कहा, "तुम समझती हो तुम मेरे ऊपर प्रभुत्व करोगी, यह कभी नहीं हो सकता। यही अमूल्य उसे यदि मैं अपने पैरों में कुचल कर मार डालूं तो वह सुख से मरेगा। तुम उसे अपने वश में करना चाहती हो; मेरे रहते यह कभी नहीं हो सकता।"

दुर्बल, दुर्बल! इतने दिन में सन्दीप को मालूम हुआ है कि वह मेरे सामने दुर्बल है। इसीलिए यह क्रोध अकस्मात् भड़क उठा है। अब उसकी समझ में आया है कि

मेरी शक्ति के सामने ज़बर्दस्ती नहीं चलेगी,—मैं अपने कटाक्ष के आघात से उसके दुर्ग की दीवारें चूर चूर कर सकती हूँ। इसी कारण डींग और धमकी से काम लिया जा रहा है। मैंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और मुझे हँसी आने लगी। आज इतने दिन बाद उससे ऊँचे स्थल पर खड़ी हुई हूँ—अब मेरा यह स्थान जाने न पायेगा, अब मैं नीचे न उतरूंगी। मेरी दुर्गति में भी मानों मेरा मान कुछ न कुछ बना रहेगा!

सन्दीप ने कहा, "मैं जानता हूँ वह गहने का बक्स है।"

मैंने कहा, "आप जो चाहें समझिए, मैं कुछ न बताऊँगी।"

"तुम अमूल्य को मुझसे अधिक विश्वसनीय समझती हो? समझ लो वह मेरी छाया की छाया है, प्रतिध्वनि की प्रतिध्वनि है, मेरे पास से हटते ही वह कुछ भी नहीं है!"

"जहाँ वह तुम्हारी प्रतिध्वनि नहीं है वहीं वह अमूल्य है, वहीं मैं उस पर तुम्हारी प्रतिध्वनि की अपेक्षा अधिक विश्वास रखती हूँ।"

"माता की पूजा-प्रतिष्ठा के लिए तुम अपना सब गहना अर्पण कर चुकी हो, अब यह बात भूल जाने से काम नहीं चलेगा; नहीं, बल्कि तुम पहिले ही दे चुकी हो।"

"जो गहना देवता मेरे पास बाक़ी रक्खेंगे वह मैं सहर्ष देवता को दूँगी। पर मेरा जो गहना चोरी हो गया वह मैं कैसे दे सकती हूँ?"

"देखो इस प्रकार बातें बनाने से काम नहीं चलेगा। इस समय मुझे काम करना है, यह काम समाप्त हो जाय इसके बाद तुम्हें अपना यह त्रियाचरित्र दिखाने का समय मिल जायगा। फिर उस लीला में मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा।"

उससे मैंने अपने स्वामी का रुपया चुरा कर सन्दीप के हाथ में दिया है ठीक उसी समय से हमारे सम्बन्ध के भीतर का संगीत न जाने कहाँ चला गया। केवल यही नहीं है कि मैं अपना गौरव सम्मान खोकर नीचे गिर पड़ी हूँ—सन्दीप की शक्ति को भी अब मेरे ऊपर भरपूर आघात करने का अवसर नहीं मिलता। जो चीज़ मुट्ठी में आ गई उस पर जोर नहीं लगता। इसलिए आज सन्दीप पहले के समान वीर मूर्ति नहीं है। उसकी बातों में झूँझल और छिछोड़पन का स्वर सुनाई पड़ता है।

सन्दीप ने अपनी दोनों उज्ज्वल आँखें मेरे मुख पर जमा लीं, देखते देखते उसकी आँखें मानों दोपहर के आकाश के समान जलने लगीं। उसके पाँव बार बार चंचल हो उठते थे, मानों उठने की चेष्टा कर रहा है और झपट कर मुझे पकड़ लेना चाहता है। मेरी छाती में धड़कन होने लगी। मेरे शरीर को नस नस फड़क रही थी और कान में रक्त भाँ भाँ कर रहा था; मैं समझ गई कि ज़रा भी और बैठी रही तो फिर न उठ सकूँगी। अपना सारा ज़ोर लगा कर मैं कुरसी से उठ खड़ी हुई और द्वार की ओर झपटी। सन्दीप ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—"कहाँ भागती हो, रानी?"

यह कह कर सन्दीप जल्दी से उठकर मुझे पकड़ने के लिए झपटा। पर ठीक इसी समय बाहर जूते का शब्द सुनाई पड़ा और सन्दीप झटपट लौट कर कुर्सी पर बैठ गया। मैं किताबों की आलमारी की ओर मुँह किए किताबों के नाम पढ़ने लगी।

कमरे में मेरे स्वामी के आते ही सन्दीप ने कहा, "क्यों निखिल तुम्हारी किताबों में ब्राउनिंग* नहीं है? मैं मक्खी रानी से अपने उसी कालेज-क्लब का ज़िक्र कर रहा था—याद है, ब्राउनिंग की उस कविता के अनुवाद पर हम चार जनों में कैसी लड़ाई हुई थी? भूल गए?—

She should never have looked at me,
If she meant I should not love her!
There are plenty...men you call such,
I suppose...she may discover
All her soul to, if she pleases
And yet leave much as she found them:
But I am not so, and she knew it
When she fixed me, glancing round them.

मैंने जैसे तैसे इसकी भाषा भी करली थी, पर वह कुछ सन्तोषजनक न हो सकी। एक बार मैंने सोचा था कि मैं भी कवि हुआ रक्खा हूँ, ज़रा सी कसर है, विधाता ने दया करके मेरा यह संकट काट दिया—पर हमारा दक्षिणाचरण तो नमक का इन्सपेक्टर न हो गया होता

* अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध कवि Browning।

तो वास्तव में कवि हो सकता था; उसने ख़ासा अनुवाद कर लिया था—पढ़ कर जान पड़ता था कि वास्तव में हमारे देश की भाषा है, किसी कल्पित देश की भाषा नहीं है—

न हो कुछ प्रेम आपस में यही यदि उसके मन में था
तो क्या फिर भी उचित था यों मेरे मन को लुभा लेना ?
मनुष्य ऐसे बहुत मिल जायँगे ढूंढने से दुनियाँ में,
(अगर उनकी भी गिनती हम—मनुष्यों ही में कर बैठें।)
कि रख देती अगर वह दिल भी अपना सामने उनके
तो वह मिट्टी के माधो फिर भी वैसे ही धरे रहते।
यह वह ख़ुद जानती थी मैं नहीं हूँ आदमी ऐसा,
जब उसने छोड़ कर सब को मेरे ही दिल को छेदा था।

नहीं मक्खीरानी तुम व्यर्थ ढूँढ रही हो—निखिल ने विवाह के समय से कविता पढ़ना बिल्कुल छोड़ दिया है, जान पड़ता है उसे अब आवश्यकता भी नहीं है। मुझे काम के ज़ोर के कारण छोड़ना पड़ा, पर जान पड़ता है 'काव्यज्वरो मनुष्यशाम' मुझे फिर पकड़ लेना चाहता है !"

मेरे स्वामी ने कहा, "मैं तुम्हें सचेत करने आया हूँ, सन्दीप।"

सन्दीप ने कहा, "काव्यज्वर के सम्बन्ध में ?"

स्वामी ने इस मज़ाक़ की ओर कुछ ध्यान न देकर कहा, "कुछ समय से ढाके के मौलवियों ने आना जाना शुरू किया है—इस ओर के मुसलमानों को चुपके चुपके उभारने का उद्योग हो रहा है। तुमसे वे लोग बहुत नाराज़ हैं, संभव है कुछ उत्पात कर बैठें।"

"फिर क्या भाग जाने की राय देते हो ?"

" मैं ख़बर देने आया हूँ राय देना नहीं चाहता।"

" मैं यदि यहाँ का ज़मींदार होता तो चिंता का विषय मुसलमानों के लिए ही होता, मेरे लिए न होता। तुम मुझे न डरा कर उन्हीं को ज़रा दबाये रक्खो तो तुम्हारे और मेरे दोनों के योग्य बात हो। जानते हो कि तुम्हारी दुर्बलता ने आसपास के ज़मींदारों को भी बेवस करदिया है ?"

"सन्दीप, मैं तुम्हें उपदेश नहीं देता, तुम भी मुझे न दो तो अच्छा है। मुझे एक बात और कहनी है। तुम कुछ दिन से अपना दलबल लिए मेरी रैयत को तंग कर रहे हो। अब मैं ऐसा न होने दूँगा, अब तुम्हें मेरे इलाक़े से चला जाना चाहिये।"

" मुसलमानों के ही कारण या और भी कुछ भय को बात है ?"

" कुछ बातें ऐसी भो होती हैं जिनका भय न करना ही कायरता है। मैं ऐसे ही भय के कारण तुम से कह रहा हूँ, कि तुम को यहाँ से जाना पड़ेगा। चार पाँच दिन बाद मैं कलकत्ते जा रहा हूँ, उसी समय तुम भी मेरे साथ चले चलना। कलकत्ते में तुम मेरे मकान में रह सकते हो, इसमें कुछ हर्ज नहीं है।"

" अच्छा, तो अभी तो पाँच दिन बाक़ी हैं। इतने समय में आओ मक्खीरानी तुम्हारे छत्ते से विदा होने का गीत गा लें। हे आधुनिक बंगाल के कवि आओ तुम्हारी वाणी को लूट लें, अपना द्वार खोल दो,—चोरी तुम्हीं ने की है—तुमने मेरे ही गीत को अपना कर लिया है—नाम तुम्हारा हुआ करे पर गीत तो मेरा ही है।"

यह कह कर सन्दीप ने अपने मोटे बेसुरे गले से भैरवी में यह गीत गाना शुरू कर दिया—

मधुऋतु नित्य होये रइलो तोमार मधुर देशे ।
जाओया-आसार कान्नाहासि हाओयाय सेथा बेड़ाय भेसे।
जाय जे जना सेई सुधु जाय, फूले फोटा तो फुरोय ना हाय,
झरबे जे फूल सेई केवलि झरे, पड़े बेलाशेषे ।
यखन आमि छिलेम काछे तखन कतो दियेछि गान,
एखन आमार दूरे जाओया एरो किगो नाई कोनो दान ?
पुष्पवनेर छायाय ढेके एई आशा ताई गेलेम रेखे
आगुनभरा फागुनके तोर कांदाय जेनो आषाढ़ एसे ।।

उत्तेजना का अन्त नहीं था, मानों एकदम अग्नि भड़क उठी है। उसे रोकना वज्र को रोकना था।

मैं कमरे से बाहर निकल आई। जैसे ही भीतर जाने लगी अमूल्य अकस्मात् आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। कहने लगा, "बहिन, तुम कुछ सोच न करना। मैं जा रहा हूँ, निष्फल होकर न लौटूंगा!"

तुम्हारे सुन्दर देश में वसन्त ऋतु स्थायी होकर रहने लगी। तुम्हारे देश की हवा वियोग के विलाप और संयोग की हँसी से सदा गूंजा करती रही। जिस मनुष्य को जाना है वह अकेला ही जाता है। फूलों का खिलना बन्द नहीं होता। जिस फूल को झड़ना है वही समय आने पर झड़ पड़ता है। जबतक मैं तुम्हारे निकट रहा मैंने तुम्हें अनेक गीत सुनाये। अब मेरे विदा होने का समय आया, क्या अब मुझे कुछ दान नहीं मिलेगा? मैं इसी कारण पुष्पवन की छाया में ढक कर यह आशा रक्खे जाता हूँ कि तुम्हारे अग्नि भरे (फूलों से सुशोभित) फागुन को आषाढ़ (वर्षा ऋतु) आकर खूब रुलाये।

मैंने उसके निष्ठापूर्ण तरुण मुख की ओर देख कर कहा, "अमूल्य अपने लिए सोच नहीं करूँगी, पर तुम्हारे लिए तो सोच किये बिना नहीं रह सकती।"

अमूल्य जाने लगा, पर मैंने उसे फिर बुलाकर पूछा, "अमूल्य तुम्हारी माँ हैं ?"

"हैं।"

"बहिन ?"

"नहीं, और बहिन भाई कोई नहीं है। पिता मुझे छोटा सा ही छोड़कर मर गये थे।"

"जाओ, तुम अपनी माँ के पास लौट जाओ, अमूल्य।"

"जीजी, मैं तो यहाँ अपनी माँ को भी देख रहा हूँ, बहिन को भी देख रहा हूँ।"

मैंने कहा, "अमूल्य, आज रात को जाने से पहले तुम यहाँ भोजन करके जाना।"

उसने कहा, "समय नहीं मिलेगा, तुम मुझे अपना कुछ प्रसाद दे देना मैं साथ लेता जाऊँगा।"

"तुम्हें क्या चीज़ सबसे ज़्यादा पसन्द है अमूल्य ?"

"इन दिनों में जब माँ के पास रहता हूँ तो खूब पेट भर कर गूँझे खाता हूँ। जब लौट कर आऊँगा तब तुम्हारे हाथ के तैयार किए हुए गूँझे खाऊँगा।"

निखिलेश की आत्म-कथा ।

मुझे मास्टर साहब से ख़बर मिली कि सन्दीप हरीश कुराडु के साथ मिलकर बड़ी धूमधाम से महिषमर्दिनी की पूजा का प्रबन्ध कर रहा है। इस पूजा का ख़र्च हरीश कुराडु ने अपनी रैयत से उगाना शुरू कर दिया है। कविरत्न और विद्यावागीश महाशयों से स्तुति लिखने की प्रार्थना की गई है।

मास्टर साहब के साथ इसी बात पर सन्दीप की बहस भी हो चुकी है। सन्दीप कहता है, "देवताओं का भी एवोल्यूशन होता है; पितामह ने जिस देवता की सृष्टि की थी, यदि पौत्र उसी देवता को अपने मत के अनुसार न बना सके तो वह अवश्य नास्तिक हो जायगा। पुराने देवताओं को आधुनिक बनाना ही मेरा जीवनकार्य है, देवताओं को अतीत के बन्धन से मुक्ति देने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है। मैं देवताओं का उद्धार करता हूँ।"

मैं सन्दीप का जादू बचपन से देखता आया हूँ,—सत्य को आविष्कार करने की उसे ज़रा भी चिन्ता नहीं है, सत्य को गोरखधंधा बना डालने ही में उसे आनन्द मिलता है। यदि उसका जन्म मध्य अफ्रिका में हुआ होता तो वह बड़े आनन्द के साथ नई नई युक्तियों से प्रमाणित करता कि नर-बलि देकर नर-मांस भोजन करना ही मनुष्य को मनुष्य का अन्तरङ्ग बनाने की श्रेष्ठ साधना है। जिसका काम भुलाना ही है वह स्वयं आप को भी बिना भूल नहीं

रह सकता। मेरा विश्वास है कि जब कभी भी सन्दीप एक नई भूलभुलैयाँ गढ़ लेता है वह तुरन्त समझ बैठता है कि मैंने सत्य को ढूंढ़ निकाला—चाहे उसके एक विचार के साथ दूसरे विचार का कितना ही विरोध क्यों न हो!

मैंने विमला के सामने ही सन्दीप से कह दिया कि तुम्हें मेरे यहाँ से चला जाना चाहिए। इससे संभवतः विमला और सन्दीप दोनों ने मेरा मतलब कुछ और समझा होगा। पर मुझे इस भय से भी मुक्त हो जाना चाहिए। विमला भी यदि समझती है कि मेरे मन में कुछ और बात है तो समझा करे।

ढाके से मौलवी प्रचारकों का आना जाना लगा है। मेरे इलाके के मुसलमान गोहत्या से प्रायः हिन्दुओं के समान घृणा करते थे। पर अब दो एक जगह गाय ज़िबह हुई है। मुझे अपने मुसलमान प्रजा से ही इसकी पहले पहल ख़बर मिली और उन्हीं लोगों से इसका प्रतिवाद भी सुना। मैंने समझ लिया कि इस बार मुश्किल का सामना होगा। एक प्रकार की झूठ मूठ की ज़िद ही इस मामले की जड़ मूल है, पर ज़बर्दस्ती करने ही से जो बात निर्मूल है वह वास्तविक हो उठेगी। यही तो हमारे विरुद्ध पक्ष की चाल है।

मैंने अपनी हिन्दू रिआया के कुछ प्रधान प्रधान आदमियों को बुला कर बहुत समझाया बुझाया। मैंने उनसे कहा, "अपने धर्म्म का हम पालन कर सकते हैं, पर दूसरे के धर्म्म पर हमें कुछ अधिकार नहीं है। मैं वैष्णव हूँ, इस ख़याल से शाक्त मत के लोग रक्तपात थोड़े ही छोड़ देंगे। फिर क्या उपाय है? मुसलमानों को भी अपने धर्म्म

पर चलने देना चाहिए। गड़बड़ मचाना ठीक नहीं है।"

वे बोले, "महाराज, इतने दिन से तो यह सब उत्पात बन्द था।"

मैंने कहा, "बन्द था, पर यह उनकी इच्छा थी। अब फिर वही पथ लेना चाहिए जिससे वे अपनी इच्छा से बन्द रक्खें। वह लड़ाई झगड़े का पथ नहीं है।"

वे बोले, "नहीं महाराज, वे दिन गये। अब उनका दमन किये बिना काम नहीं चलेगा।"

मैंने कहा, "दमन से गो-हिंसा तो रुकने से रही, ऊपर से मनुष्य-हिंसा हो जानी संभव है।"

इन लोगों में एक आदमी अङ्गरेज़ी पढ़ा भी था; वह आज कल की बोली में बातें करना जानता था। उसने कहा, "देखिए, यह तो केवल धर्म और संस्कार की बात नहीं है, हमारा देश कृषि-प्रधान है, इस देश में गायों से ही..."

मैंने कहा, "इस देश में भैंस भी दूध देती है और भैंसे हल चलाते हैं, पर उनका कटा मुण्ड अपने सिर पर रख शरीर में खून सान जिस समय सारे में नाचते फिरते हैं उस समय धर्म की दुहाई देकर यदि हम मुसलमानों से झगड़ा करेंगे तो धर्म भी मन ही मन हँसेगा और केवल आपस का झगड़ा ही प्रबल हो उठेगा। केवल गाय को ही यदि अवध्य मानें और भैंस को अवध्य न मानें तो यह धर्म नहीं है—कोरा कट्टरपन है।"

अङ्गरेज़ी-पढ़े महाशय बोले, "इस सब का कारण क्या है, यह क्या आप नहीं जानते? मुसलमान जान गये हैं

कि हम से कोई रोक-टोक नहीं करेगा। पाँचुड़े में उन्होंने कैसा उत्पात किया है, वह तो आपने सुना होगा?"

मैंने कहा, "यह जो मुसलमानों को अस्त्र बनाकर हमारे ऊपर छोड़ा जा रहा है—यह अस्त्र हमने अपने ही हाथों से तैयार किया—धर्म्म का इसी प्रकार न्याय होता है। हमने जो कुछ इतने दिन से जमा किया है वह हमारे ही ऊपर ख़र्च होगा।"

अक्षरेज़ों पढ़े महाशय ने कहा, "बहुत अच्छा, ख़र्च होगा तो होने दीजिए। पर इसमें हमारे लिए भी एक प्रकार का सुख है—इस बार हमारी ही जीत है—जिस क़ानून को वे सब से बड़ा मानते हैं, उसी क़ानून को आज हमने चूर कर दिया। इतने दिन उन्होंने राज किया है, आज हम उन्हें डाकू बनाकर छोड़ेंगे। यह बात इतिहास में न लिखी जायगी, पर हमारे मन में सदा अंकित रहेगी।"

इस ओर समाचार-पत्रों ने मुझे नक्कू बना रखा है। मैंने सुना है कि चक्रवर्ती ज़मींदार के इलाक़े में नदी के किनारे श्मशान घाट पर देश-सेवकों ने मेरी मूर्ति बनाकर बड़ी धूम-धाम के साथ जलाई है और उसके साथ और भी अनेक प्रकार से मेरा अपमान किया है। इन लोगों ने एक कपड़े की मिल खोलने का प्रबन्ध किया था और मेरे हाथ बहुत से हिस्से बेचने आये थे। मैंने उनसे कह दिया था कि केवल रुपये ही का नुक़सान होता तो मुझे परवाह न होती, लेकिन तुम जो कारख़ाना खोल रहे हो इस में बहुत से ग़रीबों का रुपया मारा जायगा। इसलिए मैं हिस्से नहीं ख़रीदूँगा।

"क्यों महाराज, क्या देश के हित का आपको बिल्कुल ख़याल नहीं है?"

"कारबार करने से देश का लाभ हो सकता है पर केवल देश-हित के ख़याल से ही तो कारबार सफल नहीं होता। जब हम सावधान थे उसी समय जब हमारा कारबार नहीं चला तो अब उत्तेजित और उन्मत्त होकर हम क्या कर सकते हैं?"

"आप साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते कि मुझे हिस्से नहीं ख़रीदने।"

"ख़रीदूँगा, पर जब तुम कारबार को कारबार की तरह चलाओगे। तुम्हारी आग जल रही है इसी कारण तुम्हारी हाँडी भी चढ़ जायगी, इसका तो मैं कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं देखता।"

यह कैसी ख़बर सुन रहा हूँ। मेरे चकवावाले ख़ज़ाने में डाका पड़ गया। कल रात साढ़े सात हज़ार रुपये वहाँ जमा किये गये थे और आज सबेरे हमारे सदर ख़ज़ाने को भेजे जानेवाले थे। रुपया भेजने में सुभीता होगा इस विचार से ख़ज़ांची ने सरकारी ख़ज़ाने से रुपये के बदले नोट ले लिए थे और उनकी गड्डियाँ बनाकर रख छोड़ी थीं। आधी रात के करीब डाकुओं का दल बन्दूक, पिस्तौल लिए मालख़ाने पर आ धमका। क़ासिम सिपाही गोली खा कर ज़ख़्मी होगया। आश्चर्य का विषय यह कि डाकुओं ने केवल छः हज़ार लेकर बाक़ी डेढ़ हज़ार के नोट वहीं पड़े छोड़ दिए। वे आसानी से सब रुपया ले जा सकते थे। जो हो, डाकुओं का धावा तो ख़तम हुआ अब

पुलिस का धावा आरम्भ होगा। रुपया तो गया ही अब शान्ति भी न रहेगी।

घर के भीतर गया तो देखा वहाँ पहले ही ख़बर पहुँच चुकी थी। मँझली रानी ने आकर कहा, "भैया यह क्या सर्वनाश हो गया?" मैंने बात टालने के लिए कहा, "सर्व-नाश तो अभी नहीं हुआ। खाने-पीने को तो अब भी काफ़ी है।"

"नहीं भैया, हँसी की बात नहीं है। तुम्हारे पीछे ये लोग क्यों पड़ गये हैं। और किसी तरह काम न चले तो तुम ही ज़रा उनकी बात रखलिया करो। सब से बिगाड़ने में क्या धरा है।"

"मैं किसी को सन्तुष्ट करके देश का सत्यानाश नहीं कर सकता।"

"उस दिन उन लोगों ने नदी के घाट पर क्या क्या उत्पात किया था। छी छी! मेरे तो डर के मारे प्राण निकले जाते हैं। छोटी रानी तो मेम से पढ़ी है, उसका तो डर बिल्कुल निकल गया है। पर मैंने तो केनाराम पुरोहित का बुला कर शान्ति स्वस्त्ययन कराया जब ज़रा जान में जान आई। मेरी बात मानो भैया तुम तुरन्त कलकत्ते चले जाओ—यहाँ रहोगे तो ये लोग न जाने किस दिन क्या कर बैठें!"

मँझली रानी की सहानुभूति ने मेरी आत्मा पर मानों सुधावर्षण कर दिया। हे अन्नपूर्णा, मैं तुम्हारे हृदय के द्वार पर सदा भिखारी रहूँगा।

"भैया, तुम्हारे सोने के कमरे-वाली कोठरी में जो रुपया

रक्खा है वह क्या अब भी वहीं रक्खा रहेगा? कहीं से उन्हें ख़बर मिल गई तो न जाने क्या कर बैठें—मुझे रुपये का कुछ ख्याल नहीं है पर...!"

मैंने मँझली रानी को शान्त करने के लिए कहा, "अच्छा, वह रुपया निकाल कर मैं अभी ख़ज़ांची के पास भेजे देता हूँ। परसों ही कलकत्ते जाकर उसे बैंक में जमा कर आऊँगा।"

यह कहकर अपने सोने के कमरे में घुसा तो देखा कि अन्दर की कोठरी बन्द है। द्वार पर धक्का दिया तो भीतर से विमला ने कहा, "मैं कपड़े पहन रही हूँ।"

मँझली रानी ने कहा, "इतने सबेरे से ही छोटी रानी का सिंगार होने लगा। जान पड़ता है आज बन्देमातरम् की सभा जुटने वाली है। अरी ओ देवी चौधरानी, वहाँ बैठी बैठी क्या लूट का माल संगवा रही है?"

और थोड़ी देर पीछे देखा जायगा यह सोचकर मैं बाहर चला आया। वहाँ देखा कि पुलिस इन्स्पेक्टर मौजूद हैं। मैंने उनसे पूछा, "क्यों कुछ पता लगा?"

"कुछ सन्देह तो हुआ है।"

"किस पर?"

"उसी क़ासिम सिपाही पर।"

"यह क्या कहते हो? वह तो बड़े भरोसे का आदमी है।"

"भरोसे का आदमी हो सकता है, पर इससे यह तो साबित नहीं होता कि वह चोरी नहीं कर सकता। मैं देख

चुका हूं कि पच्चीस बरस जो आदमी बराबर विश्वसनीय रहा हो वह भी एक दिन आकर अकस्मात् ...!"

"ऐसा हो भी तो भी मैं उसे जेल नहीं भेज सकता। क़ासिम ने छः हज़ार लेकर बाक़ी रुपया छोड़ क्यों दिया ?"

"केवल हमें धोका देने के लिए। आप जो चाहें सो कहें वह आदमी है बड़ा चलता हुआ। वह आपके यहाँ पहरा अवश्य देता है पर यहाँ आस पास में जितने डाके पड़े हैं उन सब की जड़मूल वही है।"

यह कहकर इन्सपेक्टर ने बहुत से दृष्टान्त देकर मुझे बताया कि एक आदमी २५। ३० मील की दूरी पर डाका डाल सकता है और फिर ठीक समय पर आकर अपनी हाज़िरी भी लिखा सकता है।

मैंने पूछा, "आप क़ासिम को लाये हैं ?"

उसने उत्तर दिया, "नहीं, वह थाने में है। बड़े साहब तहक़ीक़ात के लिए आनेवाले हैं।"

मैंने कहा, "मैं भी उसे देखना चाहता हूँ।"

क़ासिम ने जैसे ही मुझे देखा मेरे पैरों पर गिर पड़ा और रोकर कहने लगा, "ख़ुदा की क़सम, महाराज मैंने यह काम नहीं किया।"

मैंने कहा, "क़ासिम मैं तुम पर सन्देह नहीं करता। तुम्हें कुछ डर नहीं है। मैं बिना अपराध तुम्हें सज़ा न होने दूँगा।"

क़ासिम डकैती का ठीक ठीक हाल न बता सका, केवल बढ़ा बढ़ा कर बातें बताने लगा—चार सौ पाँच सौ आदमी

ऐसी बड़ी बड़ी बन्दूकें, चमकती हुई तलवारें इत्यादि इत्यादि। मैं समझ गया यह सब झूठ बातें हैं, या तो डर के मारे उसे सब चीज़ें बड़ी बड़ी दिखाई पड़ीं था हार की लज्जा दबाने के लिए जान कर अत्युक्ति कर रहा है। उसका विचार था कि हरीशकुण्डू से मेरी शत्रुता है और यह उसी का काम है। केवल यही नहीं, उसे तो विश्वास था कि उसने उनके सिपाही इकराम की आवाज़ साफ़ साफ़ सुनी थी।

मैंने कहा, "देखो क़ासिम, अनुमान के ऊपर भरोसा करके किसी का नाम कदापि न ले देना। हरीशकुण्डू इस मामले में शामिल है या नहीं, यह साबित करने का भार तुम्हारे ऊपर नहीं है।"

घर आकर मैंने मास्टर साहब को बुला भेजा। वह गम्भीर होकर बोले, "अब कल्याण नहीं है। हमने धर्म्म को हटा कर देश को उसकी जगह रखदिया है। अब देश का सब पाप उद्धत होकर फूट निकलेगा। उसे अब कोई रुकावट न रहेगी।"

"आपका क्या विचार है? इस मामले में ...।"

"मैं नहीं जानता, पर अत्याचार की हवा चल पड़ी है। तुम इन लोगों को अपने इलाक़े से इसी दम विदा कर दो, ज़रा भी न ठहरने दो।"

"मैंने एक दिन का और समय दे दिया, परसों ये सब चले जायँगे।"

"देखो मैं एक बात कहता हूँ। बिमला को कलकत्ते ले जाओ। यहाँ उसने संसार को बहुत संकीर्ण रूप में देखा

है, सब मनुष्यों और सब वस्तुओं का ठीक परिमाण नहीं समझ सकती। उसे तुम दुनियाँ को ज़रा सैर करादो—मनुष्य को और मनुष्य के कर्म-क्षेत्र को, उसे अच्छी तरह देख लेने दो।"

"मैंने भी यही बात सोची थी।"

"पर देर करना ठीक नहीं है। देखो निखिल, मनुष्य का इतिहास पृथ्वी के समस्त देशों और समस्त जातियों के आचरण से तैयार हो रहा है, इसीलिए राजनीति में भी धर्म्म को बेचकर देश को देवता बनाने से काम नहीं चलेगा। मैं जानता हूँ कि यूरुपवाले इस बात पर विश्वास नहीं रखते, पर यह मैं नहीं मानता कि इसी कारण वे हमारे गुरु हो सकते हैं। सत्य के लिए मनुष्य प्राण देकर अमर हो जाते हैं, यदि कोई जाति सत्य के लिए प्राण देगी तो वह भी इतिहास में अजर अमर बनी रहेगी। और कहीं न सही कम से कम भारतवर्ष में तो हमें सत्य के इस आदर्श को वास्तविक कर दिखाना चाहिए। यद्यपि आजकल यहाँ शैतान ने अपने अभ्र-भेदी, परिहास-पूर्ण गर्जन से धूम मचा रक्खी है! न जाने यह पाप की महारानी हमारे देश में कहाँ से आघुसी है।"

सारा दिन इसी मामले की छान बीन में कट गया। जब मैं रात को सोने के लिए गया तो बिलकुल थक गया था। वह रुपया उस दिन न निकाल कर अगले दिन सबेरे निकालना निश्चय किया। रात में सोते २ मेरी एकदम आँख खुल गई। चारों ओर अन्धकार था। किसी चीज़ की आवाज़ मेरे कान में पड़ी। जान पड़ा कोई रो रहा है।

वर्षा की रात में हवा के झोंके के समान अश्रु-जल से भरी हुई लम्बी लम्बी सांसों की आवाज़ रह रह कर मेरे कानों में आने लगी। मुझे ऐसा विदित हुआ कि यह आवाज़ मेरे कमरे के हृदय से ही निकल रही है।

मेरे कमरे में और कोई नहीं था। विमला कुछ दिन से किसी और कमरे में सोती है। मैं उठ खड़ा हुआ। बाहर बरामदे में जाकर देखा कि विमला धरती पर मुंह के बल पड़ी है। उस समय की दशा का वर्णन करना बहुत कठिन है। यह केवल वही जानता है जो विश्व-धर्म्म के भाण्ड में बैठा हुआ जगत की समस्त वेदना को ग्रहण करता है। आकाश पर सन्नाटा छाया हुआ था। तारे चुपचाप एकटक देख रहे थे। रात्रि निस्तब्ध थी। और इसी सब के बीच में वही एक निद्रा-हीन रोने की आवाज़ थी।

हम इस सब दुख-सुख को संसार और शास्त्र के साथ मिला कर अच्छा या बुरा कहने लगते है, किन्तु अन्धकार के हृदय को तोड़ कर यह जो दुःख का श्रोत खुल पड़ा है, इसे किस नाम से पुकारेंगे। उस निशीथ रात्रि में उन लाखों करोड़ों तारों की निस्तब्धता के मध्य में खड़े होकर जिस समय मैंने उसकी ओर देखा तो मेरा मन भयभीत होकर कहने लगा, "मैं उसके गुण दोषों पर विचार करने वाला कौन हूँ। हे प्राण! हे मृत्यु! हे असीम विश्व, हे असीम विश्व के ईश्वर, तुम में जो रहस्य भरा है मैं उसे हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ।"

मैंने एक बार सोचा कि लौट चलूं, किन्तु यह न कर-सका। धीरे धीरे विमला के पास जा बैठा और उसके सिर

पर हाथ रख दिया। पहिले पहल उसका सारा शरीर काठ के समान कड़ा हो गया। पर तुरन्त ही कठिनता को तोड़ कर अश्रु-स्रोत और भी वेग के साथ बह निकला। मनुष्य के हृदय में इतना दुख कैसे समा जाता है यह क्या कोई सोच कर बता सकता है ?

मैं धीरे धीरे विमला के सिर पर हाथ फेरने लगा। इसके बाद उसने टटोलते टटोलते एकदम मेरे पैर पकड़ लिए और उन्हें अपनी छाती पर रखकर ऐसे ज़ोर से दबाया कि मानों उसी आघात से उसकी छाती फट जायगी।

विमला की आत्म-कथा।

आज अमूल्य कलकत्ते से लौटकर आनेवाला है। बैरा से मैंने कह दिया है कि उसके आते ही मुझे ख़बर कर दे। पर मुझसे फिर भी नहीं रहा गया। बाहर बैठक में जा कर उसकी बाट देखने लगी।

अमूल्य को जब मैंने गहना बेचने के लिए कलकत्ते भेजा था उस समय मुझे केवल अपने ही काम का ध्यान था। इस बात का मुझे ज़रा भी ध्यान नहीं रहा कि वह बच्चा है, इतने रुपये का गहना कहीं बेचने जायगा तो सब उस पर सन्देह करेंगे। हम स्त्रियां इतनी असहाय होती हैं कि अपनी विपत्ति दूसरों के ऊपर डालने के सिवाय

हमें कोई उपाय नहीं सूझता। हम मरने के समय औरों को भी अपने साथ ले डूबती हैं।

मुझे बड़ा घमण्ड था कि मैं अमूल्य को बचा लूंगी। जो आदमी डूब रहा हो वह भी किसी को बचा सकता है? हाय मैंने उसे कहीं का न रक्खा। जब मैंने भैयादूइज के दिन उसके माथे पर टीका लगाया था तो यमराज अवश्य मन ही मन हँसे होंगे। उसे आशीर्वाद किसने दिया था? उसी ने जो आप पापों के बोझ के नीचे दबी जारही है!

जान पड़ता है मनुष्य को कभी कभी अमंगल का रोग आ लगता है, अकस्मात् न जाने कहाँ से उसका बीज आपड़ता है और एक ही रात में रोगी चल बसता है। क्या इस प्लेगपीड़ित रोगी को संसार से कहीं बहुत दूर हटा कर नहीं रख सकते? मैं स्पष्ट देख रही हूँ कि यह रोग कैसा भयानक है और कैसा शीघ्र फैलनेवाला है। वह मानों विपत्ति की मशाल के समान है। जो आप जल जल कर सारे संसार को जला डालती है।

नौ बज गये। मुझे रह रह कर ध्यान आता है कि अमूल्य पर कुछ विपत्ति आपड़ी है, उसे पुलिस ने पकड़ लिया है; मेरे गहने के बक्स पर थाने में गड़बड़ मची हुई है; किसका बक्स है—उसे कहाँ से मिला, इस का उत्तर तो अन्त में सारी दुनियाँ के सामने मुझे ही देना पड़ेगा! क्या उत्तर दूँगी? मँझली रानी, मैंने तुम्हारा बड़ा अपमान किया। आज तुम्हारी बारी है। आज तुम समस्त संसार का रूप धरकर बदला लोगी। हे ईश्वर,

इस बार मुझे बचा लो—मैं अपना सारा घमंड छोड़ कर सदा मँझली रानी के चरणों में पड़ी रहूँगी।

मैं और न रह सकी। उसी दम भीतर जाकर मँझली रानी के सामने उपस्थित हो गई। वे उस समय धूप में बैठी पान लगा रही थीं, पास थाली बैठी थी। थाली को देख कर मुझे क्षणभर के लिये कुछ संकोच हुआ पर तुरन्त मन को कड़ा कर के मँझली रानी के पैरों पर गिर पड़ी।

वह कहने लगीं, "अरी छोटी रानी, यह क्या करती है? अकस्मात् यह भक्तिभाव कैसा?"

मैंने कहा, "बहन, आज मेरी जन्म-तिथि है। मैंने बहुत अपराध किये हैं। बहन मुझे आशीर्वाद दो कि तुम्हें फिर कभी कष्ट न पहुंचाऊं! मैं बड़े छोटे मन की हूं!"

यह कहकर उन्हें फिर प्रणाम करके झटपट वहाँ से चली आई। वह पीछे से कहने लगीं, "छोटी रानी सुन तो सही, तू ने पहले से क्यों नहीं बताया कि तेरी आज जन्म-तिथि है? आज दोपहर को मेरे पास तेरा निमंत्रण रहा। देख, भूल न जाना।"

भगवन्, कुछ ऐसा करो कि आज वास्तव में मेरी जन्म-तिथि हो जाय। क्या एकदम मेरी काया-पलट नहीं हो सकती? हे प्रभु, मेरा सब कलङ्क धोकर एक बार फिर मेरी परीक्षा करो!

बाहर बैठक में आते ही देखा कि सन्दीप उपस्थित है। मेरा मन ग्लानि और घृणा से भर गया। आज प्रातःकाल के उजाले में उसका जो मुख मैंने देखा उसमें प्रतिभा

का जादू ज़रा भी नहीं था। मैं एकदम बोल उठी, "आप यहाँ से चले जाइये।"

सन्दीप ने हँस कर कहा, "इस समय तो अमूल्य भी नहीं है। अब तो विशेष बातों की मेरी ही बारी है।"

मेरे कैसे खोटे भाग्य हैं। जो अधिकार मैंने आप दिया उसे आज कैसे रद्द कर सकती हूँ? मैंने कहा, "मैं इस समय अकेली रहना चाहती हूँ।"

"रानी, दूसरे आदमी के रहने से एकान्त में विघ्न नहीं पड़ता। मुझे तुम साधारण भीड़ भाड़ का आदमी न समझो—मैं सन्दीप हूँ, लाख आदमियों के बीच में भी मैं अकेला रह सकता हूँ।"

"आप फिर किसी समय आइयेगा। आज मैं ...।"

"अमूल्य की बाट देख रही हो?"

मैं विरक्त होकर जैसे ही कमरे से बाहर जाने लगी सन्दीप ने अपनी शाल में से गहने का बक्स निकाल कर पत्थर की मेज़ पर रख दिया।

मैं चौंक पड़ी और उससे पूछने लगी, "तो क्या अमूल्य गया नहीं?"

"कहाँ नहीं गया?"

"कलकत्ते।"

"सन्दीप ने ज़रा हँसकर कहा, "नहीं।"

मैं बच गई! मेरा आशीर्वाद पूरा हो गया। मैंने चोरी की है। विधाता मुझ ही को दण्ड दे। अमूल्य को आँच न आने पावे।

सन्दीप ने मेरे मुख का भाव देखकर घृणा के साथ कहा, "ऐसा आनन्द हुआ, रानी? गहने का बक्स ऐसा बहुमूल्य है? फिर तुमने क्यों इस गहने को देवी की पूजा में देना चाहा था? नहीं, तुम तो दे चुकी हो, अब दी हुई चीज़ देवता के हाथ से छीन लेना चाहती हो?"

अहंकार मरते मरते पीछा नहीं छोड़ता। जो मैं आया दिखा दूँ कि मेरी दृष्टि में इस गहने का मूल्य एक कौड़ी के बराबर भी नहीं है। मैंने कहा, "यदि आपको इस गहने का लोभ है तो ले जाइये।"

सन्दीप ने कहा, "आज देश भर में जहाँ जितना धन है मुझे उस सब का लोभ है। लोभ से बड़ी वृत्ति और कौन सी है? संसार में जो इन्द्र है उनका ऐरावत ही लोभ है। अच्छा, तो यह सब गहना मेरा है?"

यह कहकर सन्दीप ने बक्स उठाकर फिर शाल में छिपा लिया। इसी समय अमूल्य भी आगया। उस की आँखें चौंधिया रही थीं, मुँह सूख रहा था। बाल बिखरे हुये थे—एक ही दिन में उसकी तरुण अवस्था का लावण्य झुलस गया था। उसे देखते ही मेरे हृदय पर चोट सी लगी।

अमूल्य ने मेरी ओर न देखकर एक दम सन्दीप से पूछा, "आपने मेरे ट्रंक से गहने का बक्स लिया है?"

"तुम्हारा है गहने का बक्स?"

"नहीं, किन्तु ट्रंक तो मेरा है।"

सन्दीप खिलखिला कर हँस पड़ा और अमूल्य से कहने लगा, "ट्रंक के विषय में मेरे-तुम्हारे का भेद-

विचार करना खूब जानते हो। जान पड़ता है तुम अवश्य धर्म्म-प्रचारक होकर मरोगे।"

अमूल्य कुरसी पर बैठ गया। दुख और चिन्ता के मारे उसका बुरा हाल था। मैंने उसके पास जाकर उसके सिर पर हाथ रखकर पूछा, "अमूल्य, क्या बात है?"

वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ और कहने लगा, "जीजी यह गहने का बक्स मैं अपने हाथ से लेकर तुम्हें देना चाहता था। सन्दीपबाबू को भी यह बात मालूम थी। इसीलिए उन्होंने झटपट ...।"

मैंने कहा, "मैं उस गहने को लेकर क्या करूंगी? उसे जाने दो उससे कुछ हर्ज नहीं है।"

अमूल्य विस्मित होकर बोला, "जाने कहाँ दूँ?"

सन्दीप ने कहा, "यह गहना मेरा है। यह रानी ने मुझे उपहार दिया है।"

अमूल्य उत्तेजित होकर बोला, "नहीं नहीं कभी नहीं। जीजी, यह मैंने तुम्हें लाकर दे दिया है। यह तुम किसी को नहीं दे सकतीं।"

मैंने कहा, "भैया, तुम्हारा दान मुझे सदा स्मरण रहेगा; किन्तु गहने का जिसे लोभ है उसे लेने दो।"

अमूल्य हिंस्र पशु के समान सन्दीप की ओर देखकर कहने लगा, "देखिये सन्दीपबाबू, आप जानते हैं कि मैं फाँसी से भी नहीं डरता। यह गहने का बक्स यदि आपने लिया ...।"

सन्दीप ने विद्रूप भाव से हँसकर कहा, "अमूल्य, तुम्हें भी अब तक मालूम हो गया होगा कि मैं तुम्हारी

धमको से नहीं डरता । मझली रानी, आज मैं यह गहना लेने के लिए नहीं आया—तुम्हें देने के लिए ही आया था, पर मेरी चोज़ यदि तुम अमूल्य के हाथ से लेतीं तो बड़ा अन्याय होता । इसी अन्याय को रोकने के लिए मैंने बक्स पर पहिले अपना दावा स्थिर कर लिया। अब मैं यह अपनी ओर से तुम्हें दान देता हूँ—यह लो । अब तुम इस लड़के के साथ अपना समझौता कर लो। मैं जाता हूँ । कुछ दिन से तुम दोनों में विशेष बातें चल रही हैं, मेरा उनमें कोई भाग नहीं है, यदि ऐसी वैसी कोई बात हो गई तो मुझे दोष न देना । अमूल्य, तुम्हारा ट्रंक, किताबें इत्यादि जो चीज़ें मेरे कमरे में थीं मैंने सब तुम्हारे यहाँ भिजवा दी हैं। अब मेरे कमरे में अपनी कोई चीज़ न रखना।"

यह कह कर सन्दीप झटपट बाहर चला गया।

मैंने कहा, "अमूल्य, जब से मैंने तुम्हें गहना बेचने भेजा था मुझे ज़रा भी शान्ति नहीं मिली।"

"क्यों जीजी ?"

"मुझे डर था कि कहीं तुम यह गहने का बक्स लेकर विपत्ति में न पड़ जाओ—तुम्हें कोई चोर समझ कर तुम पर सन्देह न कर बैठे। मुझे अब वह छः हज़ार नहीं चाहिये। अब तुम्हें मेरी एक बात माननी पड़ेगी—तुम अभी घर जाओ—अपनी माता के पास चले जाओ।"

अमूल्य ने अपनी चादर में से एक पोटली निकाल कर कहा, "जीजी, यह छः हज़ार रुपये हैं।"

मैंने पूछा, "यह तुम कहाँ से ले आये ?"

इसका कुछ उत्तर न देकर उसने कहा, "गिन्नियों के लिए मैंने बहुत चेष्टा की, पर कहीं न मिलीं, इसीलिए नोट लाया हूँ।"

"अमूल्य, तुम्हें प्राणों की सौगन्ध, बताओ यह रुपया कहाँ से लाये?"

"यह मैं आपको नहीं बताऊँगा।"

मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मैंने अमूल्य से कहा, "यह तुमने क्या किया, अमूल्य? यह रुपया कहाँ ... ?"

अमूल्य बोल उठा, "मैं जानता हूँ तुम कहोगी यह रुपया तू अन्याय करके लाया है। अच्छा यही सही, पर जितना बड़ा अन्याय होता है उसका उतना ही मूल्य भी होता है। वह मूल्य मैं देचुका हूँ अब यह रुपया मेरा है?"

इस रुपये के विषय में मुझ कुछ और अधिक सुनने की इच्छा नहीं हुई। नस नस संकुचित होकर मेरे शरीर को जकड़ने लगी। मैंने कहा, "ले जाओ अमूल्य यह रुपया, जहाँ से लाये हो इसी दम वहीं दे आओ।"

"यह तो बड़ा कठिन काम है।"

"नहीं, कठिन नहीं है। तुम कैसे खोटे मुहूर्त में मेरे पास आये थे। सन्दीप भी तुम्हारा इतना अनिष्ट नहीं कर सकता जितना मैंने किया!"

सन्दीप का नाम सुनते ही उसके कोड़ा सा लगा। वह बोला, "सन्दीप—तुम्हारे पास आकर ही तो मैंने उसे पहचाना है। तुम्हें ख़बर है जीजी, तुम्हारे पास से जो उस ने उस दिन छः हज़ार की गिन्नियां ली थीं उसमें से उसने

एक पैसा भी ख़र्च नहीं किया। यहाँ से जाने के बाद कमरे का द्वार बन्द करके सारी गिन्नियों का मेज़ पर ढेर लगा कर उनकी ओर मुग्ध होकर देख रहा था। मुझ से कहा, यह रुपया नहीं है, यह देश्वर्य-पारिजात का फल है, यह अलकापुरी की वंसी का सुर है, यहाँ से नीचे आते आते कड़ा हो गया है, इसके नोट बंधाने से बड़ा अनर्थ होगा, क्योंकि इसे सुन्दरी के कण्ठ का हार बनने की कामना है। अरे अमूल्य, तू इसकी ओर स्थूल दृष्टि से मत देख, यह लक्ष्मी की हँसी है, इन्द्राणी का लावण्य है — नहीं नहीं, उस नीरस नायब के हाथ में पड़ने के लिए उसकी सृष्टि नहीं हुई। देखो अमूल्य, नायब बिलकुल झूठ बोलता है, पुलिस को इस नाव की चोरी का कुछ पता नहीं है—वह इस बहाने से अपना पेट भरना चाहता है। नायब के पास से वे तीनों चिट्ठी वसूल करनी चाहिए। मैंने पूछा, किस तरह? सन्दीप ने कहा, उसे डर दिखाकर। मैंने कहा, अच्छी बात है, पर ये गिन्नियाँ फेर देनी पड़ेंगी। सन्दीप ने कहा, अच्छा यों ही सही। मैंने किस प्रकार नायब को डरा धमका कर वे चिट्ठियाँ वसूल कीं और जला डालीं, यह बहुत बड़ी कहानी है। उसी रात को मैंने सन्दीप के पास आकर कहा, अब कुछ डर नहीं है, गिन्नियाँ मुझे दे दीजिए, कल सबेरे ही मैं छोटी रानी को दे दूँगा। सन्दीप ने कहा, यह कैसा मोह तुमने अपने पीछे लगा लिया है, अब तो जान पड़ता है बहिन का आँचल देश को भी ढक लेगा! बोलो बन्देमातरम—सब मोह जाता रहेगा। तुम तो जानती हो जीजी सन्दीप कैसा मन्त्र जानता है! रुपया

उसी के पास रहा । मैंने रात भर अँधेरे में तालाब के घाट पर बैठकर बन्देमातरम् जपा । कल तुमसे गहना लेने के बाद फिर सन्दीप के पास गया । मैं समझ गया उसे मेरे ऊपर बड़ा क्रोध आरहा था । उसने अपना क्रोध प्रकट न होने दिया, और मुझसे कहा, देखो तुम्हें वहाँ किसी बक्स में वह रुपया मिले तो ले आओ । यह कहकर उसने चाबियों का गुच्छा मेरे ऊपर फेंक दिया । रुपया कहीं न मिला । मैंने पूछा, बताइए आपने कहाँ रख दिया है ? सन्दीप ने कहा, पहले अपना मोह छूट जाने दो तब बताऊँगा, अभी नहीं । जब मैंने देख लिया कि वह किसी तरह नहीं मानता तो मुझे और उपाय करना पड़ा । इसके बाद फिर वह छः हजार के नोट उसे दिखा कर गिन्नियाँ लेने की बहुत चेष्टा की । पर वह गिन्नियाँ लाने के बहाने से मुझे वहाँ बैठा छोड़ दूसरे कमरे में चला गया और वहाँ मेरे ट्रंक का ताला तोड़ कर गहना निकाल कर तुम्हारे पास आ गया—यह बक्स तुम्हारे पास मुझे नहीं लाने दिया और फिर कहता है कि यह गहना मैंने दान दिया है । मैं क्या बताऊँ उसने मुझसे क्या छीन लिया ? मैं उसे कभी क्षमा न कर सकूँगा । जीजी, उसका जादू अब बिल्कुल उतर गया । तुम्हींने उतार दिया । "

मैंने कहा, " प्यारे भाई, मेरा जीवन सार्थक हो गया । पर अमूल्य, अभी बहुत कुछ करना है । केवल माया-जाल कट जाने से कुछ नहीं होता, जो कालिमा लग गई है उसे अभी धोना है । देर मत करो अमूल्य, अभी जाओ, यह रुपया जहाँसे लाये हो वहीं रखआओ । क्यों नहीं करसकोगे?"

"तुम्हारे आशीर्वाद से सब कुछ कर सकूँगा।"

"इससे तुम्हारा ही प्रायश्चित्त नहीं होगा, मेराभी होगा। मैं स्त्री हूँ, बाहर का रास्ता मेरे लिए बन्द है, नहीं तो मैं तुम्हें न भेजती, आप ही जाती। मेरे लिए यही सब से बड़ा दण्ड है कि मेरा पाप तुम्हें संभालना पड़ रहा है!"

"ऐसी बात मत कहो, जीजी! मैंने जो रास्ता लिया था वह तुम्हारा रास्ता नहीं है। वह रास्ता दुर्गम होने के कारण ही मुझे अपनी ओर खींच रहा था। इस बार तुमने मुझे अपने रास्ते पर चलाया — यह रास्ता चाहे हज़ार गुना दुर्गम हो पर तुम्हारे चरणों के प्रताप से मैं इसे जीत लूंगा। मुझे कुछ भी शङ्का नहीं है। अच्छा तो यह रुपया जहाँ से लाया हूँ वहीं दे आऊँ, यही तुम्हारी आज्ञा है?"

"मेरी आज्ञा नहीं है, ईश्वर की आज्ञा है।"

"यह मैं नहीं जानता। ईश्वर की आज्ञा तुम्हारे मुख से निकली है, मेरे लिए यही काफ़ी है। पर बहिन, तुमने मुझे निमंत्रण दिया था। वह पूरा हो जायगा जब आऊँगा। तुम्हें प्रसाद देना पड़ेगा। इसके बाद यदि हो सका तो सन्ध्या से पहले ही यह काम कर आऊँगा।"

हँसना चाहती थी पर आँखों से आँसू निकल पड़े। मैंने कह दिया, "अच्छा।"

अमूल्य के जाते ही मेरी छाती फटने लगी। कैसे माँ के लाड़ले को मैंने मँझधार में डुबो दिया। भगवन् मेरे पापों का प्रायश्चित्त ऐसा विकट रूप क्यों धारण कर रहा है? मैं अकेली क्या कम हूँ? और कितनों को यह भार उठाना पड़ेगा? हाय इस बेचारे बालक को क्यों मारते हो?"

मैंने उसे फिर बुलाया, " अमूल्य ! " मेरी आवाज़ ऐसी धीमी पड़ गई थी कि उसने सुना ही नहीं, द्वार के पास जाकर फिर बुलाया, " अमूल्य ! " पर वह दूर निकल गया था।

" बैरा बैरा। "

" क्यों रानीमाँ ? "

" ज़रा जल्दी से अमूल्यबाबू को बुला ला। "

जान पड़ता है बैरा अमूल्य का नाम नहीं जानता, इसलिए थोड़ी देर बाद सन्दीप को बुला लाया। आते ही सन्दीप ने कहा, " जब मुझे बिदा किया था मैं तभी जानता था फिर बुलाओगी। ज्वार और भाटा दोनों एक ही चन्द्रमा से होते हैं। मुझे तुम्हारे फिर बुलाने का ऐसा विश्वास था कि मैं द्वार के पास बैठा बाट देख रहा था। जैसे ही बैरा को देखा उसके कुछ कहने से पहले ही मैं बोल उठा, अच्छा, अच्छा, आता हूँ, अभी आता हूँ! वह विस्मित होकर मेरा मुँह तकने लगा। सोचता होगा बड़ा मन्त्र-सिद्ध आदमी है। मक्खी रानी, संसार में सब से बड़ी लड़ाई इसी मन्त्र की लड़ाई है। सम्मोहन की सम्मोहन के साथ टक्कर होती है। इसका बाण शब्द-भेदी भी होता है और निःशब्द-भेदी भी। इस लड़ाई में इतने दिन बाद आकर मेरी जोड़ मिली है। तुम्हारे तूण में अनेक बाण हैं। सारी पृथ्वी पर केवल तुम ही सन्दीप को अपनी इच्छा के अनुसार चला सकीं और अपनी इच्छा के बल से ही खींच कर यहाँ ले आईं। शिकार तो आ ही फँसा। अब बताओ इसका क्या करोगी? एक दम गर्दन

मारोगी या अपने पिंजड़े में बन्द करके रखोगी ? किन्तु रखने का निश्चय ज़रा सोच कर करना, क्योंकि इस जीव को बंध करना जैसा कठिन है, वैसा ही बन्द करना भी। अतएव जो दिव्य अस्त्र तुम्हारे हाथ में है उसकी परीक्षा करने में देर मत करो।"

सन्दीप के मन में पराजय का खटका पैदा हो गया था, इसी लिए वह एक साँस में इतनी सारी अंटसंट बातें बक गया। मैं समझती हूँ वह जानता था कि मैंने अमूल्य को बुलाया है—बैरा ने उसी का नाम पुकारा होगा, पर सन्दीप उसे मूर्ख बनाकर आप आ उपस्थित हुआ। मुझे यह बताने का भी समय नहीं दिया कि मैंने आपको नहीं, अमूल्य को बुलाया था। पर अब डींग मारने से क्या होता है, दुर्बलता तो खुल ही गई। अब मैं अपनी जीती हुई ज़मीन में से इञ्च भर जगह भी न छोड़ूँगी।

मैंने कहा, "सन्दीप बाबू आप एक दम में सोच-विचार इतनी सारी बातें कैसे कह जाते हैं ? जान पड़ता है पहले से तैयारी कर के आते हैं।"

सन्दीप का मुँह लाल हो गया। मैं बोली, "मैंने सुना है कथा बाँचनेवालों की पोथियों में नाना प्रकार के बड़े बड़े वृत्तान्त लिखे रहते हैं, जब जिस जगह जौनसा आवश्यक समझा, पढ़ दिया। क्या आपके पास ऐसी ही कोई पोथी है ?"

सन्दीप ने अपने होंठ चबाते हुए उत्तर दिया, "विधाता की कृपा से तुम्हारे तो हाव-भाव और छल-कपट का अन्त नहीं है। उस पर भी दरज़ी और सुनार की दूकानों से

सहायता ली जाती है। क्या विधाता ने हम पुरुषों को ही ऐसा निशक्त बनाया है कि ...।"

मैंने कहा, "सन्दीप बाबू, पोथी देख आइये--यह बात कुछ बेजोड़ सी हो गई। मैं देखती हूँ कभी कभी आप कुछ का कुछ कह बैठते हैं--पोथी मुखस्थ करने में यही बड़ा दोष है।"

सन्दीप से और न सहा गया। एक दम गरज कर बोला, "तुम! तुम मेरा अपमान करोगी! तुम्हारी कौन सी चीज़ ऐसी है जो आज मेरे वश में नहीं है? तुम्हारा तो ...।"

उसके मुँह से और कुछ बात न निकल सकी। सन्दीप का सारा आधार मन्त्र पर है। जब मन्त्र नहीं चलता तो उसे और कोई उपाय नहीं सूझता,--राजा से एक दम रङ्क बन जाता है। दुर्बल! दुर्बल! वह जितना ही क्रुद्ध हो कर कड़ी कड़ी बातें कहता है उतना ही मेरा मन आनन्द से भरा जाता है। मुझे बाँधने के लिए जो फन्दा उसके पास था जल चुका--अब मैं स्वतन्त्र हूँ। अब जितना मन चाहे मेरा अपमान करो, यही तुम्हारे लिए सत्य है, मेरी स्तुति मत करो, वही तुम्हारे लिए मिथ्या होगी।

इसी समय मेरे स्वामी अकस्मात् कमरे में चले आये। और दिन सन्दीप जिस प्रकार अपने आपको एक दम सम्हाल लेता था आज न सम्हाल सका।

हम दोनों को स्तब्ध बैठे देख मेरे स्वामी कुछ हिच-किचा कर एक कुरसी पर बैठ गये। वह सन्दीप से बोले, "सन्दीप मैं तुम्हीं को ढूँढ रहा था, मुझे ख़बर मिली कि तुम यहाँ हो।"

सन्दीप ने कहा, "हाँ मक्खीरानी ने मुझे सबेरे ही बुला भेजा था। मैं तो छत्ते की दास मक्खी हूँ, आज्ञा मिलते ही सब काम छोड़कर आना पड़ा।"

स्वामी ने कहा, "मैं कलकत्ते जाऊँगा। तुम्हें भी साथ चलना पड़ेगा।"

सन्दीप ने कहा, "मुझे क्यों चलना पड़ेगा? मैं क्या तुम्हारा नौकर हूँ?"

"अच्छा, तुम ही कलकत्ते चलो, नौकर मैं ही रहा।"

"मुझे कलकत्ते में कुछ काम नहीं है।"

"इसीलिए तो तुम्हें कलकत्ते जाना चाहिये। यहाँ तुम्हारे लिए बहुत ही ज़्यादा काम है।"

"मैं तो जाऊँगा नहीं।"

"तो फिर तुम्हें ले जाना पड़ेगा।"

"ज़बरदस्ती?"

"हाँ ज़बरदस्ती।"

"बहुत अच्छा,—जाऊँगा। पर जगत में कलकत्ता और तुम्हारा इलाक़ा केवल यही दो स्थान तो नहीं हैं। पृथ्वी पर तो और भी बहुत सी जगह हैं।"

"पर तुम्हारा ढंग देखकर तो जान पड़ता है कि मेरे इलाक़े को छोड़ कर दुनियाँ में और कोई जगह नहीं है।"

यह सुनते ही सन्दीप उठ खड़ा हुआ और कहने लगा, "मनुष्य की ऐसी भी एक अवस्था होती है जिसमें समस्त जगत् इतनी सी जगह में आकर इकट्ठा हो जाता है। तुम्हारी इसी बैठक में मैंने सारे विश्व को प्रत्यक्षरूप से देखा है—इसी लिए यहाँ से हटना नहीं चाहता। मक्खीरानी, मेरी यह

बात यह लोग न समझ सकेंगे—सम्भव है तुम भी न समझ सको। मैं तुम्हारी बन्दना करता हूँ। तुम्हारी बन्दना ही हृदय में लेकर यहाँ से जा रहा हूँ। जबसे मैंने तुम्हें देखा है मेरा मन्त्र बिलकुल बदल गया। अब बन्देमातरम् नहीं रहा—अब बन्देप्रियाम्, बन्दे मोहिनीम है। माता हमारी रक्षा करती है—प्रिया हमारा विनाश करती है—यही विनाश कैसा मधुर है! उसी मृत्यु-नृत्य के घुंघरुओं की झंकार से तुमने मेरा हृदय भर दिया है। इस कोमला, सुजला, सुफला, मलयजशीतला भारतभूमि का रूप तुमने अपने भक्त की दृष्टि में एकदम बदल दिया। तुम दया-माया से रहित हो—तुम विषपात्र लेकर मेरे सामने आई हो—मैं या तो उसी विष को पीकर मरूंगा या मृत्युञ्जय हो जाऊँगा! माता का आज दिन नहीं है—प्रिया, प्रिया, प्रिया, देवता, स्वर्ग, धर्म, सत्य तुमने सब चीज़ें तुच्छ कर दीं, पृथ्वी के समस्त सम्बन्ध आज छाया-मात्र हो गये, नियमसंयम का समस्त बन्धन आज छिन्न हो गया! प्रिया, प्रिया, प्रिया, जिस देश में तुम अपने दोनों पाँव जमाये खड़ी हो मैं उसे छोड़कर सारी पृथ्वी में आग लगा कर उसकी छाई के ऊपर ताण्डव-नृत्य नाच सकता हूँ! यह सब भलेमानस हैं, यह अत्यन्त सुशील हैं—यह सब का भला करना चाहते हैं—मानों सभी में सत्य है। कभी नहीं, ऐसा सत्य जगत् में और कहीं नहीं है, यही मेरा एकमात्र सत्य है। मैं तुम्हारी बन्दना करता हूँ—तुम्हारे प्रति जो निष्ठा मेरे मन में है, उसी ने मुझे निष्ठुर बना दिया है, तुम्हारे प्रति जो भक्ति मैं रखता हूँ उसी ने मेरे हृदय में प्रलय की आग भड़का

दी है,—मैं सुशील नहीं हूँ, मैं धार्मिक नहीं हूँ, मैं संसार में किसी चीज़ को नहीं मानता, मैंने जिसे पूर्णरूप से प्रत्यक्ष कर के देखा है, मैं केवल उसी को मानता हूँ।"

आश्चर्य ! आश्चर्य ! इससे कुछ ही देर पहिले मैंने सन्दीप को और घृणा से देखा था। मैं जिसे छाई समझी थी उसमें फिर आग भड़क उठी। वह बिलकुल शुद्ध और खरी आग है। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है। विधाता ने इस विचित्र ढँग से क्यों मनुष्य की सृष्टि की है? क्या केवल अपने अलौकिक इन्द्रजाल का परिचय देने के लिए? आध घण्टा पहले ही मैंने मन ही मन सोचा था कि जिस मनुष्य को मैं एक दिन राजा समझी थी, वह तो केवल स्वांग का राजा निकला—परन्तु नहीं, ऐसा नहीं है—स्वांग के कपड़ों में भी कभी कभी वास्तविक राजा छिप बैठता है। उसके मन में बहुत सा लोभ, बहुत सी स्थूलता, बहुत सी धोकेबाज़ी अवश्य भरी है, पर तो भी अन्त की किसी को ख़बर नहीं है। यही स्वीकार करना पड़ेगा कि हम अपने को भी नहीं जानते। मनुष्य बड़ा विचित्र है—उसमें कैसा प्रचंड रहस्य भरा है, यह वही रुद्र देवता जानते हैं—हाय, मेरा हृदय फटा जाता है। प्रलय! प्रलय के ही देवता शिव हैं, वही आनन्दमय हैं, वही संकट मोचन करेंगे।

कुछ दिन से मैं बार बार सोचती हूँ कि मेरे दो बुद्धि हैं। मेरी एक बुद्धि समझ लेती है कि सन्दीप का यह प्रलय रूप बड़ा भयंकर है पर दूसरी बुद्धि कहती है—नहीं यह बड़ा मधुर है। जहाज़ जब डूबता है तो अपने चारों ओर तैरनेवालों को भी अपने साथ खींच लेता है—सन्दीप मानों उसी भयंकर मृत्यु

का रूप है—मनमें भय या शंका पैदा होनेसे पहलेही उसका प्र-चण्ड आकर्षण, समस्त प्रकाश, समस्त कल्याण,समस्त मुक्ति, समस्त भावना और जीवन में जो कुछ सञ्चित किया है, उन सब से दूर खींचकर क्षणभर में एक निविड़ सर्वनाश में लुप्त कर देना चाहता है। वह मानों किसी महामारी का दूत बनकर आया है। अशिव मन्त्र पढ़ता हुआ अपने रास्ते पर जारहा है और देश के सब बालक और नवयुवक उसको ओर खिंचे चले जा रहे हैं। भारतवर्ष के हृदयपद्म पर जिस माता का स्थान है उसकी आँखों से आँसू बह रहे हैं—यह लोग उसके अमृतभाण्डार का द्वार तोड़कर अपनी शराब का घड़ा लिए जा पहुँचे हैं और चौकड़ी जमाये बैठे हैं—ये सारा अमृत धूल में डालकर अमृत-पात्र को चूर चूर कर देना चाहते हैं। यह सब मैं जानती हूँ पर मोह से बस नहीं चलता ! सत्य की कठोर तपस्या की परीक्षा करने के लिए ही सत्यदेव ने यह उपाय सोचा है—उन्मत्तता स्वर्ग के साज में सज कर तपस्वियों के सामने आकर नाच नाच कर उनसे कहती है, तुम मूढ़ हो, सिद्धि तपस्या में नहीं है, तपस्या का पथ अदृश्य और समय असीम होता है—इसीलिए वज्रधारी ने मुझे भेजा है, मैं तुमसे विवाह करूँगी, मैं सुन्दरी हूँ, मैं मत्तता हूँ, क्षणभर में समस्त सिद्धि चाहो तो मेरे आलिंगन में ही मिल सकती है।

इतनी देर चुप रहकर सन्दीप ने फिर मुझ से कहा, "देवी, अब तुमसे अलग होने का समय आगया। अच्छा ही हुआ। तुम्हारे पास रह कर मुझे जो काम करना था वह समाप्त हो चुका। अब भी यदि ठहरा रहूँ तो किया

कराया सब नष्ट हो जायगा। पृथ्वी पर जो सब से उत्तम है उसे लोभ में पड़ कर सस्ता और साधारण बना डालने से सर्वनाश का सामना होता है—जिस अनन्त की असीमता का अनुभव क्षण भर में हो सकता है उस अनन्त को समय और काल में व्याप्त करना उसकी सीमा निर्दिष्ट करना है। मैंने उसी अनन्त को नष्ट करने की चेष्टा की थी, पर तुरन्त ही तुम्हारा वज्र उद्यत हो गया, तुमने अपनी पूजा की रक्षा की और अपने पुजारी को भी बचा लिया। आज तुम से विदा होते हुए मेरी भक्ति और वन्दना और भी प्रबल हो उठी है। देवी, मैंने भी आज तुम्हें स्वतन्त्र कर दिया। मेरा मिट्टी का कच्चा मन्दिर तुम्हारे योग्य नहीं था—यह मन्दिर एक न एक दिन अवश्य गिर जाता—आज तुम्हारी बड़ी मूर्त्ति को बड़े मन्दिर में पूजने को जा रहा हूँ। तुमसे दूर ही रह कर तुम्हें वास्तविक रूप में देखूँगा, यहाँ रह कर तुम्हारे हाथों मुझे आदर प्रेम मिला है, वहां जाकर तुमसे वरदान लूंगा!"

मेज़ पर मेरा गहने का बक्स रक्खा था। मैंने उसे उठाकर सन्दीप को देते हुये कहा, "मैंने यह गहना तुम्हारे द्वारा जिसे अर्पण किया था, इसे उसी के चरणों में पहुंचा देना।"

मेरे स्वामी कुछ न बोले। सन्दीप बाहर चला गया।

अमूल्य के लिए अपने हाथ से जलपान तैयार करने बैठी थी। उसी समय मँझली रानी आकर बोलीं, "क्योंरी छोटी रानी, अपनी जन्मतिथि पर अपने आप ही खाने की तैयारी हो रही है?"

मैं बोली, "क्या अपने सिवा और किसी को खिलाना नहीं है ?"

मँझली रानी ने कहा, "आज तो तेरे खिलाने का नहीं मेरे खिलाने का दिन है। मैं उसी की तैयारी कर रही थी। इतने ही में ऐसी ख़बर सुनी कि धक से रह गई—हमारे ख़ज़ाने से पाँच छे सौ घटेरे छः हज़ार रुपया लूट कर ले गये। लोग कहते हैं कि अब की बार वे हमारा घर लूटने आवेंगे !"

यह ख़बर सुन कर मेरा मन ज़रा हलका हुआ। फिर तो यह हमारा ही रुपया था। मैं अभी अमूल्य को बुला कर वह छः हज़ार अपने सामने ही अपने स्वामी को दिलवा दूँगी, इसके बाद मुझे जो कहना होगा उनसे कह लूँगी।

मँझली रानी ने मेरे चेहरे का भाव देखकर कहा, "तू ने तो हद कर दी ! तेरे मन में तो रत्ती भर डर नहीं मालूम पड़ता।"

मैंने कहा, "मुझे तो विश्वास नहीं होता कि वे लोग हमारा घर लूटने आवेंगे।"

"विश्वास नहीं होता। यही विश्वास किसे होता था कि वे ख़ज़ाना लूट ले जायेंगे।"

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया और सिर नीचा कर फिर जल-पान बनाने में लग गई। वह कुछ देर मेरे मुख की ओर देख कर बोलीं, "मैं जाकर अभी निखिलेश को बुलाती हूँ। वह छः हज़ार रुपया अभी कलकत्ते भेज देना चाहिये। और देर करना ठीक नहीं।"

यह कहकर वह तो चली गईं, इधर मैं सब चीज़ें

केंक-कांक झटपट उस लोहे के सन्दूकवाली कोठरी में जा पहुँची और भीतर से दरवाज़ा बन्द करके बैठ गई। मेरे स्वामी ऐसे बेपरवाह हैं कि उनकी चाबी अब भी वहीं कोठरी में एक कुरते की जेब में पड़ी थी। गुच्छे में से मैंने सन्दूक की चाबी निकाल ली और अपनी जाकट की जेब में छिपाकर रख ली।

इसी समय बाहर से किसी ने धक्का दिया। मैंने कहा, "मैं कपड़े बदल रही हूँ।"

यह सुनकर मँझली रानी कहने लगीं, "अभी तो मुझे बना रही थी, अभी यहाँ आकर सिंगार करने लगी! जान पड़ता है आज फिर वन्देमातरम् की सभा जुटेगी। अरी देवी चौधरानी, क्या लूट का माल संगवाया जा रहा है?"

न जाने क्या सोचकर मैं उस लोहे के सन्दूक को फिर खोल बैठी। मैंने यही सोचा होगा, यदि यह सब कुछ स्वप्न हो तो कैसा अच्छा हो—सम्भव है वह अशरफियों को गुच्छी अब भी उसी तरह रक्खी हों! किन्तु हाय, विश्वास-घातक के नष्ट हुये विश्वास के समान सब शून्य पड़ा था!

मुँठ-मूँठ कपड़े बदलने ही पड़े। कुछ ज़रूरत नहीं थी, किन्तु फिर भी बाल सँवारने पड़े। मँझली रानी ने मुझे देखते ही कहा, "यह आज कैसा सिंगार हुआ है?"

मैंने कहा, "जन्म-तिथि का।"

मँझली रानी ने हँसकर कहा, "ज़रा सा बहाना मिलते ही ऐसा सिंगार! मैंने बहुत देखी हैं, पर तुम सी वहमी नहीं देखी।"

अमूल्य को बुलवाने के लिए मैं बैरा को ढूंढ़ रही थी कि इतने ही में उसने पेन्सिल से लिखी हुई एक चिट्ठी लाकर मेरे हाथ में दी। उसमें अमूल्य ने लिखा था, "जीजी, तुमने खाने के लिए बुलाया था किन्तु मुझसे और नहीं ठहरा जाता। मैं पहिले तुम्हारी आज्ञा पूरी कर आऊँ, फिर आकर तुम्हारा प्रसाद लूंगा। हो सका तो सन्ध्या हो तक लौटकर आजाऊँगा।"

अमूल्य कहाँ और किसके हाथ में जाकर रुपया देगा? अब के फिर न जाने किस विपत्ति का सामना हो। मैंने उसे तीर के समान छोड़ तो दिया, पर निशाना ठीक नहीं लगा और अब उसे किसी तरह उलटा नहीं फेर सकती।

मुझे अब भी स्वीकार कर लेना चाहिये था कि इस गड़बड़ की जड़मूल मैं ही हूँ, किन्तु स्त्रियों का आधार संसार के विश्वास के ऊपर होता है। वही उनका जगत् है। उस विश्वास के साथ हमने चाल चली है, यह जानते हुए हम स्त्रियों को संसार में रहना बहुत कठिन है। जो चीज़ अपने आप तोड़ी है, उस पर खड़ा होना बड़ा कठिन है। अपराध करना कठिन नहीं है, पर उस अपराध का संशोधन करना स्त्रियों के लिए जितना कठिन है उतना और किसी के लिए नहीं।

कुछ दिन से स्वामी के साथ साधारण वार्तालाप की प्रणाली बन्द हो गई है। इसीलिए मैं बहुत सोचने पर भी निश्चय न कर सकी कि इतनी बड़ी बात अकस्मात् उन से कब और किस प्रकार कहना उचित होगा। आज वह भोजन करने बहुत देर में आये हैं—प्रायः दो बजे

होंगे। वह न जाने किस ध्यान में निमग्न थे, उनसे कुछ भी न खाया गया। मैं उनसे अनुरोध कर के खाने के लिए कहती, यह अधिकार मैं आप खो बैठी थी। मुँह फेर कर मैंने आंचल से अपने आँसू पोंछ लिए।

एक बार मैंने सोचा कि संकोच छोड़ कर उनसे कहूँ कि ज़रा कमरे में जाकर लेट रहो। आज तुम बड़े थके हुये दिखाई पड़ते हो। पर जैसे ही कहने को हुई बैरा ने आकर ख़बर दी कि दारोग़ा साहब क़ासिम सरदार को लेकर आये हैं। मेरे स्वामी जल्दी से उठकर बाहर चले गये।

उनके बाहर जाने के थोड़ी देर बाद मँझली रानी आकर मुझ से बोलीं, जब निखिलेश भोजन करने आया तो तू ने मुझे क्यों न बुला भेजा? आज उसे देर होती देख मैं नहाने चली गई—इतने ही में न जाने कब ...।"

"क्यों बात क्या है?"

"सुना है तुम दोनों कल कलकत्ते जारहे हो। मुझ से भी यहाँ न ठहरा जायगा। बड़ी रानी तो अपनी ठाकुर-पूजा छोड़कर कहीं जानेवाली नहीं, पर मुझसे इन चोरी-डकैती के दिनों में तुम्हारे इस ख़ाली घर की रखवाली न होगी, मेरे तो प्राण ही निकल जाएँगे। कल ही जाना तो ठीक हुआ है न?"

मैंने कहा, "हाँ, कल ही।" मैंने मन ही मन सोचा—जाने से पहिले ही पहिले न जाने कितना इतिहास तैयार हो जायगा, कुछ ठिकाना ही नहीं है। पीछे फिर चाहे कल-कत्ते जाऊँ चाहे यहाँ रहूँ सब बराबर है। उसके बाद कौन जानता है कि संसार और जीवन का क्या रूप होगा। सब

धुंधले स्वप्न के समान दीख पड़ता है।

अब कुछ ही घण्टों में मेरे विषय में जो अदृष्ट था वह दृढ़ बन जायगा—क्या इस समय को कोई खींच खींच कर बढ़ा नहीं सकता? अच्छा, न सही, तो फिर कल ही तक मुझे धीरे धीरे सब ठीकठाक कर लेना चाहिये—कम से कम इस आघात के लिए अपने को और संसार को तैयार तो कर लें। प्रलय का बीज जब तक धरती के नीचे रहता है तब तक इतना समय देता है कि हम समझ बैठते हैं मानों भय का कोई कारण ही नहीं है, पर धरती से ऊपर ज़रा सा अंकुर निकलते ही वह देखते देखते ऐसे वेग से बढ़ने लगता है कि फिर उसे रोकने या दबा देने का समय ही नहीं मिलता।

कभी कभी जी में आता है कि कुछ भी सोच-बिचार न करूँ, बेसुध होकर चुपचाप पड़ी रहूँ, जो कुछ होना है हो रहेगा। परसों से पहिले पहिले कहन-सुनन, हँसी-रोना, प्रश्नोत्तर सब ही कुछ हो चुकेगा!

पर अमूल्य का आत्मोत्सर्ग के प्रकाश से चमकता हुआ वह तरुण मुख मैं कभी न भूलूँगी। उसने तो चुपचाप बैठकर भाग्य की बाट नहीं देखी, वह तो झपट कर विपत्ति में जा कूदा। मैं अधम स्त्री हूँ, मैं उसे प्रणाम करती हूँ। वह मेरा बालक देवता है, वह मेरे कलंक का बोझ सम्हालने आया है; वह मेरे सिर पर पड़ा हुआ वार अपने सिर पर लेकर मुझे बचायेगा, भगवान की ऐसी भयानक दया मैं कैसे सहूँगी? मेरे बच्चे, तुम्हें प्रणाम, मेरे भाई, तुम्हें प्रणाम,—तुम निर्मल हो, तुम सुन्दर हो, तुम वीर हो, तुम

निर्भीक हो, मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ—दूसरे जन्म में तुम मेरी गोद में जन्म लो इसी वरदान की मुझे कामना है।

इधर चारों ओर तरह तरह की अफ़वाहें उड़ रही हैं, पुलिस की आवाजाही लगी है, घर के नौकर-चाकर सब घबड़ाये हुये हैं। खेमा दासी ने मुझ से आकर कहा, "रानी माँ, मेरी यह सोने की पौंची और बाजूबन्द उठा कर अपने लोहे के सन्दूक में रखदो।" मैं किस से जाकर कहूँ कि घर की रानी ने ही इस दुर्भावना का जाल बुना है और फिर आप भी उस में फँस गई है! खेमा का गहना और थाको के जोड़े हुये रुपये मुझे भलेमानसों की तरह लेने ही पड़े। हमारी ग्वालिन अपनी बनारसी साड़ी और अन्य बहुमूल्य सम्पत्ति एक टीन के बक्स में रखकर मुझे दे गई—बोली, "रानी माँ, यह बनारसी साड़ी मुझे तुम्हारे ही ब्याह में मिली थी।"

कल जब मेरे ही कमरे में लोहे का सन्दूक खोला जायगा तो मैं ही खेमा, थाको, ग्वालिन—पर रहने दो इस बात की कल्पना ही क्यों करूँ। बल्कि मुझे तो सोचना चाहिये कि जब कल के बाद एक वर्ष बीत चुकेगा और फिर माघ महीने का तीसरा दिन आवेगा तो क्या उस समय भी मेरे सांसारिक सम्बन्ध में जो घाव लगे हैं वे ऐसे ही हरे बने रहेंगे?

अमूल्य ने लिखा है कि मैं आज सन्ध्या तक आ जाऊँगा। इतनी देर से मैं कमरे में अकेली चुपचाप कैसे बैठी रहती। मैं फिर मुझे तैयार करने गई। जितने तैयार हो चुके हैं वह काफ़ी हैं, किन्तु फिर भी और बना रही

हूँ। यह सब खायगा कौन? घर के सब नौकर चाकरों को खिलाऊँगी। आज ही रात को खिलाऊँगी। आज रात हो तक मेरे दिन की सीमा है, कल का दिन मेरे हाथ में नहीं है।

बराबर मुझे बना रही हूँ, ज़रा विश्राम नहीं है। कभी कभी ऊपर हमारे कमरों की ओर कुछ गड़बड़ होती हुई सुनाई पड़ती है। शायद मेरे स्वामी लोहे का सन्दूक खोलने आये हैं, और उन्हें चाबी नहीं मिलती। इसी बात पर मँझली रानी ने नौकर-चाकरों को बुलाकर गुल मचा रखा है। नहीं, मैं नहीं सुनूँगी, कुछ नहीं सुनूँगी, दरवाज़ा बन्द किये बैठी रहूँगी। जैसे ही दरवाज़ा बन्द करने चली देखा थाको दौड़ी हुई आरही है। उसने हाँफते हुये मुझे पुकारा, "छोटी रानीमाँ।" मैं बोल उठी, "जा जा, मुझे तंग न कर, मुझे इस समय बहुत काम करना है।" थाको बोली, "मँझली रानी के भतीजे कलकत्ते से एक कल लाये हैं जो आदमियों की तरह गाना गाती है, इसीलिए मँझली रानी ने तुम्हें बुलाया है।"

हँसू या रोऊं यही सोचती हूं! ऐसी अवस्था में भी ग्रामोफ़ोन! उसमें जितनी बार चाबी दी जाती है वही थियेटरों का सा एक सुर का गाना बजने लगता है—वह भेद-भाव से बिलकुल रहित है। यन्त्र जब जीवन की नकल करता है तो सदा यही हास्यकर परिणाम होता है।

सन्ध्या होगई। मैं जानती हूँ कि अमूल्य आते ही मेरे पास ख़बर भेजेगा। पर तो भी मुझसे रहा नहीं गया। मैंने बैरा को बुला कर कहा, "जा, अमूल्यबाबू को ख़बर

कर दें। बैरा ने थोड़ी देर बाद आकर कहा, "अमूल्यबाबू नहीं हैं।"

बात कुछ भी नहीं थी, पर तो भी मेरे हृदय पर एक दम चोट सी लगी। "अमूल्यबाबू नहीं हैं।" इस बात में उस सन्ध्या के समय किसी के रोने का सा सुर सुनाई पड़ा। अमूल्य नहीं है! वह सूर्य्यास्त की सुवर्णमयी रेखा के समान दिखाई पड़ा — और फिर,—और फिर "वह नहीं है!" सम्भव असम्भव अनेक दुर्घटनाएँ मेरे मन में आने लगीं। मैंने ही उसे मृत्यु के मुँह में भेजा है, उसने जो कुछ भय नहीं किया यह उसकी वीरता थी; किन्तु इसके बाद मैं कैसे जीती रहूँगी?

अमूल्य की कोई भी निशानी मेरे पास नहीं थी—केवल वही एक पिस्तौल थी, वही भय्या-दूइज का उपहार! मैंने सोचा यह अवश्य दैव की कृपा है। मेरे जीवन में जो कलङ्क लग गया है, उसी के धो डालने का यह उपाय मेरे बालक-वेषी नारायण मेरे हाथ में देकर अदृश्य हो गये हैं। कैसा प्रेम-भरा दान है? कैसा पावन मन्त्र इसके भीतर छिपा है?

बक्स में से पिस्तौल निकालकर मैंने दोनों हाथों से अपने माथे पर रक्खी। ठीक उसी समय हमारे पूजा-घर से आरती के घण्टे की आवाज़ सुनाई पड़ी। मैंने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया।

रात के समय सब को गुंभे खिलाये गये। मँझली रानी ने आकर कहा, "जो हो, तूने आप ही आप अपनी जन्म-तिथि खूब मना ली। जान पड़ता है हमें किसी चीज़ को हाथ भी न लगाने देगी।" यह कह कर अपना वही आमो-

फ़ोन ले बैठीं और जितनेड रैका थे एक एक कर के सब बजा डाले। ऐसा मालूम होता था, मानों गन्धर्वलोक के सुर वाले घोड़ों के अस्तबल में से हिनहिनाहट की आवाज़ आरही है।

खिलाते पिलाते बहुत रात चली गई। मेरी इच्छा थी कि आज रात को अपने स्वामी के चरणों की धूल लूंगी। उनके कमरे में जाकर देखा तो वह बेसुध सो रहे थे। आज उनका सारा दिन बड़ी हैरानी और चिन्ता में कटा है। मैं ने सावधानी के साथ एक ओर से मसहरी ज़रा सी उठाई और धीरे से अपना सिर उनके चरणों के निकट रख दिया। मेरे बालों का स्पर्श होते ही उन्होंने सोते ही सोते अपने पैर से मेरा सिर ज़रा परे को ढकेल दिया।

मैं बरामदे में जाकर बैठ गई। कुछ दूर पर एक सेहमल का पेड़ अंधेरे में कङ्काल की तरह खड़ा था—उस के सब पत्ते झड़ गये थे — उसी के पीछे सतमी का चन्द्रमा धीरे धीरे अस्त हो गया था।

मुझे अकस्मात् मालूम पड़ा मानों आकाश के सब तारे मुझे देखकर भयभीत हो रहे हैं — रात्रि के समय यह सारा प्रकाण्ड जगत मेरी ओर मानों तिरछी दृष्टि से देख रहा है। मैं बिलकुल अकेली हूँ। अकेले मनुष्य के समान अद्भुत वस्तु और कोई नहीं है। जिसके सब आत्मीय एक एक करके मर, गये हों, वह भी अकेला नहीं होता, मृत्यु की आड़ में से भी उसे संग मिल जाता है। पर जिसके सब आत्मीय निकट होने पर भी दूर चले गये हों, ऐसा मनुष्य परिपूर्ण संसार के साथ से अलग जा पड़ता है और उनकी ओर देख कर

तारों के शरीर में भी काँटे चुभने लगते हैं। मैं जहाँ बैठी हूँ। वास्तवमें वहाँ नहीं हूँ। जो लोग मुझे घेरे हैं मैं उन्हीं से दूर हूँ। मैं एक विश्वव्यापी विच्छेद के ऊपर चल फिर रही हूँ और जीवित हूँ—मानों पद्म के ऊपर की शिशिर-विन्दु हूँ।

पर मनुष्य जब बदलता है तो एकदम कायापलट क्यों नहीं हो जाता? हृदय की ओर देखकर मालूम होता है कि उसमें जो कुछ था सब मौजूद है। केवल उलटपलट हो गया है। जो सजा रक्खा हुआ था वह आज तितर बितर पड़ा है—जो कण्ठ के हार में गुँथा हुआ था वह आज धूल में पड़ा हुआ है। इसीलिए तो छाती फटी जाती है। इच्छा होती है कि मर जाऊँ पर हृदय में तो सब उसी तरह मौजूद है और मृत्यु-धारा का दूसरा किनारा बिलकुल अदृश्य है। मुझे जान पड़ता है कि मृत्यु में और भी भयानक दुख भरा है। मुझे जो कुछ चुकाना है वह जीवित रहकर ही चुका सकती हूँ—और कोई उपाय नहीं है।

हे प्रभु! मुझे इस बार क्षमा करो! तुमने जो कुछ मेरे जीवन का धन बनाकर मेरे हाथ में दिया था मैं ने उसे अपने जीवन का बोझ बना लिया। आज मैं इस बोझ को न उठा सकती हूँ न त्याग कर सकती हूँ। मेरे प्रभात समय के रंगीन आकाश में खड़े हो कर जो बंसी तुमने बजाई थी, आज फिर एक बार वही बंसी बजा दो, सब समस्या सहज हो जायगी—तुम्हारी उस बंसी के सुर के सिवा टूटे को कोई नहीं जोड़ सकता, न अपवित्र को पवित्र कर सकता है। उसी बंसी के सुर से तुम मेरे जीवन

की नये रूप से सृष्टि करो। इसके सिवा मुझे कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता।

मैं धरती के ऊपर मुँह के बल गिरकर रोने लगी—मुझे कहीं से थोड़ी सी दया चाहिए, एक सहारा चाहिए, कोई यह आशा दिलानेवाला चाहिए कि अब भी सब ठीक हो सकता है। मैंने मन ही मन कहा, हे प्रभु, जबतक तुम्हारा आशीर्वाद मुझे न मिलेगा मैं न खाऊँगी न पीऊँगी, बराबर इस ही प्रकार पड़ी रहूँगी।

इसी समय मैंने पैरों की आहट सुनी। मेरा दिल धड़कने लगा। कौन कहता है देवता नहीं दिखाई पड़ते! मैंने मुँह उठाकर नहीं देखा, शायद वह मेरी दृष्टि को न सह सकें। आओ, आओ, आओ,—अपने पाँव मेरे सिर पर रख दो, मेरे इस हृत्‌कम्पन के ऊपर खड़े हो जाओ, हे प्रभु मेरे प्राण निकल रहे हैं!

वह मेरे सिरहाने आकर बैठ गये। कौन? मेरे स्वामी। मेरे स्वामी के हृदय में उसी देवता का सिंहासन हिल उठा है जिसके लिए मेरा मर्मान्तिक कष्ट असह्य हो गया था। जान पड़ता था कि मैं मूर्छित हो जाऊँगी। इसके बाद मेरे नसों के बाँध को तोड़ कर मेरे हृदय की वेदना अश्रुधारा के द्वारा उबल पड़ी। मैंने उनके पाँव ज़ोर से अपनी छाती पर दबा लिए—क्या इन चरणों का चिन्ह सदा के लिए मेरे हृदय पर अंकित नहीं हो सकता?

इस बार तो सब बातें साफ़ साफ़ कहनी ही पड़ेंगी। पर इसके बाद क्या और कोई बात भी बाक़ी है? भाड़ में जायें सब बातें!

वह धीरे धीरे मेरे सिर पर हाथ फेरने लगे। मुझे आशीर्वाद मिल गया। कल जो मेरा अपमान होनेवाला है उस अपमान का बोझ सब के सामने सिर पर उठा कर मैं निश्चित भाव से अपने देवता के चरणों में प्रणाम कर सकूंगी।

किन्तु यह बात मन में आते ही मेरी छाती फटी जाती है कि नौ वर्ष पहले जो शहनाई बजी थी वह इस जन्म में फिर कभी न बजेगी। इस जगत में कौन से देवता के चरणों में सिर रगड़ने से वही नव-वधू चन्दन-चोली पहिन कर फिर उसी वरण की पीढ़ी पर आकर खड़ी हो सकती है? नौ वर्ष पहले का वह दिन फिर आते आते न जाने कितने दिन, कितने युग, कितने युगान्तर बीत चुकेंगे। देवता नई सृष्टि कर सकते हैं पर टूटी हुई सृष्टि को फिर से गढ़ना उनके बस में भी नहीं है।

निखिलेश की आत्म-कथा।

आज हम कलकत्ते जायंगे। बैठे रहना व्यर्थ है। इस प्रकार दुःख सुख को जितना बढ़ाओ उतना ही बढ़ सकता है। मैं जो इस घर का स्वामी हूँ, यह एक बनावटी बात है—वास्तव में मैं जीवन-पथ का केवल एक पथिक हूं।

इसी कारण घर के स्वामी को इतने आघात सहने पड़ते हैं और पीछे शेष आघात मृत्यु है ही। तुम्हारे साथ मेरा मिलन रास्ते का मिलन है, जितनी दूर एक मार्ग पर चल सके उतनी दूर ही तक ठीक रहा—इससे अधिक खींचतान करते ही मिलन बन्धन हो जायगा। वह बन्धन अब छूटने लगा है। इस बार दोनों स्वतंत्र हो गये हैं, चलते चलते कभी कभी दृष्टि मिल जाना और हाथ से हाथ मिल जाना यही बहुत है। इसके बाद? इसके बाद अनन्त जगत का मार्ग है, असीम जीवन का वेग है, इससे तुम भी मुझे वञ्चित न रख सकोगी। सामने की ओर जो वंशी बज रहा है, यदि कान देकर सुनूं तो उसे स्पष्ट सुन सकता हूँ, विच्छेद के सब छेदों से उसके माधुर्य का राग निकल रहा है। लक्ष्मी का अमृत-भाण्डार कभी खाली नहीं होता, इसीलिए वह कभी कभी हमारे पात्र को तोड़ कर हमारे रोने पर हँस पड़ती है। मैं टूटा हुआ पात्र उठाने न जाऊंगा। मैं अपने अतृप्त हृदय को लिए ही आगे बढ़ूँगा।

मँझली रानी ने आकर मुझसे कहा, "भैया निखिलेश, तुम्हारी सब किताबें बक्सों में भर भर कर छकड़े में क्यों लद रही हैं?"

मैंने कहा, "इसीलिए कि इनके मोह ने अब तक मेरा पीछा नहीं छोड़ा।"

"अच्छी बात है, मैं तो चाहती हूँ और चीज़ों पर भी तुम्हारा मोह इसी प्रकार बना रहे। परन्तु क्या फिर यहां लौटकर न आओगे?"

आना-जाना तो लगा ही रहेगा पर अब यहाँ पड़े रहने

से काम नहीं चलेगा।"

"सच कहना क्या यही इरादा किया है? अच्छा तो यह भी आकर देख लो कि मुझे कितनी चीज़ों का मोह बाक़ी है।"

उनके कमरे में गया तो बहुत से छोटे बड़े बक्स और सन्दूक देखे। उन्होंने एक बक्स खोलकर दिखाया—"यह देखो भैया, यह मेरे पानों का सामान है। इन छोटे छोटे बक्सों में सब प्रकार के थोड़े थोड़े मसाले हैं। यह ताश है, यह देखो चौपड़ भी नहीं भूली हूँ; तुम न मिलोगे तो खेलने के लिए किसी और साथी को ढूँढ़ लूँगी। यह तुम्हारा वही स्वदेशी कंघा है, और यह ...।"

"पर यह बात क्या है भाभी? यह सब तैयारी क्यों हो रही है?"

"मैं भी तो तुम्हारे साथ कलकत्ते जाऊँगी।"

"यह कैसे हो सकता है?"

"डरो मत, भैया, डरो मत, मैं तुम्हें तंग नहीं करूंगी, न छोटी रानी के साथ लड़ाई झगड़ा करूँगी। मरना तो है ही इसलिए पहले ही से गङ्गा तीर पर आकर रहना अच्छा है, जब मरूँगी तो उसी ठूठ वट के नीचे मेरी भी चिता लगेगी। यह ध्यान आकर तो मेरा मरने को भी जी नहीं चाहता जभी तो मैंने तुम्हें इतने दिन से बराबर कुढ़ाया है।"

इतने दिन बाद मेरा घर मानो सजीव होकर बोल उठा। मैं जब छः वर्ष का था तो मंझली रानी नौ वर्ष की अवस्था में इस घर में आई थीं। दुपहर के समय ऊपर को छतों पर ऊँची ऊँची दीवारों के साये में हम

बहुत साथ खेले हैं। बाग में आँवले के पेड़ के ऊपर से मैं कच्चे आँवले तोड़कर फेंका करता और वह नीचे बैठी मेरे लिए नमक मिर्च मिला कर चटनी तैयार करतीं। गुड़िया के विवाह के भोजन की सामग्री चुपके चुपके भण्डार में से लाने का भार मेरे ही ऊपर था, क्योंकि मेरी दादी की दृष्टि में मेरा कोई भी अपराध दण्ड के योग्य नहीं था। इसके अलावा उन्हें जब कभी शौक़ीनी की चीज़ की ज़रूरत होती तो मेरे ही द्वारा भाई साहब से कहला भेजतीं—मैं भाई साहब के सिर होकर जिस तरह होता काम बना लाता। फिर वह दिन भी याद आता है जब मुझे बुखार चढ़ा था और कविराज ने गरम जल और इलायची दानों के सिवाय सब चीज़ों का निषेध कर दिया था। मंझली रानी से मेरा दुःख न देखा जाता और वह चुपके चुपके मुझे अच्छी अच्छी खाने की चीज़ें दे दिया करतीं। कभी कभी पकड़े जाने पर उन्हें झिड़कियाँ भी खानी पड़तीं। इसके बाद बड़े होने पर हमारे दुख-सुख का रंग गाढ़ा हो चला—कई बार झगड़ा भी हुआ है, घर-गृहस्थी की बातों पर मन-मोटाव भी हो गया है और फिर विमला के बीच में आ जाने से तो ऐसा जान पड़ता था कि आपस का विच्छेद कभी दूर ही न होगा। पर बाद को अच्छी तरह साबित होगया कि मन का मेल बाहर की अनबन से कहीं प्रबल है। इसी प्रकार बचपन से आज तक जो सच्चा सम्बन्ध हम दोनों के बीच में जम उठा है उसी के डाल पत्तों ने इस सारे घर के कमरों, बरामदों, आँगनों और छतों पर साया

डाल कर अपना अधिकार स्थिर कर लिया है। मैंने जब देखा कि मंझली रानी अपनी सब चीज़-वस्तु लेकर जाने के लिए तैयार हैं तो इस पुराने सम्बन्ध की सब कड़ियाँ मेरे हृदय में झनझना उठीं। मैं अच्छी तरह समझ गया कि मंझली रानी जो नौ वर्ष की अवस्था से कभी एक दिन के लिए भी इस घर को छोड़ कर नहीं गई आज क्यों एक दम चली जाने को तैयार हैं। पर वास्तविक कारण को वह स्वीकार नहीं करतीं, और तरह तरह के तुच्छ बहाने ढूढ़ निकालने को तैयार हैं। इस अभागी पति-पुत्र-हीन स्त्री ने संसार में केवल इसी एक सम्बन्ध को अपने हृदय का सब संचित किया हुआ अमृत दे देकर पालन किया है, उनके लिए मुझसे बिछुड़ना कैसा असह्य है, यह मैंने उनको पोते-पोतलियों के बीच में खड़े होकर अच्छी तरह मालूम कर लिया। मैं समझ गया कि रुपये पैसे और अन्य छोटी छोटी चीज़ों के ऊपर विमला के साथ जो उनका अनेक बार झगड़ा हुआ उसका कारण लोभीपन नहीं है; उसका कारण यही है कि विमला के बीच में आपड़ने से उनके जीवन के इस सर्वोत्तम सम्बन्ध में बार बार ठेस लगी है। उन्हें आते-जाते, उठते-बैठते बहुत कुछ सहना पड़ा है और फिर शिकायत करने का मानों उन्हें अधिकार ही नहीं था। विमला भी कुछ कुछ समझ गई थी कि मेरे ऊपर मंझली रानी का दावा केवल सामाजिक दावा नहीं है बल्कि उस से कहीं अधिक गहरा है—इसीलिए उसे इतनी ईर्षा होती थी। यह सब स्मरण होकर मेरा हृदय मेरी छाती के द्वार पर ज़ोर ज़ोर से टकराने लगा। मैं खड़ा न रह सका और

एक ट्रंक के ऊपर बैठकर बोला, "मंझली रानी, जिस दिन हम दोनों ने पहिले पहिल एक दूसरे को देखा था, मेरी बड़ी इच्छा है कि किसी तरह एक बार वही दिन फिर आजाय।"

मंझली रानी ने एक लम्बी साँस लेकर कहा, "नहीं, भैया, मैं दूसरे जन्म में स्त्री होना नहीं चाहती—इस जन्म की बातें इसी जन्म में समाप्त हो जाँय, फिर दूसरी बार मुझ से न सही जायँगी।"

मैंने कहा, "दुःख के द्वारा जो मुक्ति मिलती है वह मुक्ति क्या दुःख से बढ़कर नहीं है?"

वह बोलीं, "यह हो सकता है, पर तुम पुरुष हो, मुक्ति तुम्हारे ही लिये है। हम स्त्रियाँ तो बाँधना चाहती हैं और आप भी बँधना चाहती हैं,—हमारे पास से तुम्हें छुटकारा मिलना कठिन है। यदि पंख फैलाना चाहो तो हमें भी साथ लेना पड़ेगा—पीछे न छोड़ सकोगे। इसी लिये मैंने यह सारा बोझ तैयार करके रक्खा है—तुम लोगों को एकदम हलका कर देना ठीक नहीं है।"

मैंने हँस कर उत्तर दिया, "वही तो देख रहा हूँ और बोझ भी कुछ कम नहीं है। पर इस बोझ उठाने की मज़दूरी तुम अच्छी तरह चुका देती हो, इसीलिए पुरुषों को शिकायत करने का मुँह नहीं होता।"

मंझली रानी ने कहा, "हमारा बोझ तो छोटी छोटी चीज़ों का ही बोझ है। जिस चीज़ को भी छोड़ना चाहते हो वही हलकी दिखाई पड़ती है, सोचते हो यह है ही कितनी सी,—इसी तरह हम हलकी हलकी चीज़ों से तुम्हारे

सिर का बोझ भारी कर देती हैं। अब बताओ यहां से चलना कब निश्चय किया है?"

"रात के साढ़े ग्यारह बजे।"

"देखो, भैया, तुम्हें मेरी एक बात माननी पड़ेगी—तुम आज सवेरे ही खा-पीकर दोपहर को थोड़ी देर के लिए सो रहना। रेल में अच्छी तरह न सो सकोगे। तुम्हारे शरीर की जो अवस्था हो गई है उससे तो जान पड़ता है कि ज़रा सा भी और कसाला पड़ा तो तुम से उठा भी न जायगा। चलो, तुम्हें अभी जाकर नहाना पड़ेगा।"

इसी समय खेमा बड़ा सा घूंघट निकाले आई और मृदु स्वर से कहने लगी, "दरोगा जी किसी को साथ लेकर आये हैं, महाराज से मिलना चाहते हैं।"

मंझली रानी रुष्ट होकर बोलीं, "महाराज भी कोई चोर या डाकू हैं जो दरोगा उनके पीछे लगा ही रहता है! जाकर कह दे कि महाराज स्नान कर रहे हैं।"

मैंने कहा, "ज़रा जाकर देख आऊँ—सम्भव है कोई ज़रूरी काम हो।"

मंझली रानी बोलीं, "नहीं, मैं जाने न दूँगी। छोटी रानी ने कल बहुत से गूँझे बनाये थे, दरोगा के वास्ते वही थोड़े से भेज दूँगी, उसका मिज़ाज ठण्ढा हो जायगा।" यह कह कर उन्होंने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे गुसलख़ाने में ढकेल दिया और बाहर से कुण्डी लगा दी।

मैंने भीतर से पुकार कर कहा, "मेरे साफ़ कपड़े तो अभी ..."

वह बोलीं, "वह मैं ठीक कर रक्खूंगी, तुम स्नान कर लो।"

इस ज़बरदस्ती का विरोध करने की मुझ में शक्ति नहीं थी—संसार में यह ज़बरदस्ती बड़ी दुर्लभ है। दरोग़ा जी को बैठे बैठे गुंभे खाने दो। ज़रा काम का हर्ज ही हो गया तो क्या?

इतने दिनों में उस डकैती के सम्बन्ध में दरोग़ा ने दो चार आदमियों को पकड़ा था। रोज़ ही एक न एक निरपराधी को पकड़ लाता है और मेरी बैठक में सभा गरम रहती है। आज पड़ता है आज भी कोई अभागा पकड़ा गया। किन्तु गुंभे क्या अकेला दरोग़ा ही खायगा? यह तो ठीक नहीं है। मैंने भीतर से दरवाज़ा खटखटाया। बाहर से मंझली रानी बोलीं, "पानी डालो, पानी, जान पड़ता है गरमी के मारे तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है।"

मैंने कहा, "गुंभे दो आदमियों के लिए भेजना। दरोग़ा जिसे चोर बनाकर लाया है वास्तवमें गुंभे उसी को मिलने चाहियें। बैरा से कह देना कि उसके भाग में कुछ अधिक आवें।"

जितनी जल्दी हो सका मैं स्नान करके बाहर निकला। देखा कि दरवाज़े के पास विमला धरती पर बैठी है। यह क्या मेरी वही विमला है, वही तेज और अभिमान से भरी गर्विणी? न जाने क्या प्रार्थना मन में लेकर वह द्वार के पास बैठी मेरी बाट जोह रही थी? मैं जैसे ही रुक कर खड़ा हुआ वह उठ खड़ी हुई और सिर नीचा कर मुझसे बोली, "मुझे तुमसे कुछ कहना है।"

मैंने कहा, "अच्छा, तो आओ कमरे में चलें।"

"क्या तुम्हें बाहर कुछ ज़रूरी काम है?"

"हाँ, पर उसे फिर देख लूँगा—पहिले तुम्हारी...।"

"नहीं तुम काम कर आओ—उसके बाद जब भोजन कर चुकोगे तो बातें होंगी।"

बाहर जाकर देखा तो दरोगा की प्लेट ख़ाली थी—वह जिसे पकड़ कर लाया था वह उस समय भी बैठा गूंफे खा रहा था।

मैं विस्मित होकर बोला, "अरे यह तो अमूल्य है!"

उसने खाते खाते उत्तर दिया, "जी हाँ पेट भरके खा चुका हूँ, अब यदि आप क्षमा करें तो जो कुछ बचे हैं इन्हें रूमाल में बाँध लूं।"—यह कह कर उसने सब गूंफे रूमाल में बाँध लिये।

मैंने दरोगा की ओर देखकर पूछा, "क्या मामला है?"

दरोगा ने हँसकर उत्तर दिया, "महाराज चोर की पहेली तो अबतक न बूझ सका, पर चोरों के माल का पता लगा ही लिया।"

यह कहकर उसने एक पोटली खोली और नोटों की गड्डी निकाल कर मेरे सामने रख दी। — "यही महाराज के छः हज़ार रुपये हैं।"

"आपको कहाँ से मिले?"

"अमूल्य बाबू के पास से। वह कल रात चकुवे में आपके नायब के पास जाकर बोले, 'चोरी का माल मिल गया।' नायब इतना चोरी के समय नहीं डरा था जितना चोरी का माल पाकर डरा। उसने सोचा सब यही सन्देह

करेंगे कि मैंने नोट छिपाकर रखदिये थे, अब जो विपत्ति सिर पर आते देखी तो यह उपन्यास गढ़ लिया है। उसने अमूल्य बाबू को भोजन कराने के बहाने से बिठाये रखा और आप जाकर थाने में खबर कर दी। मैं तुरन्त घोड़े पर चढ़ कर यहाँ पहुँचा और आज सवेरे से इन्हीं के पीछे हैरान हो रहा हूँ, पर यह पता नहीं देते कि इन्हें रुपया कहां से मिला है। मैं कहता हूँ कि जब तक न बताओगे मैं तुम्हें न छोड़ूंगा। यह कहते हैं तो क्या झूठ बोलदूं। मैं कहता हूँ अच्छा यही सही। यह कहते हैं मुझे यह नोट एक झाड़ी के नीचे से मिले हैं। मैंने कहा झूठ बोलना ऐसा आसान नहीं है। यह भी तो बताना पड़ेगा कि झाड़ी कहां है और तुम वहां क्यों गये थे। इस पर अमूल्य बाबू बोले कि यह सब गढ़ने के लिये मुझे बहुत समय मिल जायगा—आप कुछ चिन्ता न कीजिये।"

मैंने कहा, "हरिचरण बाबू एक भलेमानस के लड़के को इस प्रकार तंग करने से क्या होगा?"

दारोग़ा ने कहा, "अमूल्य केवल एक भलेमानस के लड़केही नहीं हैं—उनके पिता निवारण घोषाल मेरे साथ पढ़ते थे। महाराज, मैं आप को बताये देता हूँ क्या बात है। अमूल्य को अच्छी तरह मालूम है कि चोरी किसने की है, पर वह अपने सिर पर बात लेकर उसे बचाना चाहते हैं। इसी को वह अपना वीरत्व समझते हैं। महाराज, अब चोर का पकड़ा जाना तो कठिन हो गया पर मैं आपको बताये देता हूँ कि यह किसका काम है।"

मैंने कहा, "बताओ"।

" आप का नायब तानकौड़ीदत्त और वहाँ कासिम सिपाही।"

जब दारोग़ा जी इस अनुमान का समर्थन करने के लिए बहुत से प्रमाण देकर चले गये तो मैंने अमूल्य से कहा, " अब बताओ यह रुपया किसने चुराया था, मुझे बताने में कुछ हर्ज न होगा।"

उसने कहा, " मैंने "।

" किस प्रकार ? वह तो कहते हैं कि डाँकुओं का दल का दल ...। "

" मैं ही अकेला था।"

अमूल्य ने जो वृत्तान्त सुनाया वह बड़ा अद्भुत था। नायब रात को खा-पीकर बाहर बैठा हुक्का पी रहा था। उस जगह बिल्कुल अँधेरा था। अमूल्य की दोनों जेबों में दो पिस्तौलें थीं, एक में ख़ाली कारतूस थे और दूसरे में गोली भरी थी। उसके आधे चेहरे पर काला कपड़ा बँधा था। उसने एकदम बिजली की एक गुप्त लालटेन की रोशनी नायब के मुँह पर डाल कर ज्यों ही एक ख़ाली कारतूस छोड़ा नायब बेहोश होकर गिर पड़ा। दो चार बर्कन्दाज़ भागे हुए आये, पर वह भी पिस्तौलों की आवाज़ सुनते ही भागकर इधर उधर छिप गये। क़ासिम सरदार लाठी ले कर झपटा, पर अमूल्य ने उसके पाँव में गोली मारी और वह वहीं बैठ गया। इतने में नायब को कुछ होश आ गया था। अमूल्य ने उसी को डरा धमका कर लोहे का सन्दूक खुलवाया और छः हज़ार के नोट निकाल लिये। फिर उसने वहीं से एक घोड़ा लिया और चढ़कर रवाना

हुआ। पांच छः मील जाकर उसने घोड़े को छोड़ दिया और आप अगले दिन सबेरे ही यहाँ आ पहुँचा।

मैंने पूछा, "अमूल्य यह सब तुमने किया क्यों?"

उसने कहा, "मुझे ज़रूरत थी।"

"तो फिर तुमने रुपये लौटा क्यों दिये?"

"जिनको आज्ञा से लौटा दिये उनको बुलवाइए, उन्हीं के सामने बताऊँगा।"

"वह कौन हैं?"

"छोटी रानी।"

मैंने विमला को बुला भेजा। वह एक शाल ओढ़े धीरे धीरे कमरे में आई, पाँव में जूता भी नहीं था। मैंने विमला को इस प्रकार कभी नहीं देखा—प्रातःकाल के चन्द्रमा के समान मानों वह प्रभात के धीमे धीमे प्रकाश में लिपटी हुई मेरे सामने खड़ी थी।

अमूल्य ने विमला के पैरों के निकट भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया और उठकर कहने लगा, "जीजी मैं तुम्हारी आज्ञा पूरी कर आया। रुपये जहाँ से लाया था वहीं दे आया।"

विमला ने कहा, "धन्यवाद भैया। तुमने मुझे बचा लिया।"

अमूल्य ने कहा, "तुम्हारा स्मरण मन में रखकर मैंने ज़रा भी झूठ नहीं बोला। अपना बन्देमातरम् मन्त्र तुम्हारे चरणों में अर्पण कर दिया। यहाँ लौट कर आते ही मुझे तुम्हारा प्रसाद भी मिल गया।"

यह बात विमला अच्छी तरह न समझ सकी। अमूल्य ने अपनी जेब से रूमाल निकाल कर उसमें जो गूँथे बँधे

थे वे दिखा दिये। उसने कहा, "मैंने सब नहीं खाये, कुछ उठा कर रख लिये हैं—मैं जानता था कि तुम मुझे स्वयं भी कुछ खिलाओगी। इसी लिए इन गूँओं को बचा लिया।"

वहाँ अपनी और ज़रूरत न समझकर मैं कमरे से बाहर चला आया। मैंने सोचा कि मैं इतना बकता झकता हूँ फिर भी परिणाम यही होता है कि लोग मेरी मूर्ति बना कर उसके गले में पुराने जूतों की माला पहिनाते हैं और फिर उसे नदी किनारे ले जाकर जला डालते हैं। मैं किसी को भी सर्वनाश के पथ से उलटा न फेर सका— जिनमें सामर्थ्य है वह ज़रा से इशारे में सब कुछ कर सकते हैं। हम लोगों की वाणी में वह शक्ति नहीं है। हम अग्नि-शिखा नहीं हैं, हम मानों बुझे हुये अंगारे हैं, प्रदीप जलाना हमारे वश से बाहर है। मेरे जीवन-इतिहास से भी यही बात प्रमाणित होती है, मैंने जो दिया-बत्ती संवारा था वह कभी न जल सका।

फिर धीरे धीरे भीतर जा पहुँचा। मंझली रानी का कमरा मुझे फिर अपनी ओर खींचने लगा। उस समय मुझे यह अनुभव करने की बड़ी आवश्यकता थी कि मेरे जीवन के आघात से भी इस संसार में किसी और जीवन की वीणा से सच्ची और स्पष्ट झनकार उठ सकती है — अपने अस्तित्व का परिचय स्वयं अपने में नहीं मिलता — उसके लिए सदा बाहर ही खोज करना पड़ता है।

मैं जैसे ही मंझली रानी के कमरे के सामने पहुँचा, वह बाहर निकलकर बोलीं, "वह देखो, भैया, मैं पहले

ही जानती थी कि आज भी देर हो जायगी। अब देर नहीं है, तुम्हारा भोजन बिलकुल तैयार है, अभी परोसा जाता है।"

मैंने कहा, "अच्छा तब तक उस रुपये को निकाल कर ठीक कर रखूँ।"

मेरे कमरे की ओर जाते जाते मंझली रानी ने पूछा, "दरोगा क्यों आया था? क्या कुछ चोरी का पता लगा?"

मैं उस छः हज़ार के मिल जाने का वृतान्त मंझली रानी को सुनाना नहीं चाहता था। इसलिए मैंने कहा, "उसी की तो सारी गड़बड़ हो रही है।"

लोहे के सन्दूक के पास पहुँचकर मैंने चाबियों का गुच्छा जेब से निकाला; देखता हूँ तो सन्दूक की चाबी नहीं है! मैं भी कैसा बेपरवाह हूँ। इसी गुच्छे का सुबह से कई बार काम पड़ा है, कई बार आलमारी खोली है, बक्स खोला है, पर एक बार भी ध्यान नहीं आया कि वह चाबी नहीं है।

मंझली रानी बोलीं, "चाबी कहाँ है?"

मैं इसका कुछ उत्तर न देकर, अपनी जेबों में ढूँढ़ने लगा—हर एक जेब में दस दस दफ़े देखा पर कुछ पता न चला। हम दोनों ने समझ लिया कि चाबी खोई नहीं गई, किसी ने छल्ले में से निकाल ली है। कौन निकाल सकता है? इस कमरे में तो...।

मंझली रानी बोलीं, "चिन्ता मत करो, पहले चलकर भोजन कर लो। मुझे विश्वास है कि तुम्हें बेपरवाह समझ

कर छोटी रानी ने वह चाबी अपने बक्स में उठा कर रख ली है।"

पर मेरा मन फिर नहीं माना। विमला का ऐसा सुभाव नहीं है कि मुझसे बिना कहे चाबी निकाल लेती। मेरे भोजन करते समय विमला नहीं थी—वह उस समय रसोई से भात लाकर अमूल्य को खिला रही थी। मंझली रानी ने उसे बुलवाना चाहा, पर मैंने मना कर दिया।

जब खाकर उठा तो विमला भी आगई। मैं चाहता था कि मँझलीरानी के सामने चाबी खो जाने की बात न छिड़े। पर यह कैसे सम्भव था? विमला के आते ही उन्होंने पूछा, "लोहे की सन्दूक की चाबी कहाँ है, कुछ ख़बर है?"

विमला ने कहा, "मेरे पास है।"

मँझलीरानी बोलीं, "मैंने तो कहा ही था! चारों ओर डाके पड़ रहे हैं, छोटी रानी देखने में कैसी ही निडर मालूम होती हो, पर वास्तव में है बड़ी सावधान।"

विमला के मुंह की ओर देखकर मुझे सन्देह सा हुआ—मैंने कहा, "अच्छा, चाबी अभी अपने ही पास रहने दो, सन्ध्या समय रुपये निकाल लेंगे।"

मँझलीरानी बोलीं, "फिर सन्ध्या समय क्या? अभी निकाल कर ख़ज़ाञ्ची के पास भेज दो न।"

विमला बोली, "रुपया मैंने निकाल लिया है।"

मैं चौंक पड़ा।

मँझलीरानी ने पूछा, "निकाल कर फिर कहाँ रख दिया?"

विमला ने कहा, "मैंने खर्च कर दिया।"

मंझलीरानी बोलीं, "लो, और सुनो इसकी बातें! इतना सारा रुपया काहे में खर्च कर दिया?"

विमला ने इसका कुछ उत्तर न दिया। मैंने भी उससे कुछ न पूछा—दरवाज़ा पकड़े चुपचाप खड़ा रहा। मंझली रानी विमला से कुछ कहना चाहती थीं पर रुक गईं। फिर मेरी ओर देख कर बोलीं, "इसने अच्छा किया निकाल लिया। मैं भी अपने स्वामी की जेबों और बक्स में से रुपया चुरा कर छिपा दिया करती थी, मैं जानती थी उनके पास न ठहरेगा। भैया, तुम्हारी भी प्रायः वही दशा है—बात की बात में रुपया उड़ा देते हो, हम चुरा कर न रक्खें तो तुम्हारे पास रुपया रहना ही कठिन है। अब चलो, ज़रा सो रहो।"

मंझली रानी मुझे पकड़कर सोने के कमरे में ले गईं, मुझे कुछ ख़बर नहीं थी कि कहाँ जा रहा हूँ। वह मेरे पास बैठकर मुसकराते हुये बोलीं, "अरी छोटी रानी, एक पान तो दे। तू तो एक दम मेम बन गई। पान नहीं है? अच्छा, तो जा मेरे कमरे में से ला दे।"

मैंने कहा, "भाभी, तुमने तो अभी भोजन भी नहीं किया।"

वह बोलीं, "मैं तो कभी की खा चुकी।"

यह बिलकुल झूठ बात थी। वह मेरे पास बैठ कर इधर उधर की बातें करने लगीं। इतने में दासी ने आकर दरवाज़े के बाहर से ख़बर दी कि विमला का खाना ठंडा हो रहा है। विमला ने कुछ उत्तर न दिया। मंझली

रानी बोलीं, "यह क्या, तूने अब तक नहीं खाया ? इतनी देर होगई !"—यह कह कर वह विमला को ज़बरदस्ती अपने साथ ले गईं।

मैंने अच्छी तरह समझ लिया कि उस छः हज़ार की डकैती का सन्दूक के इस छः हज़ार से अवश्य कुछ सम्बन्ध है। किस प्रकार का सम्बन्ध है यह मैं जानना भी नहीं चाहता था और न मैंने कभी किसी से पूछा।

विधाता हमारे जीवन-चित्र का आकारमात्र बना कर छोड़ देता है। इसका अभिप्राय यही होता है कि हम अपने हाथ से उसे कुछ अदल-बदल कर उसमें अपनी इच्छा और प्रवृत्ति के अनुसार एक स्पष्ट चेहरा निकाल लें। मेरा सदा यही उद्देश्य रहा है कि सृष्टि-कर्त्ता के निर्देश को समझ कर अपनी आप सृष्टि करूं और अपने जीवन द्वारा किसी बड़े आदर्श को व्यक्त करके दिखा दूँ।

मैंने इसी साधना में इतने दिन बिताये हैं। मैंने अपनी प्रवृत्तियों को कितना वञ्चित रक्खा है, अपनी कामनाओं का कैसा दमन किया है, यह अन्तर का इतिहास केवल अन्तर्यामी जानते हैं। कठिन बात यही है कि किसी का जीवन एक पृथक् वस्तु नहीं है—जिसे सृष्टि करनी है उसे अपने चारों ओर के जीवन को लेकर सृष्टि करनी चाहिये नहीं तो सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जायगा। इसीलिए मेरी इच्छा थी कि विमला को भी इस रचना में शामिल कर लूं। मुझे विश्वास था कि जब मैं उसे जी-जान से प्यार करूँगा तो अवश्य सफल होऊँगा। मेरा ज़ोर तो केवल प्रेम का ज़ोर था।

पर अब मैं स्पष्ट समझ गया कि जो लोग अपने साथ साथ अपने चारों ओर की सृष्टि कर सकते हैं वे एक अलग ही जाति के मनुष्य हैं। मैं उस जाति में नहीं हूँ। मैंने मन्त्र लिया अवश्य है पर किसी को दे नहीं सकता। जिनके सामने मैंने अपने को सम्पूर्ण रूप से डाल दिया उन्हों ने मेरा और सब कुछ तो लेलिया पर स्वयं मुझे, मेरे इस अन्तर्तम को अलग छोड़ दिया। मेरी परीक्षा कठिन हो गई। जहाँ मुझे सब से अधिक सहायता की ज़रूरत थी वहीं मैं बिलकुल अकेला रह गया।

आज मुझे सन्देह होता है कि मेरे स्वभाव में अवश्य कुछ अत्याचार था। विमला के साथ अपने सम्बन्ध को एक सुन्दर और सुरूप साँचे में ढालना चाहता था। पर मनुष्य का जीवन तो साँचे में ढालने की चीज़ नहीं है। जब हम सजीव प्रकृति को गढ़कर बनाना चाहते हैं तो वह निर्जीव होकर ही अपना बदला लेती है।

मैं मालूम ही न कर सका कि इसी अत्याचार के कारण हम दोनों एक दूसरे से दूर चले गये हैं। मेरे दबाव के कारण विमला का स्वतन्त्र विकास ऊपर की ओर को न हो सका और उसकी अवरुद्ध जीवन-धारा ने नीचे ही नीचे अपना बाँध काट डाला। यह छः हज़ार रुपया आज उसे चोरी करके लेना पड़ा,—मेरे साथ वह स्पष्ट व्यवहार न कर सकी क्योंकि वह जानती है कि कुछ बातों में मैं उसका दृढ़ता से विरोध करता हूँ। मेरे समान एकरूखे आदर्श के आदमियों के साथ जिनका मेल है उन्हीं का मेल हो सकता है, जिनका नहीं है उनको हमारे साथ धोखा देकर काम चलाना पड़ता है।

सरल मनुष्य को भी हम कपटी बना देते हैं। सहधर्मिणी को गढ़कर बनाने की चेष्टा में स्त्री को भी बिगाड़ बैठते हैं।

क्या यह सब फिर से आरम्भ हो सकता है? यदि ऐसा हो तो अब की बार मैं बहुत ही सहल रास्ता चलूं। अपने पथ की संगिनी को किसी आदर्श की ज़ंजीर में न बांधूं — केवल अपने प्रेम की बंसी बजाकर कहूँ कि तुम मुझे प्यार करो, उसी प्रेम के प्रकाश में अपनी वास्तविक प्रकृति का विकाश होने दो, मेरी कोई इच्छा हस्तक्षेप न कर सकेगी — विधाता की जिस इच्छा ने तुम्हारे जीवन में रूप लिया है उसी की जय हो!

हमारे बीच में जो विच्छेद भीतर ही भीतर उत्पन्न हो गया था वह आज एक बड़े घाव के रूप में प्रगट हुआ है। क्या अब भी स्वाभाविक प्रकृति उसकी चिकित्सा कर सकती है? जिस परदे की ओट में प्रकृति अपने संशोधन का काम धीरे धीरे करती है वही परदा एक दम छिन्न हो गया है! घाव को ढकना अवश्य चाहिये; मैं उसे अपने प्रेम से ढकूंगा; फिर एक दिन ऐसा भी आवेगा कि जब इस घाव का चिन्ह तक बाक़ी न रहेगा। पर क्या अब भी समय बाक़ी है? इतने दिन लम में पड़े रहे, इतने दिन भूल मालूम करने में लग गये, अब न जाने भूल सुधारने में कितने दिन लगेंगे! उसके पश्चात्? उसके पश्चात् क्षत तो सूख भी सकता है पर उसकी क्षति क्या कभी पूरी हो सकती है?

इसी समय कुछ खटका हुआ—मैंने फिर कर देखा

तो विमला द्वार के पास से लौट कर जा रही थी। जान पड़ता है कि वह इतनी देर से द्वार के पास चुपचाप खड़ी थी—कमरे के अन्दर आवे या नहीं यही सोच रही थी—आखिर लौट कर चली गई। मैंने जल्दी से उठ कर पुकारा, "विमला!" वह खड़ी हो गई, उसकी पीठ मेरी ओर थी; मैं उसका हाथ पकड़कर कमरे के अन्दर ले आया।

कमरे में आते ही वह फर्श पर गिर पड़ी और एक तकिये पर मुँह रख कर रोने लगी। मैं कुछ न बोला और उसका हाथ पकड़े चुपचाप बैठा रहा।

आँसुओं का वेग थमने पर जब वह उठ बैठी तो मैंने उसे अपनी छाती के निकट खींचना चाहा। उसने बलपूर्वक मेरे हाथ हटा दिये और धरती पर गिर कर बार बार मेरे पैरों में सिर रखने लगी। मैंने जैसे ही पाँव हटाने चाहे उसने दोनों हाथों से मेरे पाँव ज़ोर से पकड़ कर गद्गद् स्वर से कहा, "नहीं, नहीं, तुम अपने पाँव मत हटाओ—मुझे पूजा करने दो।"

मैं फिर कुछ न बोला। इस पूजा में बाधा डालने-वाला मैं कौन था! सत्य-पूजा का देवता भी सत्य होता है,—वह देवता मैं थोड़े ही हूँ जो मुझे संकोच होता।

विमला की आत्म-कथा।

चलो, चलो, अब इस सागर-सङ्गम की ओर बढ़ो जहां प्रेम की नदी जाकर पूजा के समुद्र में मिल जाती है। उस निर्मल नीलिमा को गहराई में सब गाद और कीचड़ का भार डूब जायगा। अब मैं बिल्कुल निडर हो गई हूँ,—न अपना भय करती हूँ न और किसी का, मैं अग्नि के भीतर होकर निकल आई हूँ—जो कुछ जलने वाला था वह जल कर छाई हो गया—जो कुछ बाक़ी है वह सदा बना रहेगा। अब मैंने अपने आप को उसीके चरणों में अर्पण कर दिया है जिसने मेरे सारे अपराध को अपनी गहरी वेदना में विलुप्त कर दिया है।

आज रात को हम कलकत्ते जायँगे। अब तक भीतर बाहर की गड़बड़ के कारण, मैं असबाब ठीक न कर सकी। लाओ अब पहले ट्रंकों में चीज़ें ठीक कर के रख दूँ। थोड़ी देर बाद देखती हूँ कि मेरे स्वामी आकर मेरा हाथ बँटा रहे हैं। मैंने कहा, "नहीं, यह न होगा,—तुमने तो मुझ से वादा किया था कि आकर सो रहोगे।"

स्वामी ने कहा, "मैंने वादा किया था, पर मेरी नींद ने वादा नहीं किया—नींद का तो पता ही नहीं।"

मैंने कहा, "नहीं, यह नहीं हो सकता—तुम जाकर सो रहो।"

वह बोले, "तुम अकेली कैसे करोगी?"

"सब कर लूँगी।"

"मेरे बिना भी तुम्हारा काम चल जाता है, यह शक्ति तुम्हीं में है, पर मेरा तो तुम्हारे बिना काम नहीं चलता। मुझे तो अकेले कमरे में नींद तक नहीं आई।"

यह कह कर वह फ़िर काम में लग गए। इसी समय बैरा ने आकर कहा, "सन्दीप बाबू आये हैं और आप से मिलना चाहते हैं।"

किससे मिलना चाहते हैं, यह पूछने की मुझे हिम्मत न हुई। मेरे निकट क्षण भर के लिए आकाश का उजाला मानों लज्जावती लता के समान संकुचित हो गया।

स्वामी ने कहा, "चलो विमला, देखें सन्दीप को क्या कहना है। वह तो विदा होकर चला गया था, अब जो फिर आया है तो अवश्य कोई विशेष बात होगी।"

जाने की अपेक्षा न जाने ही में अधिक लज्जा मालूम हुई। इसीलिए मैं भी उनके साथ बाहर गई। सन्दीप बैठक में खड़ा दीवार पर टंगी हुई तस्वीरें देख रहा था, हमारे पहुँचते ही बोला, "तुम सोचते होगे कि मैं फिर कैसे आ गया। पर सत्कार जबतक पूरा न होजाय तबतक प्रेत विदा नहीं होता।"

यह कह कर उसने चादर के भीतर से एक रूमाल निकाला और उसमें से वही अशर्फ़ियां खोल कर मेज़ पर रख दीं। उसने कहा, "निखिल, तुम भूल में न पड़ना। यह न समझ बैठना कि तुम्हारे सत्संग से मैं साधु हो गया हूँ। सन्दीप ऐसे कच्चे मन का नहीं है कि पश्चात्ताप के आंसू बहाता वह रुपया फेरने के लिए आवे। किन्तु...।"

सन्दीप ने अपनी बात पूरी नहीं की। कुछ देर चुप रह कर

उसने मेरी ओर देखकर कहा, " मक्खी रानी, इतने दिन बाद सन्दीप के पवित्र निर्मल जीवन में एक 'किन्तु' आ घुसा है, रात को आँख खुल जाने पर उसके साथ घोर युद्ध करना पड़ता है। इसी से मालूम होता है कि वह 'किन्तु' वाली बात नहीं है—उसका दावा पूरा किये बिना सन्दीप सा आदमी भी छुटकारा नहीं पा सकता। मैं ने अच्छी तरह चेष्टा करके देख लिया कि पृथ्वी पर केवल तुम्हारा ही धन मैं नहीं ले सकता। तुम्हारे पास से मैं निर्धन दरिद्र ही होकर विदा हूँगा! यह लो!"

यह कह कर उसने गहने का बक्स भी निकाल कर मेज़ पर रख दिया और जल्दी से बाहर जाने लगा। मेरे स्वामी ने उसे पुकार कर कहा, "ज़रा सुनते जाओ, सन्दीप।"

सन्दीप ने द्वार के पास खड़े होकर कहा, "मुझे और समय नहीं है, निखिल। मैंने सुना है कि मुसलमानों के दल ने मुझे बहुमूल्य रत्न समझ कर अपने क़ब्रिस्तान में दबा रखने का संकल्प किया है। पर मैं अभी जीवित रहना चाहता हूं। उत्तर की गाड़ी जाने में केवल २५ मिनिट बाक़ी हैं, इसलिए अब तो मैं जाता हूं— फिर कभी अवसर मिलने पर तुमसे बातें होंगी। यदि मेरी बात मानों तो तुम भी देर मत करो। मक्खी रानी, वन्दे प्रलयरूपिणीम् हृत-पिण्ड-मालिनीम्!"

यह कह कर सन्दीप जल्दी से चला गया। मैं स्तब्ध खड़ी रह गई। इससे पहले रुपये और गहने को मैंने इतना तुच्छ कभी न समझा था। कुछ देर पहले यही सोच रही थी कि क्या क्या चीज़ साथ लूंगी, कहां

कहां रखूंगी पर अब सोचती हूं कुछ भी साथ लेने की ज़रूरत नहीं—केवल निकल चलना ही ज़रूरी काम है। मेरे स्वामी ने कुरसी से उठ कर मेरा हाथ पकड़ लिया और धीरे धीरे कहने लगे, "और अधिक समय नहीं है, अब तैयार हो जाना चाहिए।"

इसी समय चन्द्रनाथ बाबू कमरे में आगये पर मुझे वहाँ देख कर संकुचित होकर कहने लगे, "माफ़ करना मैं आने से पहले ख़बर न भिजवा सका। निखिल, मुसलमानों का दल बिगड़ गया है। हरिशकुण्डू का ख़ज़ाना लुट चुका है। इससे तो कुछ हर्ज नहीं था, पर अब जो उन्होंने स्त्रियों के ऊपर अत्याचार आरम्भ किया है वह तो शरीर में प्राण रहते नहीं देखा जाता।"

मेरे स्वामी बोले, "अच्छा, तो मैं जाता हूँ।"

मैंने उनका हाथ पकड़ कर कहा, "तुम जाकर क्या कर सकोगे? मास्टर साहब, आप उन्हें मना कीजिये।"

चन्द्रकान्त बाबू बोले, "मना करने का तो समय नहीं है।"

स्वामी ने कहा, "तुम कुछ सोच मत करो विमला।"

खिड़की के पास जाकर मैंने देखा कि वह घोड़े पर चढ़ कर बड़ी तेज़ी से सड़क पर जा रहे थे। उनके हाथ में कोई हथियार भी नहीं था।

तुरन्त ही मँझली रानी घबड़ाई हुई आई और मुझसे बोलीं, "यह तूने क्या किया, छोटी? सर्वनाश कर दिया। निखिलेश को तूने जाने क्यों दिया?" फिर वह बैरा से बोलीं, "बुला, बुला, जल्दी दीवान जी को बुला।"

मँझली रानी दीवान जी के सामने नहीं आती थीं, पर उस दिन उन्हें लज्जा नहीं थी। वह दीवान जी से बोलीं, "महाराज को बुलाने के लिए इसी दम सवार भेज दो।"

दीवान जी ने कहा, "मैंने महाराज को बहुत रोका पर वह नहीं माने।"

मँझली रानी बोलीं, "उनसे कहला भेजो कि मँझली रानी की तबीयत बहुत ख़राब है, वह मरने को पड़ी है।"

दीवान के जाते ही मँझली रानी ने मुझे भला बुरा कहना शुरू किया, "राक्षसी, सत्यानाशिन! आप तो मरती नहीं और उसे मरने के लिए भेज दिया।"

दिन का प्रकाश धीमा पड़ने लगा। पश्चिम की ओर खिड़की के सामने सहिजन के प्रफुल्लित वृक्ष के पीछे सूर्य अस्त हो गया। उस सूर्यास्त की प्रत्येक रेखा आज तक मेरी आँखों के सामने है। उत्तर दक्षिण दोनों ओर से बादल के टुकड़े ने आकर अकस्मात् सूर्य को बीच में कर लिया मानों एक प्रकांड पक्षी अपने सुनहरे पंख फैलाये उड़ने के लिए तैयार है। ऐसा मालूम होता था कि आज का दिन रात्रि के समुद्र को उड़ा कर पार करने की तैयारी कर रहा है।

अँधेरा होने लगा। किसी दूर के गाँव में आग लगने पर जिस प्रकार उसकी शिखा रह रह कर आकाश की ओर उठती है, उसी प्रकार कहीं बहुत दूर से अंधकार के समुद्र पर कलरव की लहरें वेग के साथ उठ उठ कर आने लगीं।

हमारे घर के मन्दिर में से सन्ध्या समय के शंख

और घंटे की आवाज़ आने लगी। मैं जानती थी कि मँझली रानी वहीं जाकर हाथ जोड़े बैठी हैं, मुझ में इस रास्ते की खिड़की को छोड़ कर कहीं जाने की शक्ति नहीं थी। सामने का रास्ता, गाँव, शून्य और विस्तृत मैदान और उससे भी परे वृक्षों की श्रेणी—ये सब चीज़ें अब अस्पष्ट और धुँधली दिखाई पड़ने लगीं। राजमहल का बड़ा हौज़ अंधे की आँख के समान आकाश की ओर देख रहा था। बाईं ओर फाटक के ऊपर की बुरजी ऊँची उठ उठ कर न जाने क्या देखने की चेष्टा कर रही थी।

रात्रि समय का शब्द कैसे कैसे रूप धारण कर लेता है! निकट हो कहीं पेड़ की डाल हिलती है तो मालूम होता है कि कोई झपट कर भागा है। ज़रा कोई किवाड़ हवा से हिल जाता है तो मालूम होता है कि आकाश की छाती फट गई।

कभी कभी काले काले वृक्षों की झाड़ में कुछ रोशनी दिखाई पड़ती है और फिर, तुरन्त ही छिप जाती है। एक बार घोड़े के पैरों का शब्द सुनाई पड़ा, देखा तो राजमहल के अस्तबल से कुछ सवार निकल कर जा रहे थे।

मेरे मन में बार बार यही आता था कि मैं मरजाऊँ तो सारा झगड़ा चुक जाय। मैं जब तक जीवित हूँ मेरा पाप, संसार को तरह तरह से पीड़ित करता रहेगा। फिर उसी वक्त मैं रखी हुई पिस्तौल का ध्यान आया। पर उस खिड़की को छोड़कर पिस्तौल तक जाकर लाने के लिए पाँव न उठा सकी। मैं अपने भाग्य की प्रतीक्षा कर रही थी। राजमहल की डेवढ़ी के घण्टे में टन टन करके दस बजे।

ज़रा देर बाद सड़क पर उजाला दिखाई पड़ा, और बहुत सी भीड़ भाड़ भी थी। अँधेरे में सब लोग मिल कर एक हो गये थे और ऐसा मालूम होता था कि एक प्रकाण्ड काला अजगर मुड़ तुड़ कर हमारे फाटक में घुसने के लिए आ रहा है।

दूर से लोगों की आवाज़ सुनते ही दीवान जी जल्दी से बाहर चले गये। एक सवार सब से आगे निकल कर फाटक में आ पहुँचा। दीवान जी ने उस से पूछा, "क्या ख़बर है, उदाधर ?"

उसने उत्तर दिया, "ख़बर अच्छी नहीं है।"

मैंने प्रत्येक शब्द साफ़ साफ़ सुन लिया। इसके बाद न जाने उन्होंने चुपके चुपके क्या बातें कीं। मैं कुछ न सुन सकी।

इतने में एक पालकी फाटक के अन्दर आई और उसके पीछे एक डोली भी थी। पालकी के साथ साथ डाक्टर साहब आरहे थे। दीवान जी ने पूछा, "क्यों, डाक्टर साहब क्या राय है ?"

डाक्टर साहब ने उत्तर दिया, "कुछ कह नहीं सकता, सिर में बहुत चोट लगी है।"

"और अमूल्य बाबू ?"

"उनकी छाती में गोली लगी है। उनमें अब कुछ नहीं है।"

समाप्त